

ISSN 2277-5587

Impact Factor 6.002

Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI

UGC Valid Journal (The Gazette of India,

Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

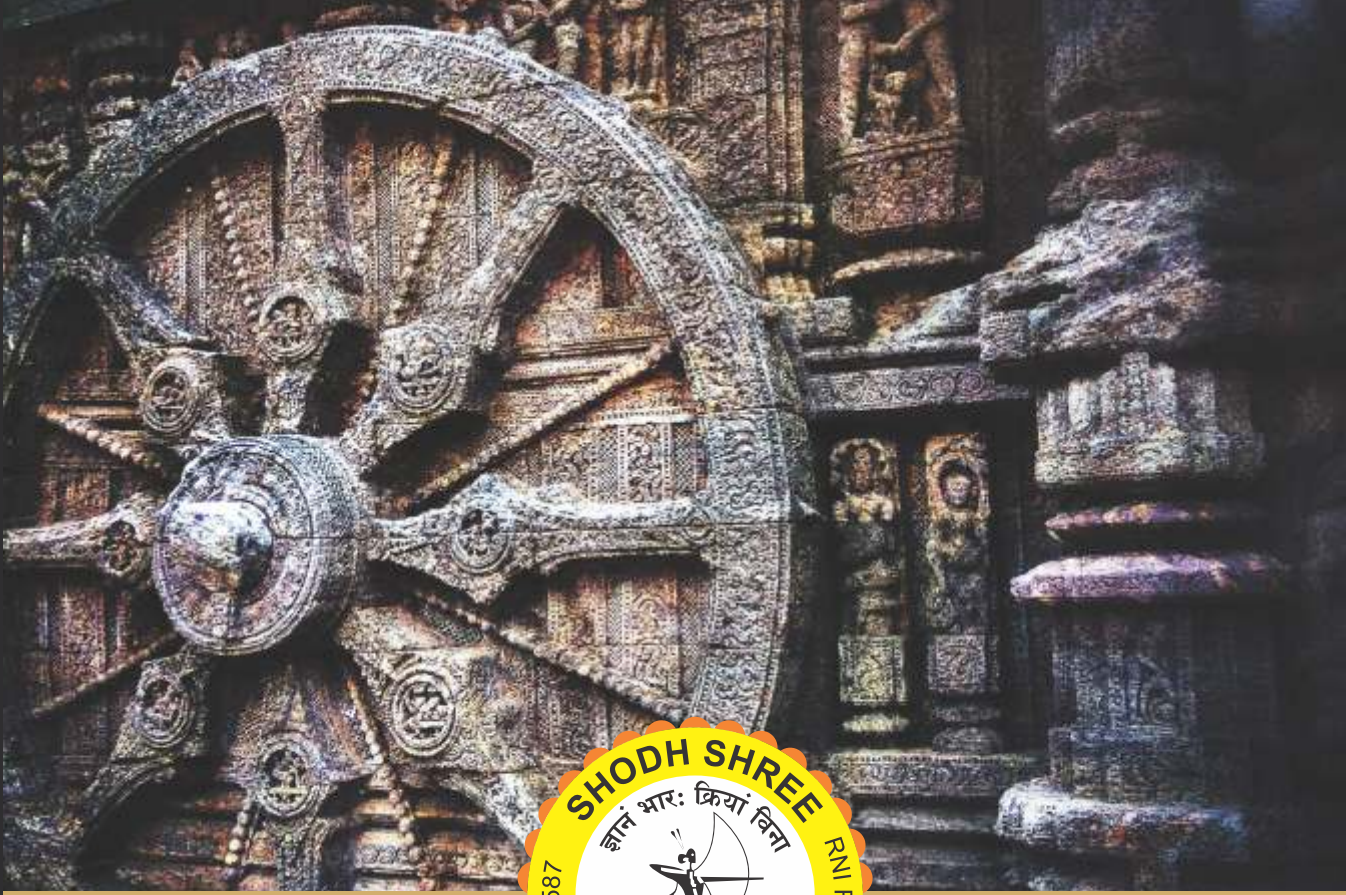
शोध श्री

Volume-54

Issue - 1

January-March 2025

RNI No. RAJHIN/2011/40531



shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.in

CHIEF EDITOR

Dr. Virendra Sharma

EDITOR

Dr. Ravindra Tailor

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

Dr. Virendra Sharma

Chief Editor

Government Girls P.G. College,
Ajmer

Dr Ravindra Tailor

Editor

Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof. H.S. Sharma (Retd.)

University of Rajasthan, **Jaipur**

Prof. T.K. Mathur (Retd.)

M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma (Retd.)

Kurukshetra University, Kurukshetra (**Haryana**)

Sarah Eloy

Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P. Saraswat (Retd.)

Dean of Commerce, M.D.S, University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma

Kurukshetra University, Kurukshetra (**Haryana**)

Dr. Manorama Upadhayay

Principal, Mahila P.G. Mahavidyalaya, **Jodhpur**

Prof. Veenu Pant

Professor & Head, Department of History, Sikkim University, Gangtok (**Sikkim**)

Dr. Rajesh Kumar

Director (Journal, Publicaiton & Library), I.C.H.R., **New Delhi**

Dr. Pankaj Gupta

Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Dr. Rajendra Singh

Archivist, Rajasthan State Archives, **Jodhpur Division**

Dr. Ram Chandra

Assistant Professor, (STRIDE), Indira Gandhi National Open University, **New Delhi**

Advisory Board

Prof. S.N. Tailor (Retd.)

S.D. Government P.G. College, **Beawar**

Prof. S.P. Vyas (Retd.)

Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

Dr. Kate Boehme

University of Leicester, **United Kingdom**

ISSN 2277-5587
Impact Factor 6.002
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI
UGC Valid Journal (The Gazette of India,
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

शोध श्री

Volume-54

Issue - 1

January-March 2025

RNI No. RAJHIN/2011/40531



Published by

DR. S. N. TAILOR FOUNDATION

(A Tribute to Late Shri Paras Hemendra G Tailor)

Prof. (Dr.) S. N. Tailor

Managing Director

Chief Editor

Dr. Virendra Sharma

Editor

Dr. Ravindra Tailor

ISSN 2277-5587
RNI No. RAJHIN/2011/40531

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

Editors take no responsibility for inaccurate misleading data, opinion and statement appeared in the articles published in the journal. It is the sole responsibility of contributors.

©Editors also hold of the copyright of the Journal

Published By
Dr. S. N. Tailor Foundation
Munot Nagar, Beawar (Rajasthan)

To be had from
Dr. Virendra Sharma
54-A, Jawahar Nagar Colony
Tonk Road, Jaipur (Rajasthan)

Printed at
Ganesh Printers, Jaipur





Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

Contents

Volume-54

Issue-1

January-March 2025

- | | |
|---|-------|
| 1. 'लघु कविता' के भीतर की दुनिया..... | 1-6 |
| डॉ. महेश दवंगे, पुणे (महाराष्ट्र) | |
| 2. जी 20, भारत की अध्यक्षता एवं महिला सशक्तिकरण: विभिन्न आयाम तथा सम्भावनाएं | 7-16 |
| डॉ. राहुल चौधरी, जयपुर | |
| 3. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में न्यायिक-सक्रियता के बदलते आयाम | 17-22 |
| चन्द्रभान सिंह, जालौन (उत्तर प्रदेश) | |
| 4. महाराणा फतहसिंह: 1903 ई. का दिल्ली-दरबार | 23-26 |
| मोहन लाल कलबी, उदयपुर | |
| 5. सामान्य बालकों एवं अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता का तुलनात्मक अध्ययन | 27-34 |
| शोभा कुमारी, हजारीबाग (झारखण्ड) | |
| 6. 20वीं सदी की शुरुआत में जोधपुर रियासत की सिंचाई व्यवस्था: | 35-40 |
| परंपरागत तकनीक, प्रशासनिक नीतियाँ और पर्यावरणीय प्रभाव | |
| देवपाल सिंह चारण, जयपुर | |
| 7. हिंदी की महिला रचनाकारों की गद्य विधाओं में नारी विमर्श के परिवर्तित आयाम | 41-45 |
| डॉ. ऋतु भनोट, चंडीगढ़ | |
| 8. प्राचीन भारतीय इतिहास के सिक्कों में हाथी | 46-53 |
| कविता, जयपुर | |
| 9. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : 'अन्धेर नगरी' नाटक की प्रासंगिकता | 54-55 |
| डॉ. स्नेहा कुमारी, राँची (झारखण्ड) | |
| 10. लोकतांत्रिक नौकरशाही और आम जनता | 56-61 |
| राजेन्द्र कुमार, हिंडोली | |
| 11. शिक्षण के साथ-साथ विद्यालय प्रबंधन में अध्यापक की सहभागिता: | 62-67 |
| एक विश्लेषणात्मक अध्ययन | |
| डॉ. बसन्त कुमार, चरखी दादरी (हरियाणा) | |
| 12. जल-संरक्षण की मिसाल हैं बनेड़ा में राजसी महिलाओं द्वारा निर्मित स्रोत | 68-71 |
| रामकरण गुर्जर, उदयपुर | |
| 13. बिहार में कृषक आंदोलन एवं उसका सांगठनिक प्रतिरूप: | 72-79 |
| 20वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में | |
| सुधीर कुमार, वैशाली (बिहार) | |

14. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और चंद्रशेखर आजाद डॉ. ईश्वरचन्द्र शर्मा, जोधपुर	80-83
15. भारत में सूफी साहित्य का विकास एवं महत्त्व फातिमा बानो, जोधपुर	84-87
16. डेनियल बेल : विचारधारा का अंत और उत्तर औद्योगिक समाज का उदय डॉ. मोहम्मद कामरान खान, अजमेर	88-95
17. मंडी और चंबा जिले की गुर्जर समुदाय की भाषा गुज्जरी की वर्तमान स्थिति - एक संक्षिप्त अध्ययन परस राम एवं प्रो. नारायण सिंह राव, धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश)	96-103
18. Weather Prediction through NWP Models Dr. Laxman Ram Bala & Ram Prasad, Jodhpur	104-108
19. Role of MGNREGA During Corona Crisis A Study of Pratapgarh District in Rajasthan Gajendra Singh Meena, Dooni (Tonk)	109-117
20. Woven in the Colors of Religion and Caste: Marwar's Social Fabric Through the Lens of the 1931 Census (A Historical Analysis of Society's Structure from a Statistical Perspective) Dr. Moola Ram & Dr. Sadhana Meghwal, Jodhpur	118-124
21. Films as tool to Teach English in Indian ESL Classrooms Dr. Priti Bala Sharma, Rampur (Uttarpradesh) & Ms. Lalita Sharma, Jaipur	125-133
22. The need for change in the Ideology of Marriage with Changing Society Kalpana Saini & Dr. Poonam Joshi, Jaipur	134-136
23. Challenges Faced By Startup In India: A Legal Analysis Himanshi Srivastava, Jaipur	137-144
24. A Legal Aspect of Electoral Bond: An Analysis Dr. Poonam, Bathinda (Panjab)	145-151

‘लघु कविता’ के भीतर की दुनिया.....

डॉ. महेश दवंगे

सहायक अध्यापक, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे (महाराष्ट्र)



शोध सारांश

अरुणा दुबलिश का काव्य संग्रह ‘गुनगुनाने लगी भोर’ प्राकृतिक सुंदरता का अनूठा उदाहरण है। हिंदी साहित्य और प्रकृति का अंतः संबंध हमेशा से ही बना रहा है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक काव्य की यह यात्रा अनवरत रूप से जारी है। और इसके भीतर प्रकृति हमेशा समाहित रही है। आधुनिक काल में सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, नागार्जुन, जयशंकर प्रसाद, केदारनाथ सिंह आदि कई कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रकृति के सभी रूपों का विलोभनीय वर्णन किया है। इस ऐतिहासिक परंपरा को अरुणा दुबलिश की कविताओं ने सक्षमता से आगे बढ़ाया है। उन्होंने जीवन की व्यापकता को ‘लघु कविता’ में अर्थात् सीमित शब्दों में अभिव्यक्त किया है। उनकी कविताएँ गागर में सागर भरने का काम करती हैं। प्रकृति की गोद में पलनेवाली उनकी लघु कविताओं से जीवन का कोई अंग अछूता नहीं रहा है।

संकेताक्षर : लघु कविता, प्रकृति, बिंब एवं प्रतीक, काव्य सौंदर्य, किसान, ग्लोबल वार्मिंग, नैतिक मूल्य, सुनहरी यादें, स्त्री संघर्ष, मानवीय रिश्ते, गाँव की संस्कृति।

“पत्तों के नरम गढ़े पर

पालथी मार

बारिश का सौंदर्य

देखती जूही”¹

अरुणा दुबलिश की यह लघु कविता प्राकृतिक सुंदरता का अनुपम उदाहरण है। इन शब्दों में प्रकृति सौंदर्य सहजता से घुल-मिल गया है। इसे पढ़ने पर पाठक के मन-मस्तिष्क में बारिश का मनोहारी दृश्य का चित्र अंकित होता है। पाठक सीधे-सीधे प्रकृति से जुड़ाव महसूस करता है। क्योंकि बिंब, चित्र और प्रतीकात्मकता अरुणा जी की रचनाधर्मिता के मूल स्रोत हैं। वैसे, प्राचीन समय से ही हिंदी साहित्य और प्रकृति का अभिन्न संबंध रहा है। मध्यकालीन कवियों से लेकर आधुनिक रचनाकारों तक एक सुदीर्घ परंपरा प्रकृति के गोद में पली-बढ़ी है। इन रचनाओं में प्रकृति के बहाने मानवीय मूल्य एवं मानवीय संघर्षमूलक इतिहास को उद्घाटित किया गया है। मैथिलीशरण गुप्त, महादेवी वर्मा, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन, केदारनाथ सिंह, नागार्जुन आदि रचनाकारों ने प्राकृतिक सुंदरता के साथ ही मानवीय सुंदरता को रेखांकित किया है। इनकी कविताएँ मूल्य एवं भाव बोध से जुड़ी हैं। इनमें दर्ज एक-एक शब्द कवि की प्रामाणिक जीवन अनुभूति का प्रमाण है। इसीलिए तो चार्ली चौप्लिन कहते हैं, ‘कविता, दुनिया को संबोधित प्रेमपत्र है’। कविता व्यक्ति और समाज को बदलने का महत्वपूर्ण साधन है। कविता में अंकित शब्द और भाव मनुष्य के दिलों-दिमाग पर असर करते हैं, उसे झकझोरते हैं, सोचने और बोलने के लिए बाध्य करते हैं। अरुणा दुबलिश की कविताएँ भी इसी परंपरा का अनुसरण करती हैं। उनकी कविताएँ मासूमियत से भरी हैं, मगर उनके भीतर झाँकने पर विद्रोह का स्वर सुनाई देता है।

‘गुनगुनाने लगी भोर’ यह कविता संग्रह देश भारती प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। यह एक लघु कविता संग्रह है। वैसे, कविता लेखन के लिए कोई बंधन नहीं है। कविता का कोई प्रारूप या स्वरूप भी निश्चित नहीं है। एक समय

था जब कविता छंद बद्ध होती थी, किंतु वर्तमान समय में मुक्त छंद की कविताएँ अधिक लिखी जा रही हैं। दरअसल कविता, कवि की सहज अनुभूति है। अतः कुछ कविताएँ लंबी होती हैं तो कुछ लघु भी होती हैं। साहित्य में कविता के कुछ लघु रूप स्वीकृत हैं, जैसे, हाइकू, सॉनेट, चतुष्पदी, टंका, मोनोस्टिच, तिकड़ी, शादोर्मा, सिजो आदि। इसके अलावा दोहा या गजल को भी कविता का लघु रूप माना जा सकता है, क्योंकि गजल या दोहा की कोई भी दो पंक्तियाँ अपना स्वतंत्र अर्थ देने में समर्थ होती हैं। लेकिन इन सभी कविताओं का प्रारूप निश्चित है। मराठी में भी चारोली यह लघु काव्य प्रकार प्रचलित है, जिसकी रचना चार पंक्तियों में की जाती है। अर्थात् यह सभी लघु कविता के अलग-अलग रूप हैं, जो नाम के आधार पर अपना अलग अस्तित्व रखते हैं। दरअसल लघु कविता नामक कोई प्रारूप बना नहीं है, जिससे यह स्पष्ट हो कि उसकी रचना कितनी पंक्तियों या शब्दों में हो। अतः यह काव्य की कोई स्वतंत्र विधा नहीं है। वर्तमान समय में साहित्य की कई विधाओं में लघुतम रूप का महत्व बढ़ रहा है। लघु उपन्यास, लघु कथा आदि इसके प्रमाण हैं। हाल ही में कई पत्रिकाओं ने भी लघु कथा विशेषांक निकाले हैं, साथ ही कई पत्रिकाओं ने अपने कुछ पन्ने लघु कथा के लिए आरक्षित भी कर रखे हैं। अब दौर लघु कविताओं का भी आ गया है। यही वजह है, हाइकू कविताओं के भी कुछ विशेषांक निकले हैं। इस लघु कविता के सृजन में अरुणा दुबलिश का नाम महत्वपूर्ण है। लघु कविता अपने आपमें एक कठिन काव्य प्रकार है। यहाँ कम शब्दों में अपनी बात को पाठक के दिलों-दिमाग तक पहुंचानी होती है। ‘गागर में सागर’ भरना होता है, जो बेहद मुश्किल होता है। अरुणा दुबलिश इसमें माहिर है। दरअसल लघु कविता का अर्थ है, “कवि जब अपने अंतःकरण में प्रस्फुटित होनेवाले किसी बिंब, चित्र, घटना, कल्पना अथवा अनुभूति को अति सीमित शब्दों में अपनी सांकेतिक शैली में कागज के कैनवास पर उकेरता हुआ पाठक के हृदयाकाश पर अपनी अनुभूति की मार्मिक छाप छोड़ता है, ऐसी सीमित शब्द रचना को लघु कविता की संज्ञा दी जा सकती है। जीवन के विस्तार को सीमित शब्दों में समेटने का प्रयास लघु कविता है।”² यह परिभाषा लघु कविता की संकल्पना को परिभाषित करने की कोशिश है। लेकिन अरुणा दुबलिश ने इस काव्य क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनायी है, इसमें संदेह नहीं।

‘गुनगुनाने लगी भोर’ यह काव्य शीर्षक ही प्रतीकात्मक है। इस शीर्षक से ही लेखिका के कलात्मक सौंदर्य का परिचय मिलता है। भोर का समय सही अर्थ में उत्साह और उमंग का होता है। थकान मिट चुकी होती है और नए सफर की तरफ हम आस्था और विश्वास से निकल पड़ते हैं। अरुणा जी ने अपनी कविताओं में प्रकृति के साथ मनुष्य का साधारणीकरण कर दिया है। मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रकृति की गोद में पलता है। पल-प्रतिपल प्रकृति के सान्निध्य में रहता है। अरुणा जी की कविताएँ इसका प्रमाण हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति के मोहक दृश्य अंकित हैं। जैसे,

**“कोहरे की झाड़ियों में
फँस**

सूरज मजबूर हुआ

हवा, गगन

गीली माटी में

उसका गर्व चूर हुआ।”³

“हथेली में बंद धूप

मुझी खोलते ही

फैल गई

पूरे आँगन

बाग-बगीचे में।”⁴

अरुणा दुबलिश की कविताओं में प्रकृति अपनी समग्र चेतना के साथ अभिव्यक्त हुई है। प्राकृतिक सौंदर्य का कोई कोना उनकी नजर से नहीं छुटा है। प्रकृति का आँखों-देखा वर्णन उनकी कविताओं में समाया है। बिंब उनके काव्य का प्राणतत्व है। दरअसल बिंब काव्य भाषा की तीसरी आँख है, जो अमूर्त को भी मूर्त बनाती है। अरुणा जी ने भी प्रकृति को मूर्त एवं चेतनायुक्त बनाया है। यहाँ प्रकृति आत्मीयता से जीवित हो उठी है। यहाँ एक तरफ प्रकृति ने सूरज का गर्वहरण किया है, तो वहीं हथेली को स्पर्श कर हौले-हौले से धूप का फैलना मनुष्य को उल्लास से भर देता है। यह कवि की खासियत है कि कम शब्दों में प्रकृति की अनुपम सुंदरता को बड़े ही सहज, सरलता से अरुणा जी ने अभिव्यक्त किया है। हालाँकि उनकी कविताओं में प्रकृति का केवल मोहक दृश्य ही अंकित नहीं है, भयावह एवं यातनामय घटनाएँ भी दर्ज हैं। प्रकृति हमेशा अपना रंग बदलती है। कभी वह मनुष्य को सुख से भर देती है, तो कभी उसके आशियाने को उजाड़ भी देती है। भारतीय किसान इसे भली-भांति समझता है।

भारत कृषि प्रधान देश है और खेती प्रकृति पर ही निर्भर है। प्रकृति का संग-साथ खेतों में हरियाली भर देता है, तो प्रकृति का उजाड़ना गले का फांस भी बन जाता है। यही वजह है, वर्तमान समय में खेती घाटे का सौदा हो गई है। खेती करने से ज्यादा खेती बेचने की मानसिकता किसान की अधिक हो रही है। क्योंकि प्राकृतिक आपदाओं ने उसे भीतर से तोड़ दिया है। फिर भी जीने की जद्दोजहद उसके भीतर मौजूद है। बारिश या मौसम की बेरुखी से हर एक का जीवन प्रभावित होता है। कवि ने इस दुःख-दर्द की दासता को नपे-तुले शब्दों में मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है। जैसे,

**“मौसम को हुआ क्या
वसंत में जेठ
सावन में वैसाख
मस्ती भरी हवाएँ
कहाँ बिलगा गई
भूल किससे हुई ?”⁵
“कहाँ गई
मिट्टी की सौंधी महक
बिजली चमकी
बादल गरजे
चले गए बिना बरसे ही
कहावत सच करते हुए”⁶**

वर्तमान समय में प्रकृति का संतुलन बिगड़-सा गया है। बारिश, धूप और ठंड का कोई स्थायी समय नहीं रहा है। एक समय था जब प्रकृति का यह चक्र समय से चल रहा था। किंतु मनुष्य के स्वार्थ प्रवृत्ति ने अपने विकास के नाम पर प्रकृति का दोहन किया है। जंगलों और खेती को उजाड़ कर कई कल-कारखानों का निर्माण किया है, जिससे जनम लेनेवाली रासायनिक वायु से प्रदूषण फैल रहा है, जिसने कई बीमारियों को जनम दिया है। आज ग्लोबल वार्मिंग एक बड़ी समस्या बन चुकी है, जिससे निजात पाना मुश्किल हुआ है। इसी ने प्राकृतिक चक्र को रोक दिया है। अब बारिश, ठंड या धूप का कोई निश्चित समय नहीं रहा है। इससे सबसे ज्यादा आहत किसान ही हो रहा है। दो-दो बार बुआई करने के बाद भी अच्छी फसल आने की उम्मीद करना उस के लिए मुश्किल हुआ है। अकाल या बेमौसम बारिश ने किसान जीवन को संघर्षपूर्ण खाई में धकेल दिया है। बारिश के समय का उल्लास और उत्साह गायब है, अब तो हर चेहरे पर दहशत और कई प्रश्न दर्ज हैं। अरुणा जी ने बिना बरसे बादल के चले

जाने की जो स्थिति है, उसे बखूबी अभिव्यक्त किया है। मराठी के कवि श्रीराम गोविंद गव्हाणे का ‘अबादानी हो जाए’ यह काव्य संग्रह भी किसान संस्कृति और जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज है। उनकी कविता है, “मगर पता नहीं क्यों और कैसे ? दिन फिर गए, दो बार की बोआई के बावजूद, ऐन मौसम में पानी अड़ गया, किसान के सपनों का तब रंग ही उड़ गया”⁷ यह किसान जीवन की भयावह त्रासदी है। अरुणा जी ने भी प्रकृति के सुखात्मक एवं दुखात्मक स्थितियों का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है। हालाँकि उनकी कविताओं में कई भी घटनाओं का विवरण या वर्णन नहीं है, मगर वे शब्दों को काव्य में ऐसे पिरोती हैं कि पाठक कविता के भीतर के अर्थ से भी जुड़ जाता है। उनकी कविताओं में अन्य विषयों की तुलना में प्रकृति की सुंदरता और उसका कोमल-कठोरतम रूप अधिक उभरकर आया है।

साहित्य का मूल भाव ‘प्रेम’ है। प्रेम ही मनुष्य जीवन का आधार एवं लक्ष्य है। प्रेम तत्त्व से ही मानवीय एवं नैतिक मूल्यों का विकास हुआ है। कबीर ने ‘ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय’ कहकर पहले ही प्रेम के महत्व को उजागर किया है। दुर्भाग्य से स्वार्थ केंद्रित वर्तमान समय में प्रेम महज आदर्श का प्रतीक बन गया है। नहीं तो हमारे समाज में समस्याएँ होती ही नहीं। खून, बलात्कार, चोरी, डकैती और न जाने क्या-क्या ? प्राकृतिक आपदाओं से ज्यादा मनुष्य ने खुद कई समस्याओं को जन्म दिया है। इसीलिए साहित्य ने हमेशा मानवीयता, मनुष्यता एवं प्रेम का प्रचार-प्रसार किया है। अरुणा जी ने भी प्रेम रूपी मूल्य को अपनी कविताओं में दर्ज किया है। वे लिखती हैं,

**“प्रेम में
हिसाब किताब किया
तो प्रेम ही
नहीं रहा
कैद हो गया
अंकों में।”⁸**

प्रेम में व्यावहारिकता नहीं होती। प्रेम से तो रिश्ते-नाते आकार लेते हैं। यह एक आंतरिक भाव है, जिसे व्यक्त नहीं, महसूस किया जाता है। हर रिश्ते के मूल में इसी का अस्तित्व होता है। इस संग्रह में प्रेम से बने रिश्तों की सुनहरी यादें हैं। कवि की कलम माता-पिता और बच्चों के रिश्तों में अधिक रमी है। ‘माँ’ दुनिया का

सबसे सुंदर शब्द और रिश्ता भी है। साहित्य में सर्वाधिक 'माँ' पर ही लिखा गया है। इस संग्रह में 'माँ' और 'पिता' समान रूप से अभिव्यक्त हैं। संग्रह की प्रारंभिक कविताओं में माता-पिता का वात्सल्य और स्नेह भाव अभिव्यक्त हुआ है। जैसे,

“माँ
थपकियाँ लोरियाँ
संभालते मजबूत कंधे
पिता के।”⁹
“पिता बरगद
माँ
मजबूत शाखे
बच्चे
नव पल्लव”¹⁰
“बच्चों का मन
चन्द्र सा उज्ज्वल
पानी सा सरल तरल
फूलों सा तन
कोमल कमल”¹¹

माता-पिता की शीतल छाया में ही बचपन पनपता है। बचपन जीवन का सबसे सुंदर हिस्सा होता है। हम जैसे-जैसे बड़े होने लगते हैं, धीरे-धीरे हमारा बचपना भी खोने लगता है। निश्चल हँसी, कपट में बदल जाती है। और हम भी सहजता से व्यावहारिकता पर आ जाते हैं। इसीलिए तो जगजीत सिंह भी कहते हैं, ‘मगर मुझको लौटा दो, बचपन का सावन, वो कागज की कश्ती, वो बारिश का पानी’। उम्र बीतने पर बचपन याद आता है। अरुणा जी ने भी लघु कविताओं के बहाने पाठक को उन गलियों की सैर कराई है, जहाँ आज भी हमारी बचपन की यादें जिंदा हैं। उन गली-मुहल्लों में आज भी हमारी खिलखिलाहट रची-बसी है।

‘गुनगुनाने लगी भोर’ इस लघु काव्य संग्रह में कई विषय समाहित हैं। इसकी कविताएँ भले ही लघु हो, उसमें विषय की व्यापकता है। अरुणा जी के व्यक्तित्व की भी यही विशेषता रही है। वे कम बोलती हैं, मगर उनकी बातें असर करती हैं। वे खुद रिश्तों के महत्व एवं अहमियत को जानती हैं। और जानती हैं अपने अस्तित्व को संभालना। वे एक स्त्री हैं, और एक स्त्री के लिए हक, अधिकार और आजादी क्या मायने रखती है, वह जानती हैं। वैसे, आदिम काल से ही स्त्री अपने

अस्तित्व के लिए जूझ रही रही है। पुरुषप्रधान समाज ने धर्म और ईश्वर के नाम पर उसे कई बंधनों में जकड़ रखा था। आधुनिक स्त्री ने शिक्षा और रोजगार हासिल कर उन बंधनों को टुकरा दिया है। वह अपनी पहचान बनाने में कामयाब रही है। मगर फिर भी स्त्री समस्याओं का अंत नहीं हुआ है। आज भी पारंपरिक सोच और समझ रखने वाला समाज स्त्री स्वतंत्रता के खिलाफ है। जिसका परिणाम है कि आज भी गर्भ में ही ‘स्त्री भ्रूण’ की हत्या की जाती है। कवि मन इन सब घटनाओं से आहत होता है। वे सोचती हैं, हम जी रहे हैं 21 वीं सदी में मगर हमारी सोच स्त्री के संदर्भ में आदिम ही है। जैसे, अरुणा जी लिखती हैं,

“यह किसने मेरा
पैर खींचा
तब जब
मैं
रोशनी की ओर
बढ़ रही थी”¹²

यह वर्तमान सच्चाई है। हम आज भी स्त्री को अँधेरी दल-दल में धकेलना चाहते हैं। उसकी पहचान मिटाना चाहते हैं। औरत की जिंदगी का सच यह है कि उसकी पहचान पुरुष के साथ जुड़कर ही आती है। बचपन में वह पिता के नाम से, शादी के बाद पति के नाम से और बुढ़ापे में बच्चों के नाम से ही उसकी पहचान होती है। मगर आधुनिक स्त्री ने इन मिथकों को तोड़कर अपनी अलग पहचान बनाई है। वह पिता, पति या बच्चों पर आश्रित नहीं है, बल्कि अपना दायित्व निर्वहन कर रिश्तों को भी संभाल रही है। यही बात पारंपरिक सोच रखनेवाले समाज को अखर रही है, जिससे औरत को दुबारा चारदीवारी में कैद करने साजिश की जा रही है। उसके पहनने, ओढ़ने, बोलने पर अप्रत्यक्ष सेंसरशिप लगा दी है। यही बात कवि ने यहाँ व्यक्त की है। अरुणा जी स्त्री के अस्तित्व को मिटता हुआ देख रही हैं। वैसे, स्त्री भी दो दुनिया में बंट गयी है, एक वह है, जिसने अपनी आजादी पायी है और दूसरी वह है, जो आज भी गुलामी में छटपटा रही है। उसकी स्वतंत्रता और उसका अस्तित्व उसकी आँखों के सामने धूमिल हो रहा है। जैसे,

“वायु जल अग्नि
सूर्य पृथ्वी आकाश
सभी से पूछ मैंने
अपने अस्तित्व का सवाल

**जवाब नदारद था
मेरा अस्तित्व मेरे सामने
जंजीरों में बंधा था।¹³**

अरुणा जी सशक्त कवयित्री हैं। अपने आसपास की दुनिया की सच्चाई को वे बखूबी समझती हैं। वे वर्णन या विवरण में नहीं उलझती, सीधे जड़ पर वार करती हैं। क्योंकि वे जानती हैं, परिवर्तन उपरी सतह पर नहीं, नींव में होना जरूरी है। और इस परिवर्तन की पहल भी स्त्री को ही करनी होगी। दरअसल स्त्री ही परिवार और समाज का उत्थान करती हैं। संस्कार, संस्कृति और सभ्यता का वहन करती हैं। लेकिन उसके हिस्से की धूप उसे मिली नहीं। यहाँ तक की सपनें देखने का अधिकार भी उसे नहीं दिया गया। जन्म से लेकर मृत्यु तक उसे विशेष दायित्व बोध में जकड़ दिया गया है। जहाँ उसके सपनें, अरमान कभी आकार नहीं लेते। फिर उसकी जिंदगी आसुओं का सैलाब बन पिघलती रहती है। जैसे,

**“नयनों ने बुने सपने
रंगहीन मौसम ने
चुपके से चुराये
दर्द की चादर समेटे
बरसी आँखें
बेहिसाब”¹⁴**

अरुणा जी का शब्द सामर्थ्य असीमित है। वे प्रसंगानुकूल एवं भावानुकूल शब्दों का चयन करती हैं। शमशेर एवं त्रिलोचन की तरह ही उनके शब्द ताकदवर हैं। वे शब्दों में उलझती नहीं, सीधे-साधे शब्दों को व्यवहार में लाती हैं। मानो शब्द उनकी कलम का स्पर्श पाकर स्पंदित हो जाते हैं। उनके अधिकतम शब्द बोलचाल के ही हैं। मगर वे सोचने-समझने के लिए बाध्य करते हैं। यही वजह है, अरुणा जी सीधे औरत के दुःख-दर्द से जुड़ जाती हैं। वे सपनों का महत्व जानती हैं, और उनके टूटने-बिखरने के दर्द से भी परिचित हैं। अतः वे चाहती हैं, औरत सपने भी देखें और उन्हें पूरा करने का हौसला भी जुटाएँ। क्योंकि वर्तमान समय में हर कोई भाग रहा है। दरअसल जिंदगी की रफ्तार में हम असल में जीना ही भूल गए हैं। हम तो बस आनेवाले दिन को ढकेलते हुए आगे बढ़ रहे हैं। और हमारे सपनें मृगजल की तरह हमसे और आगे दौड़ रहे हैं। अरुणा जी लिखती हैं,

**“अठन्नी भर समय
रुपैया भर जरूरतें**

अनगिनत सपनें”¹⁵

**“हथेली भर समय
मुट्ठी भर रोशनी
तलाशती रहीं आँखें”¹⁶**

इन पंक्तियों में अनगिनत सपनों की ओर बढ़ता हुआ मनुष्य है। किंतु हथेली भर समय और मुट्ठी भर रोशनी भी उसके पास नहीं हैं। अतः भविष्य साशंक है। वर्तमान स्थितियों ने मनुष्य के भविष्य को भी अंधकार में धकेल दिया है। अब नए सिरे से भविष्य का रास्ता हमें तैयार करना है। यह रास्ता हमारे सपनों और उम्मीदों से होकर ही गुजरेगा, इसमें शक नहीं।

निष्कर्ष

दरअसल अरुणा दुबलिश की लघु कविताएँ अपने समय की सच्चाई को बेबाकी से अभिव्यक्त करती हैं। इन कविताओं में प्रखर विद्रोह या विरोध नहीं है, किंतु इनमें समाज परिवर्तन की अदम्य इच्छा है। वर्तमान समय में तमाम विधाएँ प्रचलित हैं, जिसमें रचनाकार अपने आपको अभिव्यक्त करता है। उपन्यास, कथा-कहानी, नाटक, कविता, संस्मरण, आत्मकथा आदि साहित्य सृजन के विविध रूप हैं। अरुणा जी ने इनसे थोड़ा अलग हटकर लघु कविताओं को अपने सृजन का आधार बनाया है। वैसे, लघु कविता का सृजन मुश्किल है, मगर अरुणा जी की प्रतिभा ने इसे सहज साध्य बनाया है। उनकी कविताओं में प्रकृति, स्त्री संघर्ष, प्रेम, मानवीय रिश्ते, गाँव की संस्कृति, मनुष्य का इतिहास आदि विषय समाहित हैं। वे बेहिचक अपनी समकालीन स्थितियों पर प्रकाश डालती हैं। उनकी भाषा और अभिव्यक्ति शैली अनूठी है। जिससे उनकी कविताओं के शब्द मुहावरें, लोकोक्ति, सूक्ति वाक्य की तरह ही महसूस होते हैं। शमशेर की ‘बात बोलेगी, भेद खोलेगी’ की तरह ही अरुणा जी की कई कविताएँ मुहावरेदार भाषा को सहज साध्य बनाती हैं। ‘गुनगुनाने लगी भोर’ काव्य संकलन में काव्य सौंदर्य के सभी उपादान मौजूद हैं। भाषा, शिल्प और भाव के अनूठे संयोजन ने इस काव्य संग्रह को बेहतरीन बनाया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गुनगुनाने लगी भोर, अरुणा दुबलिश, देशभारती प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2020, पृ.51
2. वही, पृ.01
3. वही, पृ.58

- | | |
|---|-------------------|
| 4. वहीं, पृ. 76 | 10. वहीं, पृ. 14 |
| 5. वहीं, पृ. 61 | 11. वहीं, पृ. 20 |
| 6. वहीं, पृ. 62 | 12. वहीं, पृ. 23 |
| 7. अबादानी हो जाए, श्रीराम गोविंद गव्हाणे, सूर्य मुद्रा प्रकाशन, नांदेड, प्रथम संस्करण-2022, पृ 131 | 13. वहीं, पृ. 104 |
| 8. गुनगुनाने लगी भोर, अरुणा दुबलिश, देशभारती प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2020, पृ 128 | 14. वहीं, पृ. 21 |
| 9. वहीं, पृ. 13 | 15. वहीं, पृ. 100 |
| | 16. वहीं, पृ. 30 |

जी 20, भारत की अध्यक्षता एवं महिला सशक्तिकरण: विभिन्न आयाम तथा सम्भावनाएं

डॉ. राहुल चौधरी

सहायक आचार्य, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय परिदृश्य में जी 20 संगठन महत्वपूर्ण अन्तर-सरकारी मंच है, जो विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों को संपूर्ण मानवीय विकास के लिए साझा नीति-निर्माण एवं उसके क्रियान्वयन के लिए एक साथ कार्य करने को प्रेरित करता है। जी 20 की अध्यक्षता पहली बार, विश्व के प्राचीनतम एवं सबसे विशाल लोकतांत्रिक राष्ट्र, भारत के पास है, जो बहुलता, विश्व शांति एवं अहिंसा का ध्वजवाहक है। भारत की अध्यक्षता में होने वाले जी 20 शिखर सम्मेलन का विषय “वसुधैव कुटुम्बकम्” या “एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य” है। जी 20 देशों की विभिन्न महत्वपूर्ण प्राथमिकताएं हैं, जैसे समावेशी-त्वरित आर्थिक विकास, सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति, पर्यावरण संरक्षण एवं विकास आदि। इन प्राथमिकताओं की सुनिश्चितता एवं सफल प्राप्ति तथा “एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य” की सार्थकता वास्तविक रूप में तभी सम्भव है, जब विश्व में न केवल महिलाओं को पुरुषों के समकक्ष अधिकार प्राप्त हों, बल्कि महिलाओं के विरुद्ध शताब्दियों से हो रहे भेदभाव का अंत कर, उन्हें सशक्त बनाया जाए। यह शोध पत्र इस बात का विवेचन करता है कि महिला सशक्तिकरण के माध्यम से ही जी 20 राष्ट्र तथा विश्व के विभिन्न राष्ट्र, सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त कर सकते हैं। यह शोध पत्र इस बात को इंगित करता है कि महिला सशक्तिकरण, न केवल राजनीतिक बल्कि सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में वसुधैव कुटुम्बकम् धारणा का आधारभूत लक्षण है। भारत में आज़ादी से वर्तमान “अमृत महोत्सव” तक, यहाँ की सरकारों ने महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में बहुत से कदम उठाए हैं, जिनमें अभी भविष्य में सुधारात्मक सम्भावनाएं तो हैं, लेकिन साथ में ही यह विभिन्न राष्ट्रों के लिए अनुकरणीय भी है। यह शोध लेख भारत सरकार द्वारा आज़ादी के बाद विभिन्न क्षेत्रों में महिला सशक्तिकरण के लिए किए गए प्रयासों का विश्लेषण भी करता है।

संकेताक्षर : जी 20, वसुधैव कुटुम्बकम्, महिला सशक्तिकरण, सतत विकास, अमृत महोत्सव, अधिकार।

जी

20 या ग्रुप ऑफ ट्वेंटी विश्व के सबसे विकसित जी 8 समूह के सदस्य राष्ट्रों के साथ-साथ प्रमुख तथा उभरते हुए विकासशील राष्ट्रों का संगठन है। इस प्रकार यह विश्व की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं के लिए आर्थिक मंथन, सहयोग एवं भविष्य की रूपरेखा निर्धारित करने वाला महत्वपूर्ण मंच है। यह संगठन विश्व के सभी प्रधान राष्ट्रों को एक साथ लाता है, जिसके माध्यम से यह राष्ट्र न केवल आर्थिक मामलों पर बल्कि सामाजिक, राजनीतिक, प्रशासनिक, पर्यावरणीय एवं उत्कृष्ट मानवीय जीवन से संबंधित विषयों पर साझा कार्यक्रम तैयार करते हैं और वैश्विक समुदाय की बेहतरी के लिए उसे लागू करने के लिए कटिबद्ध भी होते हैं।

जी 20 की स्थापना

जी 20 -1999 - स्थापना, वित्त मंत्रियों और केंद्रीय बैंक के गवर्नरों के समूह के रूप में।

2008- क्रमोन्नत, जी 20 राष्ट्राध्यक्षों/शासनाध्यक्षों का शिखर सम्मेलन भी सम्मिलित।

सारणी 1: जी 20 घटनाक्रम

1999	G 20 – एशियाई वित्तीय संकट के बाद स्थापना
2008	पहला आधिकारिक शिखर सम्मलेन

1997 के एशियाई वित्तीय संकट के बाद, जी 7 संगठन की वॉशिंगटन बैठक (1999) में वित्त मंत्रियों और केंद्रीय बैंक के गवर्नरों ने यह सुझाव दिया कि वैश्विक आर्थिक परिदृश्य पर व्यापक चर्चा एवं विश्व की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में सहयोग को बढ़ावा देने के लिए कुछ अन्य देशों के प्रतिनिधियों को भी बैठक में आमंत्रित किया जाना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप एक विस्तृत संगठन की स्थापना हुई, जिसे जी 20 कहा गया। जी 20 राष्ट्रों के वित्त मंत्रियों और केंद्रीय बैंक के गवर्नरों की पहली बैठक 1999 में बर्लिन में हुई। इस समूह की खास विशेषता यह है कि इसने विकसित एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में समन्वय तथा सहयोग के लिए एक आधार प्रदान किया। 2008 में वैश्विक आर्थिक मंदी के परिप्रेक्ष्य में, पहली बार जी

20 देशों के राष्ट्राध्यक्षों की बैठक वॉशिंगटन में हुई, जिसके बाद प्रतिवर्ष जी 20 नेताओं के शिखर सम्मेलन का आयोजन भी किया जाने लगा और इस प्रकार यह संगठन राष्ट्राध्यक्षों/शासनाध्यक्षों के शिखर सम्मेलन के स्तर पर क्रमोन्नत हुआ।

जी 20 के सदस्य राष्ट्र

जी 20 एक अन्तर-सरकारी संगठन है, जिसमें 19 राष्ट्र तथा यूरोपियन संघ सम्मिलित हैं। इसमें निम्नलिखित 19 राष्ट्र शामिल हैं- अर्जेंटीना, ऑस्ट्रेलिया, ब्राजील, कनाडा, चीन, फ्रांस, जर्मनी, भारत, इंडोनेशिया, इटली, जापान, कोरिया गणराज्य, मैक्सिको, रूस, सऊदी अरब, दक्षिण अफ्रीका, तुर्की, यूनाइटेड किंगडम तथा संयुक्त राज्य अमेरिका।

G20		
G8		
G7		
कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान, यूनाइटेड किंगडम, संयुक्त राज्य अमेरिका।	रूस	अर्जेंटीना, ऑस्ट्रेलिया, ब्राजील, चीन, यूरोपियन संघ, भारत, इंडोनेशिया, कोरिया गणराज्य, मैक्सिको, सऊदी अरब, दक्षिण अफ्रीका, तुर्की

चित्र 1: G7, G8 तथा G20 समूह के सदस्य राष्ट्र

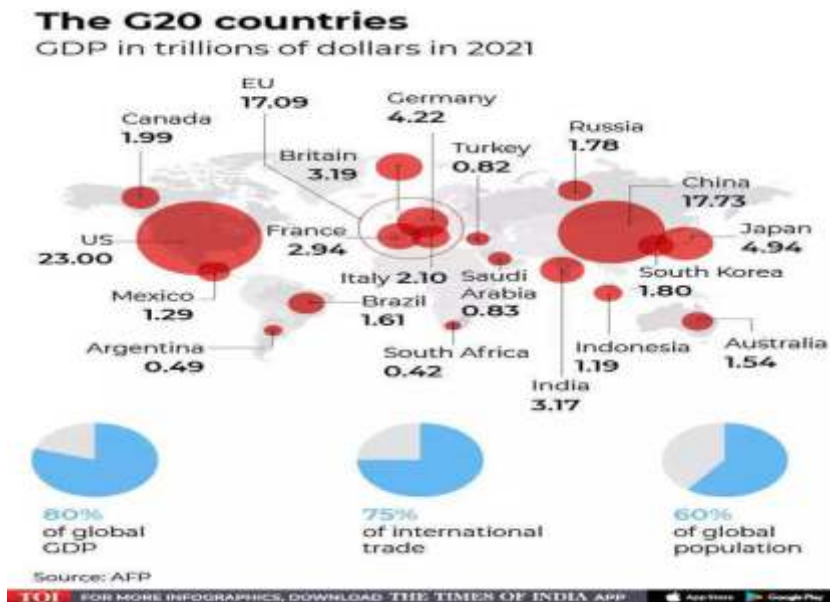
सदस्य देशों के अतिरिक्त, भारत की अध्यक्षता में, कुछ विशिष्ट अतिथि राष्ट्रों को भी आमंत्रित किया गया है, जैसे- बांग्लादेश, मिस्र, मॉरिशस, नीदरलैंड, नाइजीरिया, ओमान, सिंगापुर, स्पेन तथा संयुक्त अरब अमीरात। साथ ही, अंतरराष्ट्रीय संगठन जैसे यूएन, विश्व बैंक, आई.एम.एफ., डब्ल्यू.टी.ओ, आई.एल.ओ,

डब्ल्यू.एच.ओ, ओ.ई.सी.डी, एफ.एस.बी, तथा क्षेत्रीय संगठन जैसे एयू, आसियान व एनईपीएडी की चेयर के अलावा भारत की अध्यक्षता में आयोजित जी 20 सम्मेलन में एडीबी, सीडीआरआई और आई एस ए को भी अतिथि संगठनों की श्रेणी में आमंत्रित किया गया है।

जी 20 का महत्व

जी 20 के सदस्य राष्ट्र वैश्विक व्यापार में लगभग 75: भाग, वैश्विक सकल घरेलू उत्पादन के लगभग 80: भाग तथा विश्व की जनसंख्या के लगभग 60: लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार यह संगठन

विश्व के प्रमुख विकसित एवं विकासशील देशों को सम्मिलित करता है, जो विश्व अर्थव्यवस्था, व्यापार तथा वैश्विक समुदाय को प्रभावित करते हैं तथा इन्हें एक सकारात्मक मानवीय दिशा प्रदान कर सकते हैं।



चित्र 2: वैश्विक व्यवस्था में G 20 राष्ट्रों की भागीदारी

(स्रोत: <https://timesofindia-indiatimes.com/india/india&assumes&g20&presidency&what&it&means&articleshow@95553671-cms>)

शुरुआत में यह केवल आर्थिक मामलों पर मंथन एवं उनके प्रशासनिक क्रियान्वयन तक सीमित था लेकिन धीरे-धीरे इसके विचार-विमर्श एवं सहयोग के क्षेत्राधिकार को और अधिक व्यापक किया गया एवं इसके एजेंडा में सतत विकास, पर्यावरण संरक्षण, जलवायु परिवर्तन, कृषि सुधार, स्वास्थ्य उन्नयन, वैश्विक शांति, समान एवं समावेशी विकास, महिला सशक्तिकरण, पारदर्शी सुशासन, भ्रष्टाचार निरोध, ऊर्जा आदि मुद्दों को भी सम्मिलित किया गया।

जी 20 संगठन का शिखर सम्मेलन एवं कार्यप्रणाली

जी 20 समूह का कोई स्थायी कार्यालय या सचिवालय नहीं है। एक वर्ष के लिए सदस्य राष्ट्र, घूर्णन के आधार पर, समूह के अध्यक्ष का चुनाव करते हैं, जो अपने निर्धारित अध्यक्षता के वर्ष में, पूरे साल, समूह की विभिन्न गतिविधियों की मेज़बानी करता है। इस प्रकार प्रतिवर्ष शिखर सम्मेलन का आयोजन अध्यक्ष राष्ट्र के नेतृत्व में आयोजित किया जाता है। एक वर्ष के लिए

अध्यक्ष राष्ट्र ही जी 20 राष्ट्रों के विभिन्न कार्यक्रमों एवं आर्थिक, प्रशासनिक, सामाजिक आदि से संबंधित एजेंडा का निर्धारण एवं संचालन करता है। कार्यक्रम एवं एजेंडा में निरंतरता एवं समन्वय के लिए, जी 20 की अध्यक्षता “ट्रोइका” के आधार पर कार्य करती है अर्थात् पूर्व (पिछला), वर्तमान तथा भविष्य (आगामी) के अध्यक्ष मिलकर तालमेल के साथ एजेंडा पर कार्य करते हैं। भारत के पास जी 20 की अध्यक्षता 1 दिसम्बर 2022 से 30 नवंबर 2023 तक रहेगी और वर्तमान में जी 20 की ट्रोइका में क्रमशः इंडोनेशिया (2022 का अध्यक्ष), भारत और ब्राजील (2024 का अध्यक्ष) सम्मिलित हैं।

जी 20 देशों की बैठकें दो समानांतर स्तरों पर आयोजित होती हैं। पहली, ‘वित्त’ स्तर तथा दूसरी ‘शेरपा’ स्तर पर। वित्त स्तर की बैठकों में सदस्य राष्ट्रों के वित्त मंत्रियों तथा केंद्रीय बैंक के गवर्नरों के साथ-साथ अतिथि देशों एवं आमंत्रित अन्तरराष्ट्रीय व

क्षेत्रीय संगठनों के प्रतिनिधियों को भी सम्मिलित किया जाता है। शेरपा स्तर की बैठकों का नेतृत्व शेरपाओं द्वारा किया जाता है, जो सदस्य तथा अन्य देशों के नेताओं के निजी प्रतिनिधि होते हैं। दोनों स्तरों के अंतर्गत विभिन्न मुद्दों पर अलग-अलग कार्य समूह होते हैं, जो संबंधित मुद्दों पर बैठकों के माध्यम से निर्णय-निर्माण को आगे बढ़ाने का कार्य करते हैं। शेरपा, वर्ष भर होने वाली इन बैठकों का अवलोकन एवं मुआयना करते हैं तथा उसके आधार पर शिखर सम्मेलन की चर्चाओं एवं एजेंडा का निर्माण करते हैं। इस प्रकार यह जी 20 के मूल लक्ष्यों में समन्वय स्थापित करते हैं। इनके अलावा विभिन्न सम्पर्क-सहयोग समूह होते हैं, जो जी 20 राष्ट्रों के नागरिकों, शोधकर्ताओं, उद्यमियों, महिलाओं, एनजीओ आदि को, समूह के निर्धारित लक्ष्यों के लिए, साथ लेकर आते हैं।

जी 20 तथा भारत की अध्यक्षता

भारत के लिए वर्ष 2023 ऐतिहासिक होगा क्योंकि विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र, जिसने वैश्विक

शांति-अहिंसा को बढ़ावा दिया है, जो वैश्विक समस्याओं का मध्यम मार्ग द्वारा समाधान का समर्थन करता है एवं जो दुनिया की सबसे महत्वपूर्ण उभरती अर्थव्यवस्था है, वह पहली बार जी 20 राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्षों/ शासनाध्यक्षों के शिखर सम्मेलन की अध्यक्षता करेगा तथा उसकी मेजबानी करेगा। इससे पहले भारत 2002 में नई दिल्ली में जी 20 के वित्त मंत्रियों एवं केंद्रीय बैंक के गवर्नरों की बैठक की मेजबानी कर चुका है।

भारत की अध्यक्षता में जी 20 का लोगो (प्रतीक चिह्न)— जी 20 का 2023 का लोगो भारतीय तिरंगे के आकर्षक रंगों— केसरिया, सफेद, हरे और नीले रंगों से मिलकर बना है, इसमें पृथ्वी ग्रह को भारतीय राष्ट्रीय पुष्प कमल के साथ दर्शाया गया है। पृथ्वी ग्रह, भारतीय संस्कृति का पर्यावरण संरक्षण पर बल एवं संपूर्ण सृष्टि के प्रति पर्यावरण हितैषी दृष्टिकोण को इंगित करता है। कमल विभिन्न चुनौतियों के मध्य विकास का प्रतीक है। लोगो के नीचे देवनागरी लिपि में “भारत” लिखा हुआ है।



चित्र 3: भारत की अध्यक्षता में जी 20 का लोगो (प्रतीक चिह्न)

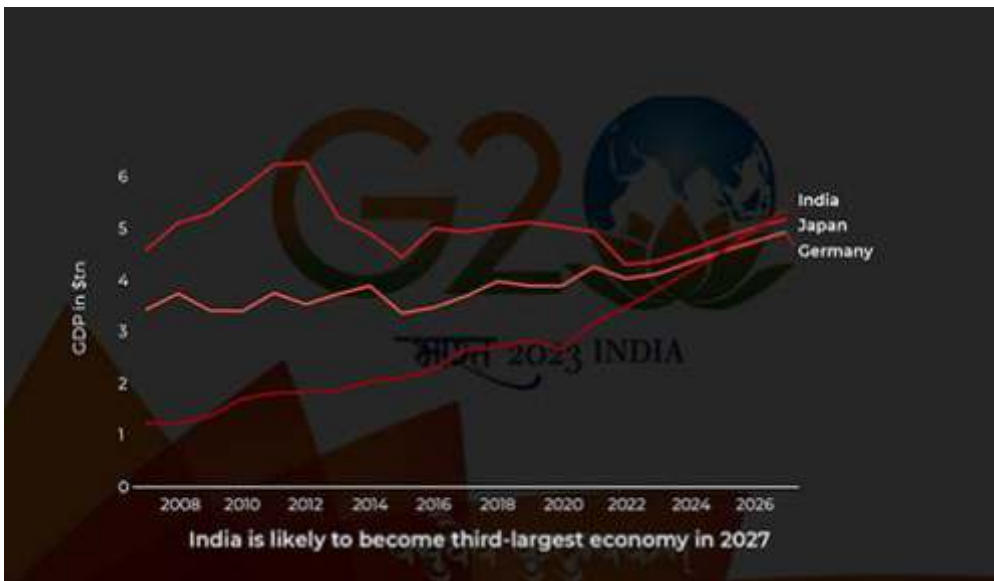
स्रोत: <https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1874524>

भारत की अध्यक्षता में जी 20 का विषय “वसुधैव कुटुम्बकम्” या “एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य” है। जी 20, का यह विषय महा उपनिषद के अध्याय 6 के श्लोक 71 से प्रेरित है, जिसमें वसुधैव कुटुम्बकम् का वर्णन किया गया है। वसुधैव कुटुम्बकम् का अर्थ है, पृथ्वी से हम सब एक परिवार की तरह जुड़े हुए हैं। यह दर्शाता है कि पृथ्वी एक है, इसके समस्त घटक— मनुष्य, जीव-जंतु, पेड़-पौधे, संसाधन, पर्यावरण आदि एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं तथा सभी का अस्तित्व एक-दूसरे पर निर्भर करता है, सभी का संरक्षण आवश्यक है। वसुधैव कुटुम्बकम् भारतीय

संस्कृति के मूल तत्वों में से है, जो संपूर्ण विश्व के कल्याण की भावना पर बल देता है। जी 20 का यह विषय इस बात पर बल देता है कि हम पृथ्वी पर एक परिवार की तरह हैं, और एक भविष्य को साझा करते हैं, इसलिए हमें सभी क्षेत्रों में समावेशी विकास को प्राप्त करने के लिए एकीकृत प्रयास करने चाहिए। यह इस बात पर भी बल देता है कि व्यक्तिगत क्षेत्र के साथ-साथ राष्ट्रीय विकास के संदर्भ में हमें पर्यावरण हितैषी-टिकाऊ विकास के विकल्पों को प्राथमिकता देनी चाहिए।

जी 20 सम्मेलन में भारत की प्राथमिकताएं – भारत 2027 में विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन जाएगा। भारत विकासशील राष्ट्रों में सामरिक, राजनीतिक, जनसांख्यिकीय लाभांश एवं विज्ञान-तकनीकी दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण राज्य है

और इसलिए अन्तरराष्ट्रीय मंच पर वह वैश्विक दक्षिण की अगुवाई सशक्त रूप से कर सकता है। इन्हीं आधारों पर, भारत को जी 20 समूह में अपना अग्रणी स्थान ग्रहण कर, इसके एजेंडा निर्धारण एवं क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए।



चित्र 4: भारतीय अर्थव्यवस्था अनुमानित विकासदर-2027

(स्रोत%<https://timesofindia-indiatimes.com/india/in&charts&the&india&that&leads&g20/@amp&articleshow/@97547349-cms>)

भारत की अध्यक्षता में आयोजित होने वाली जी 20 बैठकों में, जी 20 की वर्तमान थीम “वसुधैव कुटुम्बकम्”, भारत की प्रमुख प्राथमिकताओं को भी दर्शाती है।

1) न्यायपूर्ण, समावेशी और विकेन्द्रित विकास- अपनी अध्यक्षता में, भारत की प्राथमिकता है कि वह न्यायपूर्ण, समावेशी और विकेन्द्रित विकास पर बल दे, क्योंकि इन्हीं के माध्यम से वैश्विक समुदाय सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है। इसके लिए भारत को अपना ध्यान वैश्विक अर्थव्यवस्था एवं व्यापार में संरचनात्मक परिवर्तन पर केंद्रित करना चाहिए, जिसका लाभ छोटी अर्थव्यवस्थाओं को भी होगा। जैसे- कृषि क्षेत्र में मूल्य संवर्धन तकनीकों का हस्तांतरण एवं खाद्य सुरक्षा पर बल, तीसरे विश्व में कौशल संवर्धन एवं प्रौद्योगिकी विभाजन को कम करना, एमएसएमई का वैश्विक व्यापार में त्वरित एकीकरण आदि।

2) हरित अर्थव्यवस्था एवं विकास तथा इसके लिए वित्तीय प्रबंध पर बल- पर्यावरणीय प्रदूषण एवं अवनति

तथा इसके परिणामस्वरूप उपजी जलवायु परिवर्तन से संबंधित समस्याएं, वैश्विक समुदाय के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है। इसका समाधान हरित अर्थव्यवस्था, तकनीक एवं विकास के संदर्भ में देखा जा सकता है। लेकिन विकासशील एवं अल्पविकसित राष्ट्रों के समक्ष हरित तकनीक एवं इससे संबंधित वित्त बड़ी समस्या है। इस संदर्भ में भारत को हरित तकनीक और इससे संबंधित वित्त के हस्तांतरण पर बल देना चाहिए, ताकि विकासशील एवं अल्पविकसित देश अपनी अर्थव्यवस्थाओं को पर्यावरण हितैषी अर्थव्यवस्थाओं में रुपान्तरित कर सकें। साथ ही, भारत की अध्यक्षता में, जी 20 की, विश्व को सबसे प्रमुख देन Life (Lifestyle For Environment- पर्यावरण के लिए जीवनशैली) पर बल देना होगा। यह भारतीय संस्कृति और जीवनशैली का एक आधारभूत लक्षण है, जिसके अनुसार पर्यावरण को मानव जीवन का एक अभिन्न अंग माना गया है। इसके अनुसार न केवल व्यक्तिगत बल्कि सार्वजनिक क्षेत्र में भी हमारी दिनचर्या पर्यावरण हितैषी होनी चाहिए।

3) बहुपक्षीय वैश्विक राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था एवं संगठन- भारत अपनी अध्यक्षता में, वर्तमान शताब्दी में, बहुपक्षीय वैश्विक राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्थाओं एवं संगठनों की स्थापना तथा उनके प्रसार के समर्थन में वैश्विक मत निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है। जैसे - यू एन, विश्व व्यापार संगठन, आई. एम.एफ. के लोकतंत्रीकरण एवं विकेंद्रीकरण के समर्थन में जनमत का निर्माण करना।

4) वैश्विक व्यापार में अधिक खुलेपन, स्थायित्व तथा पारदर्शिता का समर्थन- भारत अपनी अध्यक्षता के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय व्यापार में अधिक खुलेपन, स्थायित्व तथा पारदर्शिता की मांग को, वैश्विक दक्षिण के पक्ष में, और आगे बढ़ा सकता है।

5) शांतिपूर्ण सहअस्तित्व पर बल तथा वैश्विक दक्षिण का नेतृत्व- शांतिपूर्ण सहअस्तित्व, वैश्विक शांति और सहयोग के लिए अति आवश्यक है, विशेषकर विकासशील एवं अल्पविकसित राष्ट्रों के लिए। भारत ने विभिन्न मंचों पर वैश्विक दक्षिण का नेतृत्व कर, सामूहिक रूप से इनके हितों को आगे बढ़ाया है। जी 20 का नेतृत्व भी भारत को ये अवसर देता है कि वह दक्षिण के राष्ट्रों के हितों को न केवल विकसित राष्ट्रों के मंचों पर रखे बल्कि पर्यावरण संरक्षण, तकनीकी हस्तांतरण एवं पर्यावरण वित्त आदि मामलों में अपने तथा दक्षिण के राष्ट्रों के हितों के पक्ष में निर्णय करवाये।

6) एस.डी.जी. लक्ष्यों की प्राप्ति एवं इस संदर्भ में तकनीकी एवं सार्वजनिक बुनियादी ढांचे पर बल - एस. डी.जी. लक्ष्यों की प्राप्ति सतत- समावेशी विकास, मानवीय कल्याण एवं सुरक्षित भविष्य के लिए अति आवश्यक है। इस संदर्भ में भारत जी 20 के माध्यम से विश्व की सबसे महत्वपूर्ण विकसित एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को 2030 के लक्ष्यों के प्रति कटिबद्ध करना चाहेगा। साथ ही इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए तकनीकी-डिजिटल एवं सार्वजनिक बुनियादी ढांचे के विकास तथा इनके साझाकरण पर बल दे सकता है। तकनीकी तथा डिजिटल बुनियादी ढांचे की उपलब्धता से वैश्विक दक्षिण के राष्ट्रों को, विकसित राष्ट्रों के, विभिन्न क्षेत्रों में नवीन ज्ञान का लाभ प्राप्त हो सकेगा।

7) महिला नेतृत्व-केंद्रित विकास- भारत महिला केंद्रित विकास एवं महिलाओं के नेतृत्व में विकास के संदर्भ में वैश्विक समुदाय के समक्ष अग्रणी पहल कर सकता है। इस संदर्भ में भारत, जी 20 के माध्यम से महिला

सशक्तिकरण एवं प्रतिनिधित्व को सतत विकास के लिए आवश्यक तत्व स्थापित करने में अपना ध्यान केंद्रित कर सकता है।

महिला सशक्तिकरण: सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

महिलाओं के विरुद्ध लैंगिक आधार पर भेदभाव सदियों से हो रहा है, और इस कृत्रिम भेदभाव का सामना महिलाओं ने जीवन के हर क्षेत्र, विभिन्न परिस्थितियों, प्रत्येक राष्ट्र एवं कालखंड में किया है। इस लैंगिक भेदभाव ने न केवल महिलाओं के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है, बल्कि उनके विकास के मार्ग को बाधित एवं सीमित भी किया है। इस भेदभाव को खत्म कर, महिलाओं को विकास पथ पर अग्रसर करने के लिए, न केवल लैंगिक समानता की आवश्यकता है, बल्कि उससे कहीं अधिक महिला सशक्तिकरण की ज़रूरत है।

लैंगिक समानता का अर्थ है समाज में पुरुषों और महिलाओं के साथ समान व्यवहार करना। पुरुषों और महिलाओं के मध्य सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए तथा साथ ही, महिलाओं को भी समान अधिकार एवं पुरुषों के समक्ष अवसरों की समानता का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। लेकिन महिलाओं ने जो शोषण एवं उत्पीड़न, पितृसत्तात्मक समाज में, सदियों से झेला है उसके दुष्परिणामों को लैंगिक समानता के माध्यम से कम तो किया जा सकता है लेकिन खत्म नहीं, इसलिए अब महिला सशक्तिकरण की माँग की जा रही है।

महिला सशक्तिकरण एक निरंतर प्रक्रिया है जो, पुरुषों के समक्ष महिलाओं की समानता के साथ-साथ इस बात पर भी बल देती है कि सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं को निर्णय-निर्माण की शक्ति प्रदान की जाए ताकि वे स्वयं के लिए निर्णय लेकर, खुद को सशक्त बना सकें। महिलाओं को सशक्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उनका प्रतिनिधित्व समाज के विभिन्न क्षेत्रों में सर्वोच्च पदों पर हों ताकि वे समाज में अपनी स्थिति न केवल सुधार सकें बल्कि समाज की संरचनाओं को अपनी आवश्यकता, आकांक्षा एवं विकास के अनुसार मोड़ सकें।

महिला सशक्तिकरण के मुख्य अंश हैं- महिलाओं को मुक्त चयन की आज़ादी, निर्णय निर्माण प्रक्रिया में उनका जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व, अपने व्यक्तित्व तथा सामाजिक जीवन पर पूर्ण अधिकार,

सामाजिक परिवर्तन एवं विकास को तय करने में पुरुषों के बराबर हिस्सेदारी, ताकि एक ऐसी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना हो सके, जो पूर्णतः महिला समावेशी हो तथा इस प्रकार लैंगिक न्याय पर आधारित हो।

सामाजिक क्षेत्र में महिलाओं को पुरुषों के अधीनस्थ और उनपर आश्रित नहीं समझा जाना चाहिए। उन्हें सामाजिक जीवन में चयन की स्वतंत्रता होनी चाहिए तथा उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा एवं सम्मान, पुरुषों के समान होना चाहिए। उनकी शिक्षा एवं विकित्सा संबंधी आवश्यकता पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि वे भी समाज में एक सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें।

आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं को पुरुषों के समान अवसर, लाभ एवं अधिकार मिलने चाहिए जिससे वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन सकें। उन्हें आर्थिक क्षेत्र में सर्वोच्च पद अपनी जनसंख्या के अनुपात में सुनिश्चित होने चाहिए ताकि वे इस क्षेत्र में हो रहें अपने तथा पर्यावरणीय शोषण का अंत कर, एक न्यायपूर्ण व्यवस्था स्थापित कर सकें। आर्थिक स्वतंत्रता एवं आत्मनिर्भरता के कारण महिलाएं सामाजिक और राजनीतिक बदलाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं का न केवल कार्यपालिका एवं विधानमंडल में उचित प्रतिनिधित्व होना चाहिए बल्कि उन्हें राजनीतिक निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में भी महत्वपूर्ण भूमिका प्राप्त होनी चाहिए, ताकि वह स्वयं के लिए कानून निर्माण कर, समाज में अपनी स्थिति को सुदृढ़ कर सकें। इस प्रकार महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण के माध्यम से उनके सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण को भी सुनिश्चित किया जा सकता है।

सतत विकास एवं महिला सशक्तिकरण

सतत विकास अर्थात् विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति के पथ पर इस तरह अग्रसर होना कि आने वाली पीढ़ियों की माँगों को पूरा करने की क्षमता रखते हुए, वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को भी पूरा किया जा सके। 2015 में आयोजित संयुक्त राष्ट्र महासभा की बैठक में 17 सतत विकास लक्ष्यों को तय किया गया जिन्हें सभी सदस्य राष्ट्रों को 2030 तक हासिल करना था।

यह 17 सतत लक्ष्य निम्न हैं- “गरीबी की पूर्णतः

समाप्ति, भुखमरी की समाप्ति, अच्छा स्वास्थ्य और जीवन स्तर, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, लैंगिक समानता, स्वच्छ जल और स्वच्छता, सस्ती और स्वच्छ ऊर्जा, सभ्य कार्य और आर्थिक विकास, उद्योग, नवाचार और बुनियादी ढांचे का विकास, असमानता में कमी, टिकाऊ शहरी और सामुदायिक विकास, जिम्मेदारी के साथ उपभोग और उत्पादन, जलवायु परिवर्तन, जल में जीवन, भूमि पर जीवन, शांति और न्याय के लिए संस्थान, लक्ष्य प्राप्ति में सामूहिक साझेदारी।”

महिलाएँ आबादी की दृष्टि से आधी जनसंख्या हैं और इसलिए बिना उनके उत्थान के इन सभी सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

गरीबी एवं भुखमरी की समाप्ति से ही महिलाओं की स्थिति में सुधार किया जा सकता है। इसके साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि महिलाओं को शिक्षित एवं आत्मनिर्भर बना कर दुनिया से गरीबी एवं भुखमरी का उन्मूलन किया जा सकता है।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, अच्छे स्वास्थ्य और जीवनस्तर के लिए आवश्यक है। महिला शिक्षा द्वारा न केवल महिलाओं बल्कि उनके संपूर्ण परिवार के स्वास्थ्य और जीवनस्तर में उन्नयन किया जा सकता है। लैंगिक समानता के माध्यम से समाज के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त असमानता को कम किया जा सकता है, जिससे धीरे-धीरे एक समावेशी, शांतिप्रिय और न्यायपूर्ण वैश्विक समुदाय (एवं उसकी विभिन्न संस्थाओं) की स्थापना को बढ़ावा मिलेगा और इस प्रकार भविष्य के प्रति सभी राष्ट्रों की सामूहिक जिम्मेदारी सुनिश्चित की जा सकेगी।

इसी प्रकार महिला जागरूकता एवं सशक्तिकरण के माध्यम से स्वच्छ जल, स्वच्छता, ऊर्जा संरक्षण एवं स्वच्छ ऊर्जा स्रोतों का उपयोग, सतत उपभोग एवं उत्पादन आदि लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि नारीवादियों के अनुसार इन सब मुद्दों पर महिलाएँ अधिक संवेदनशील होती हैं।

साथ ही में आर्थिक विकास, टिकाऊ शहरी और सामुदायिक विकास, जल एवं भूमि पर जीवन संरक्षण, जलवायु परिवर्तन जैसे महत्वपूर्ण लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भी यह आवश्यक है कि महिलाएँ, जिन्हें स्वभाव से संवेदनशील, दयालु एवं संतुलित माना गया है, इन मामलों से संबंधित निर्णय-निर्माण प्रक्रियाओं में सक्रिय भूमिका अदा करें, जिससे मानवीय विकास

तथा पर्यावरण में संतुलन स्थापित हो सकें।

इन आधारों पर यह कहा जा सकता है कि सतत विकास के लक्ष्य और महिला सशक्तिकरण एक दूसरे के पूरक हैं अर्थात् जब तक महिला सशक्तिकरण नहीं होगा, सतत लक्ष्यों की प्राप्ति सम्भव नहीं है। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि सतत विकास के माध्यम से महिला सशक्तिकरण के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है।

वसुधैव कुटुम्बकम् एवं महिला सशक्तिकरण- वसुधैव कुटुम्बकम् का अर्थ है “पृथ्वी/विश्व एक परिवार है।” यह भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र है, जो इस बात पर बल देता है कि पृथ्वी के सभी घटक तत्व महत्वपूर्ण हैं और सभी का विकास एक दूसरे पर निर्भर करता है। समस्त घटक/तत्वों, जिसमें मनुष्य तथा उसका पर्यावरण भी सम्मिलित है, के उत्थान के द्वारा ही संपूर्ण विश्व की उन्नति को सुनिश्चित किया जा सकता है। यह इस बात को अंकित करता है कि सभी के विकास में हमारी उन्नति सम्मिलित है और हमारी उन्नति सभी के विकास में सहायक है। साथ ही में, यह दर्शाता है कि जिस प्रकार परिवार के एक भी घटक सदस्य के कमजोर/अविकसित रहने से उसका असर दूसरे घटक सदस्यों पर होता है, उसी प्रकार पृथ्वी के अगर किसी भी घटक तत्व को हानि होगी तो उसका असर संपूर्ण घटकों की उन्नति पर होगा। इसके विपरीत यह भी कहा जा सकता है कि अगर सभी घटक तत्वों को मजबूत/संरक्षित किया जाए तो विश्व को एक आदर्श, न्यायपूर्ण एवं शांतिप्रिय व्यवस्था के रूप में स्थापित किया जा सकता है।

भारतीय संस्कृति ने हमेशा इस बात पर बल दिया है कि सामूहिक कल्याण के माध्यम से ही विश्व समुदाय आगे बढ़ सकता है। अब आवश्यकता यह है कि इस सामूहिक कल्याण की परिभाषा में महिलाओं के उत्थान को भी प्रमुखता से सम्मिलित किया जाए।

इससे यह भी निहितार्थ स्थापित किया जा सकता है कि जब तक महिलाओं की स्थिति में सुधार नहीं किया जाएगा, उन्हें उनका उचित प्रतिनिधित्व विभिन्न क्षेत्रों में नहीं दिया जाएगा, तब तक दुनिया में समावेशी-सर्वहिताय विकास सम्भव नहीं हो सकता।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वसुधैव कुटुम्बकम् धारणा के वास्तव क्रियान्वयन के लिए यह आवश्यक है कि महिला सशक्तिकरण तथा पर्यावरण

संरक्षण के सन्दर्भ में समुचित कदम उठाए जाने चाहिए, इसलिए महिला सशक्तिकरण के माध्यम से ही वसुधैव कुटुम्बकम् के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

महिला सशक्तिकरण के माध्यम से सतत विकास एवं वसुधैव कुटुम्बकम् के लक्ष्यों को प्राप्त करने में भारत की अग्रणी भूमिका- भारत का लोकतांत्रिक-समाजवादी राजनीतिक ढांचा, मिश्रित आर्थिक व्यवस्था एवं बहुलतावादी-सहिष्णु सामाजिक संरचना, अल्पविकसित एवं विकासशील देशों के लिए ही नहीं बल्कि विकसित देशों के लिए भी एक आदर्श है, कि किस प्रकार भौगोलिक, जनसांख्यिकीय, धार्मिक एवं संसाधन संबंधी विविधताओं के बावजूद लगातार राष्ट्र अपने उन्नयन के लिए कार्य कर सकता है।

सतत विकास के विभिन्न लक्ष्यों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है, जिससे इन क्षेत्रों में विधि निर्माण एवं अन्य आवश्यक कार्यवाही के माध्यम से महिला सशक्तिकरण सुनिश्चित कर, वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना के अनुरूप इन लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके तथा इसके परिणामस्वरूप, एक शांतिपूर्ण एवं उन्नत वैश्विक व्यवस्था की स्थापना की जा सके।

सामाजिक क्षेत्र में गरीबी- भुखमरी समाप्ति, स्वास्थ्य, जीवनस्तर, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, लैंगिक समानता, असमानता में कमी, स्वच्छ जल और स्वच्छता जैसे लक्ष्यों को सम्मिलित किया जा सकता है। वहीं आर्थिक क्षेत्र में स्वच्छ ऊर्जा, सभ्य कार्य एवं आर्थिक विकास, उद्योग, नवाचार एवं बुनियादी ढांचे, टिकाऊ शहरी विकास व सामुदायिक विकास एवं सही व जिम्मेदारीपूर्ण उत्पादन जैसे विषयों को सम्मिलित किया जा सकता है।

अंत में जलवायु परिवर्तन, जल एवं भूमि पर जीवन संरक्षण, शांति और न्याय पर आधारित संस्थाएँ तथा लक्ष्य प्राप्ति के लिए सामूहिक साझेदारी आदि मुद्दे राजनीतिक सक्रियता एवं सहभागिता की माँग करते हैं।

राजनीतिक क्षेत्र में न्याय पर आधारित संस्थाओं की स्थापना तभी सुनिश्चित की जा सकती है, जब जनसंख्या की आधी आबादी अर्थात् महिलाओं को उचित प्रतिनिधित्व मिले। इस सन्दर्भ में भारत नें संविधान में महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्रदत्त किए हैं तथा बाद में 93 वे संविधानिक संशोधन

के माध्यम से स्थानीय स्तर पर भी महिलाओं को प्रतिनिधित्व प्रदान किया है। हाल ही में भारत ने महिलाओं को राजनीतिक प्रतिनिधित्व प्रदान करने के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कदम उठाया, जब भारतीय संसद ने महिलाओं को केंद्रीय एवं राज्य विधान मंडलों में 33% आरक्षण का विधेयक पारित किया। महिलाओं का राजनीतिक क्षेत्र में आनुपातिक प्रतिनिधित्व, जलवायु परिवर्तन, जीवन संरक्षण तथा विकास के लिए सामूहिक साझेदारी जैसे महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील मुद्दों पर त्वरित एवं प्रभावपूर्ण निर्णयों में सहायक सिद्ध होगा।

लेकिन साथ में यह भी अवश्य है कि न केवल महिलाओं को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो बल्कि निर्णय-निर्माण में भी उनकी भूमिका अहम हो, तभी वे विकास के लिए किये गए निर्णयों में अपनी सहभागिता सुनिश्चित कर सकेंगी।

आर्थिक क्षेत्र में भी भारत लगातार लैंगिक समानता प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है। भारत सरकार महिलाओं के आर्थिक सुदृढ़ीकरण एवं उनकी सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न योजनाएं लागू कर रही है। प्रधानमंत्री मुद्रा योजना, महिला शक्ति केंद्र, कामकाजी महिला छात्रावास, प्रधानमंत्री आवास योजना, मातृत्व लाभ (संशोधन) अधिनियम 2017 आदि अनेक योजनाओं के माध्यम से आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के प्रयास लगातार मजबूती के साथ किए जा रहे हैं। ये प्रयास विकाशशील देशों के लिए भी मार्गदर्शक की तरह हैं, कि कैसे उन देशों में भी आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति को सुधारा जा सकता है। लेकिन इन प्रयासों के साथ-साथ भारत में बुनियादी ढांचे का विस्तार, निजी तथा गैर-लाभकारी क्षेत्र में महिला-सहायक कार्य संस्कृति, महिला कौशल प्रशिक्षण पर बल, सुरक्षित कार्य स्थल एवं बच्चों की देखभाल की उचित व्यवस्था, महिला स्व-सहायता समूह को प्रोत्साहन आदि मुद्दों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित कर, भारत को विकसित राष्ट्र बनाया जा सके।

उग्र-नारीवादियों के अनुसार महिला सशक्तिकरण के लिए सबसे महत्वपूर्ण पक्ष न्यायसंगत सामाजिक परिवेश एवं परिस्थिति होना है। भारत में भी लगातार सामाजिक परिवेश में सकारात्मक परिवर्तन हो रहा है,

जो महिलाओं को, सभी क्षेत्रों में, सक्रिय भूमिका निभाने में सहयोग कर रहा है। भारत सरकार भी विभिन्न योजनाओं के माध्यम से सकारात्मक सामाजिक परिस्थितियों की स्थापना में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ, प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना, सुकन्या समृद्धि योजना, मुफ्त सिलाई मशीन योजना, सुरक्षित मातृत्व योजना, सखी-वन स्टॉप सेंटर योजना, स्वाधार गृह योजना, महिला शक्ति केंद्र, स्वच्छ जल मिशन आदि योजनाओं के माध्यम से भारत सरकार महिलाओं को गरीबी के विरुद्ध सुरक्षा, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाएं, स्वच्छ जल एवं ऊर्जा जैसी मौलिक सुविधाएं उपलब्ध करा रही है। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीय समाज में लैंगिक समानता की स्थापना के लिए सरकार एक उत्प्रेरक के रूप में कार्यरत है। वह लगातार संचार के विभिन्न साधनों के माध्यम से महिला-पुरुष असमानता के मिथक को खत्म करने का कार्य कर रही है और इसमें उसे काफी सफलता भी प्राप्त हुई है। इस तरह की योजनाओं से एक सुरक्षित सामाजिक संरचना का निर्माण होगा, जो भविष्य में महिलाओं को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण साबित होगी।

इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि महिलाओं के उत्थान के लिए कई क्षेत्रों में स्थापित पितृसत्तात्मक संरचनाओं और संस्थाओं को लैंगिक समानता के अनुरूप पुनः स्थापित करने की आवश्यकता है। समाज में वैज्ञानिक एवं तर्कशील दृष्टीकोण विकसित करने से ही हम निकट भविष्य में विकसित भारत का लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं।

इस प्रकार यह प्रमाणित होता है कि सतत विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की धारणा को व्यावहारिक स्वरूप देने के लिए, महिला सशक्तिकरण के मार्ग पर निरंतर आगे बढ़ना आवश्यक है। महिला सशक्तिकरण के माध्यम से ही विश्व के विभिन्न देशों में, उनके समाजों में, लैंगिक समानता के ध्येय को प्राप्त किया जा सकता है, और इस संदर्भ में भारत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। भारत आज़ादी के बाद से ही सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में महिलाओं की भूमिका बढ़ाने के लगातार प्रयास कर रहा है। हाल ही के वर्षों में भारत ने, विविध क्षेत्रों में, विभिन्न योजनाओं के माध्यम से, यह सुनिश्चित करने की कोशिश की है कि उसके प्रेरक सामाजिक-आर्थिक

विकास व राजनैतिक बदलाव का स्वरूप समावेशी हो और उसमें महिलाओं की भागीदारी लगातार बढ़ती रहे। भारत के अल्प समय में किए गए ये प्रयास विश्व समुदाय के लिए प्रेरणादायक हैं और जी 20 जैसा महत्वपूर्ण सम्मेलन यह अवसर देता है कि इस दिशा में वैश्विक समुदाय, आपसी सहयोग के माध्यम से, निरंतर आगे बढ़ता रहे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अल्तेकर ए एस द पोजीशन ऑफ़ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइज़ेशन मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी 2016
2. बुआ सिमोन द द सेकंड सेक्स विंटेज 2011
3. देसाई नीरा वीमेन इन मॉडर्न इंडिया वोरा एंड कंपनी पब्लिशर्स बॉम्बे 1957
4. कौशिक आशा महिला सशक्तिकरण भूमण्डलीकरण के दौर में चुनौतियाँ एक और अंतरीप जयपुर 2002
5. आर्य राकेश कुमार महिला सशक्तिकरण और भारत डायमंड बुक्स नई दिल्ली 2020
6. फायरस्टोन शुलामिथ द डीअलेक्टिक ऑफ़ सेक्स बैटम न्यूयॉर्क 1971
7. कुमार राकेश नारीवादी विमर्श आधार प्रकाशन पंचकुला 2001
8. जौहरी जे सी इंडियन गवर्नमेंट एंड पॉलिटिक्स शोबन लाल एंड कंपनी 2012
9. शर्मा, आ. एवं गुप्ता, डी. कुमार - भारत में सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिवर्तन / जी 20, इंडियन बुक्स एन्ड पीरियोडिकल्स, नई दिल्ली, 2023
10. परमार शुभा नारीवादी सिद्धांत और व्यवहार ओरिएंट ब्लैकस्वान नई दिल्ली 2015
11. पाण्डे, जी.सी.- G20 और भारत, वालनट पब्लिकेशन, नॉएडा, 2023
12. मिलेट केट सेक्सुअल पॉलिटिक्स कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस कोलंबिया 2016
13. तिवारी, डी.-पर्यावरण: सतत विकास एवं जीवन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019
14. देसाई नीरा भारतीय समाज में नारी मैकमिलन इंडिया नई दिल्ली 1982
15. शर्मा, पी.डी. - महिला सशक्तिकरण और नारीवाद, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2017
16. <https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1874524>
- 17- <https://timesofindia.indiatimes.com/india/india-assumes-g20-presidency-what-it-means/articleshow/95553671.cms>
18. https://timesofindia.indiatimes.com/india/in-charts-the-india-that-leads-g20/amp_articleshow/97547349.cms
19. <https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1882356>

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में न्यायिक-सक्रियता के बदलते आयाम

चन्द्रभान सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, कालपी कॉलेज, कालपी, जालौन (उत्तर प्रदेश)



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

स्वतंत्र एवं सभ्य राज्य की प्रथम पहचान स्वतंत्र व निष्पक्ष न्यायपालिका है। राज्य के सम्यक विकास एवं शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए भारतीय संविधान में अंतर्निहित राज्य के तीन प्रमुख अंगों- व्यवस्थापिका (Legislature), कार्यपालिका (Executive) और न्यायपालिका (Judiciary) में सम्यक सहयोग एवं संतुलन आवश्यक है। लेकिन कार्यकारिणी की बढ़ती हुई उदासीनता, स्वेच्छाचारिता, अनुशासनहीनता तथा निष्क्रियता ने न्यायिक-सक्रियता को जन्म दिया है। वर्तमान में न्यायपालिका न्याय-संबंधी कार्यों के संपादन के अतिरिक्त ऐसे कार्य भी कर रही है जो कार्य मूल रूप से कार्यकारिणी और विधायिका द्वारा संपादित किए जाने चाहिए। न्यायपालिका की ऐसी कार्यवाही को ही 'न्यायिक-सक्रियता' (Judicial Activism) का नाम दिया जाता है। पिछले लगभग तीन दशकों में भारत की न्याय व्यवस्था के स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। इन दशकों में न्यायपालिका का आकार, प्रक्रिया, व्यवहार, क्षेत्राधिकार और विशेष रूप से उसका लक्ष्य ही बदल गया है। वर्तमान में न्यायपालिका का लक्ष्य व्यक्तिगत-न्याय के साथ 'सामाजिक-न्याय' की स्थापना करना है। आज न्यायपालिका केवल न्याय प्रदान करने का ही कार्य नहीं कर रही वरन् वह एक प्रशासक, सुधारक, अनुसंधानकर्ता और नीति-निर्धारक की भूमिका भी अदा कर रही है। इस प्रकार वर्तमान में न्यायिक-सक्रियता के आयाम में वृद्धि और विविधता का समावेश दृष्टिगोचर हो रहा है।

संकेताक्षर : कानून का शासन, राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्त, मौलिक अधिकार, जनहित याचिका, न्यायपालिका की क्रियाशीलता।

प्रो. गार्नर ने ठीक ही कहा है कि "कोई भी समाज बिना विधानमण्डल के तो रह सकता है, किन्तु ऐसे किसी सभ्य राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती जिसमें न्यायपालिका की कोई व्यवस्था न हो।" इसी अनिवार्यता की परिपूर्ति करते हुए भारतीय संविधान में राज्य के तीन प्रमुख अंगों में व्यवस्थापिका (Legislature) तथा कार्यपालिका (Executive) के साथ-साथ एक स्वतंत्र, निष्पक्ष व सक्षम न्यायपालिका (Judiciary) की भी व्यवस्था की गई है। व्यवस्थापिका का कार्य कानूनों का निर्माण करना तथा इन निर्मित कानूनों का क्रियान्वयन करना कार्यपालिका का कार्य है। जबकि न्यायपालिका संविधान के संरक्षक के रूप में तथा विवादों पर फैसला एवं विधियों की व्याख्या करने का काम करती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि न्यायपालिका द्वारा राज्य के दो अन्य अंगों पर नजर रखी जाती है। न्यायपालिका के द्वारा यह देखा जाता है कि विधायिका अपने क्षेत्रान्तर्गत नियम के अनुकूल विधि का निर्माण कर रही है या नहीं तथा कार्यकारिणी उन विधियों का सही रूप में पालन कर रही है या नहीं? इस प्रकार अंततः न्यायपालिका की शेष दोनों अंगों पर श्रेष्ठता स्थापित होने लगती है। यद्यपि भारतीय संविधान राज्य के उपर्युक्त तीनों अंगों में सम्यक सहयोग व संतुलन पर बल देता है।

भारत में ब्रिटिश कालीन न्याय-व्यवस्था को अपनाया गया है जो बहुत खर्चीली और बहुत लंबी प्रक्रिया है। लेकिन उल्लेखनीय है कि किसी भी लोकतंत्र या 'कानून के शासन' का मूल आधार स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं प्रभावी न्याय व्यवस्था होती है। ऐसी न्याय व्यवस्था अल्पव्ययी, सरल, बोधगम्य तथा शीघ्रगामी भी होनी चाहिए। सही कहा गया है- 'न्याय में देरी न्याय न मिलने के समान है' (Delay in justice is justice denied)। दुर्भाग्य से भारत को ऐसी ही

दोषपूर्ण न्याय प्रणाली विरासत में मिली है। बहुत चाहने पर भी स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माता इस व्यवस्था से छुटकारा नहीं पा सके। उन्होंने वर्तमान सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के रूप में स्वतन्त्र, निष्पक्ष और सक्षम न्याय व्यवस्था की स्थापना तो कर ली, किन्तु उसका औपनिवेशिक अथवा सामन्तशाही स्वरूप बना रहा। यह गरीब देश के अपढ़ निवासियों की आवश्यकतानुसार सुबोध, सस्ती तथा तत्काल न्यायप्रद न बन सकी। एक या दो क्षेत्रों को छोड़कर भारत के आजाद हो जाने के पश्चात भी उसी व्यवस्था को जारी रहने दिया गया तथा न्यायपालिका का स्वरूप पहले की तरह निषेधात्मक, अलगवावपूर्ण, गरीबों के लिए शोषणकारी तथा परदेशी ही बना रहा।

किंतु यह हर्ष की बात है कि पिछले लगभग ढाई-तीन दशकों में न्यायपालिका ने वक्त की नजाकत को पहचाना तथा भारतीय जनता की आवश्यकता को समझा है। न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती ने कहा था, कि “यदि भारतीय राजव्यवस्था को लोककल्याणकारी आधार प्रदान करना है तो ‘न्याय’ (Justice) के स्वरूप को केवल कानूनी न होकर सामाजिक और आर्थिक स्वरूप भी प्रदान करना होगा। न्यायालय ने यह स्वीकार कर लिया है कि न्याय व्यवस्था को आम जनता की जीवन दशा को सुधारने तथा उसे मूलभूत मानवीय अधिकार दिलाने के लिए ‘सक्रिय’ भागीदार बन जाना चाहिए।”² इसी ‘सक्रिय’ दृष्टिकोण अर्थात् ‘न्यायिक-सक्रियता’ को अपनाने के कारण भारतीय न्याय व्यवस्था का स्वरूप बदलता जा रहा है और वह निषेधात्मक के स्थान पर विधेयात्मक अथवा सकारात्मक बन गई है। अब उसकी यह मान्यता है कि कानून अतीत से चिपकी हुई रुढ़िवादी स्थाई व्यवस्था मात्र नहीं है, बल्कि गरीबों को इस न्याय व्यवस्था में भिखारी के बजाय सम्मानजनक भागीदार बनाया जाना चाहिए।

जब न्यायपालिका अपने न्यायिक-क्षेत्र से बाहर आकर कार्यपालिका अथवा विधायिका के क्षेत्र में हस्तक्षेप करती है तो न्यायपालिका की ऐसी कार्यवाही को ‘न्यायपालिका की क्रियाशीलता’ अथवा ‘न्यायिक-सक्रियता’ (Judicial Activism) का नाम दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि न्यायपालिका द्वारा कार्यपालिका एवं विधायिका के कार्यों को ग्रहण करना ही ‘न्यायिक-सक्रियता’ है। इसी को ‘न्यायपालिका द्वारा शासन’³ (Governing by

Judiciary) भी कहते हैं। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि माननीय उच्चतम न्यायालय की दो सदस्यीय खण्डपीठ (जस्टिस ए.के. माथुर और जस्टिस मार्कंडेय काठजू) ने स्वयं जनहित याचिकाओं की प्रासंगिकता पर सवाल उठाते हुए न्यायिक सक्रियता पर कठोर टिप्पणी की थी। लेकिन 2006 में नई दिल्ली में हुए न्यायिक सुधार पर उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों और मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन के दौरान भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश के.जी. बालाकृष्णन ने कहा था कि किसी भी कानून या सरकारी फैसलों की समीक्षा करना न्यायपालिका का मौलिक अधिकार है। उन्होंने न्यायिक-सक्रियता को लोकतंत्र के लिए स्वस्थ और वांछनीय ठहराया।

‘ज्यूडिशियल एक्टिविज्म’ शब्द का पहली बार प्रयोग आर्थर स्लेसिंगर जूनियर ने जनवरी, 1947 में फार्च्यून पत्रिका में प्रकाशित ‘द सुप्रीम कोर्ट : 1947’ शीर्षक लेख में किया था। न्यायिक-सक्रियता की प्रथा सबसे पहले संयुक्त राज्य अमेरिका में उत्पन्न और विकसित हुई। जबकि भारत में न्यायिक सक्रियता की नींव न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्णा अय्यर, न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती, न्यायमूर्ति ओ. चिन्नप्पा रेड्डी और न्यायमूर्ति डी.ए. देसाई ने रखी थी। ‘न्यायिक सक्रियता’ शब्द का प्रयोग प्रायः ‘न्यायिक संयम’ के विपरीत आशय में किया जाता है। न्यायिक सक्रियता एक बदलते समाज में न्यायिक दृष्टिकोण की एक गतिशील प्रक्रिया है। ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी के अनुसार, ‘न्यायिक सक्रियता एक न्यायिक दर्शन है जो न्यायाधीशों का पारंपरिक पूर्व-दृष्टांतों या निर्णयों से हटकर प्रगतिशील और नई सामाजिक नीतियों के पक्ष में आगे बढ़ने को प्रेरित करती है।’ हाल के वर्षों में न्यायालयों ने न्यायिक-सक्रियता के माध्यम से विधि निर्माण में नए आयाम ग्रहण किए हैं।

न्यायिक-सक्रियता कार्यकारिणी व विधायी निकायों की निष्क्रियता का स्वाभाविक परिणाम है। कार्यकारिणी की बढ़ती हुई उदासीनता, स्वेच्छाचारिता, अनुशासनहीनता तथा निष्क्रियता ने न्यायिक-सक्रियता को जन्म दिया है। जेलों में वर्षों से सुनवाई की प्रतीक्षा में बंद कैदी ; अवैध बंदीकरण ; स्त्रियों, बच्चों और श्रमिकों का शोषण; जेल और महिला व बाल संरक्षण-गृहों की अमानवीय दशा ; पुलिस अत्याचार ; बेगार ; न्याय मिलने में अत्यधिक विलंब आदि ऐसी असंख्य समस्याओं का निराकरण करने में कार्यकारिणी

अप्रभावी सिद्ध हुई है। इसके अलावा संसद का अपने विधायी कर्तव्यों से अनभिज्ञ होना, विधायी निकायों द्वारा आवश्यकतानुसार कानूनों का निर्माण न करना, समाज के बदलते मूल्य एवं मान्यताओं के अनुसार निर्मित कानूनों को प्रासंगिक व परिमार्जित न करना तथा लोकतंत्र के सिद्धांतों का लगातार पतन होना आदि भी न्यायिक-सक्रियता के विभिन्न प्रमुख कारण हैं। कार्यकारिणी व विधायी निकायों की इस निष्क्रियता का सीधा परिणाम न्यायिक-सक्रियता के रूप में सामने आया है। न्यायपालिका जो पारंपरिक मूल्यों और मानकों का अनुपालन करते हुए अभी तक मूक दर्शक थी, विधि के शासन को सुरक्षित रखने के लिए उठ खड़ी हुई है। न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती के अनुसार, “विधिक व्यवस्था को बनाए रखना न्यायपालिका का कर्तव्य है। विधि के शासन को सुरक्षित रखने के लिए सरकार के प्रत्येक अंग को अपनी शक्तियों की सीमाओं में रहकर कार्य करना चाहिए तथा कानून अथवा संविधान द्वारा उन पर आरोपित दायित्वों को पूरा करना चाहिए।”⁴

जैसा कि अक्सर यह माना जाता है कि न्यायपालिका द्वारा कार्यकारिणी और विधायी शक्तियों को मनमानापूर्वक अधिग्रहीत किया गया है। लेकिन यह उल्लेखनीय है कि न्यायपालिका द्वारा अन्य दो अंगों की शक्तियों का हस्तगन स्वेच्छाचारी ढंग से नहीं किया गया, बल्कि न्यायिक-सक्रियता का आधार संवैधानिक है। इसके आधार रूप में मुख्य रूप से पाँच अनुच्छेद हैं, जिन्हें “पवित्र पंचभुज”³ के नाम से जाना जाता है। ये अनुच्छेद हैं—14, 19, 21, 32 और 39A। न्यायपालिका ने इस दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया है कि यदि कार्यकारिणी उपर्युक्त अनुच्छेदों द्वारा निश्चित किए गए अधिकारों और सिद्धांतों को कार्यान्वित नहीं करेगी तो संविधान का संरक्षक होने के नाते यह न्यायपालिका का अधिकार और संवैधानिक दायित्व है कि वह कार्यकारिणी को आवश्यक आदेश और निर्देश दे। समय-समय पर न्यायपालिका ने संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के मध्य सह-सम्बंध³ (Co-relationship) स्थापित करके न्यायपालिका को कार्यकारिणी के क्षेत्राधिकार में प्रवेश देने का अवसर प्रदान किया है।

न्यायिक-सक्रियता उस संवैधानिक व्यवस्था को पुनर्जीवित करने का एक प्रयास है जिसे कार्यपालिका ने तोड़-मोड़ (eulitlate) दिया है। न्यायपालिका ने इन

शक्तियों का हस्तगन करने के लिए स्वरोपित पारंपरिक प्रतिबंधों को शिथिल कर दिया है, विशेषकर अधिकारिता³ (Standing) के नियम को। इस नियम को शिथिल करके यह सिद्धांत विकसित किया है कि किसी व्यक्ति या समूह के साथ हो रहे अन्याय की जानकारी कोई अन्य व्यक्ति, सामाजिक संगठन अथवा पत्र या समाचार के द्वारा भी न्यायालय को दी जा सकती है और इस प्रकार प्राप्त सूचना को न्यायालय एक याचिका की तरह स्वीकार करते हुए उस पर कार्यवाही करेगा। इस सक्रियवादिता के अपनाने के कारण भारतीय न्याय-व्यवस्था का स्वरूप परिवर्तित हो रहा है। सर्वोच्च न्यायालय ने इसके लिए अनेक क्षेत्रों में अभूतपूर्व कार्य किया है, जो निम्नवत हैं—

[1] उच्चतम न्यायालय ने ‘जनहितकारी याचिका’ (Public Interest Litigation) को मान्यता दी है। इसके अनुसार, कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे समूह या वर्ग की ओर से मुकदमा लड़ सकता है जिसको उसके कानूनी या संवैधानिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया हो। सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि गरीब, अपंग अथवा सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से दलित लोगों के मामले में आम जनता का कोई व्यक्ति न्यायालय के समक्ष ‘वाद’ ला सकता है। न्यायालय अपने सारे तकनीकी तथा कार्यविधि संबंधी नियमों की परवाह किए बिना उसे लिखित रूप में देने मात्र से ही कार्यवाही करेगा।

आज न्यायिक-सक्रियता की अभिव्यक्ति का प्रमुख उपकरण जनहित-वाद (PIL) को ही माना जाने लगा है। जनहित याचिका सामाजिक-न्याय को स्थापित करने और कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की अवधारणा को साकार रूप देने का एक प्रभावी उपकरण बनकर उभरा है। जनहित निर्णयों ने न्याय को आम जनता के दरवाजे तक पहुंचा दिया है, जिसका आह्वान हमारे संविधान के अनुच्छेद-‘39A’ में किया गया है। इस प्रकार जनहित याचिका (पीआईएल) के अंतर्गत परम्परागत न्याय में दो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं—

प्रथम, संवैधानिक या विधिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए रिट फाइल में अब प्रभावित पक्ष का होना जरूरी नहीं है, लेकिन पहले प्रभावित पक्ष का होना जरूरी था। अनुच्छेद-32 के अधीन न्याय पाने का हक उसी व्यक्ति को है जिसके मूल अधिकारों का अतिक्रमण होता है, किंतु अपने नवीनतम निर्णयों में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद-32 के क्षेत्र को बहुत विस्तृत

कर दिया है। न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि अनुच्छेद-32 के अधीन कोई संस्था या सार्वजनिक हित से उत्प्रेरित कोई नागरिक किसी ऐसे व्यक्ति के संवैधानिक या विधिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए रिट फाइल कर सकता है, जो निर्धनता अथवा अन्य किसी कारण से न्यायालय में रिट फाइल करने में सक्षम नहीं है। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि न्यायालय ने 'अधिकारिता' (standing) के नियम को शिथिल करके यह सिद्धांत विकसित किया है।

दूसरा, पीआईएल के अंतर्गत 'न्यायिक प्रक्रिया' (Judicial Procedure) को भी बहुत सरल या आसान कर दिया गया है। अब केवल एक पोस्टकार्ड को भी सीधे भेज कर किसी के अधिकारों को प्रवर्तन कराने के लिए उच्चतम न्यायालय से याचना की जा सकती है।

जनहित याचिकाओं का बढ़ता दायरा बनाम न्यायिक-सक्रियता के आयाम में वृद्धि-

भारत में जनहित याचिकाओं में आयी विविधता और इसके बढ़ते दायरे ने न्यायिक-सक्रियता के आयाम में विविधता और वृद्धि की है। भारत में पीआईएल मानवता से वंचित वर्गों को न्याय तक पहुँच प्रदान करने के लिए सर्वोच्च न्यायपालिका की ओर से निरंतर प्रयास का प्रतिनिधित्व करता है।

भारत में **पीआईएल का पहला चरण** उन स्थितियों से संबंधित था जिनमें पुरुषों, महिलाओं और बच्चों को जेलों और हिरासत के अन्य स्थानों में कैद किया गया था। पहली विशिष्ट जनहित याचिका एक सामाजिक कार्यकर्ता वकील श्रीमती हिंगोराणी⁵ द्वारा दायर की गई थी जिसका उद्देश्य बिहार के विचाराधीन कैदियों की दुर्दशा को उजागर करना था। इसी प्रकार पीआईएल के माध्यम से भागलपुर नेत्रहीनता का मामला⁶ भी प्रकाश में आया। शीला वर्से तथा अन्य बनाम भारत सरकार नामक याचिका⁷ 1986 में उन समस्त बच्चों की ओर से दायर की गई थी जो देश के विभिन्न जेलों में बंद थे। महिलाओं के हितों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए बहुत से महत्वपूर्ण जनहित-वाद सर्वोच्च न्यायालय के सामने लाए गए। उदाहरण के लिए, 1982 में श्रीमती चिन्नाम्मू शिवदास⁸ ने सर्वोच्च न्यायालय को एक पत्र लिखा जिसके द्वारा दिल्ली नारी निकेतन नामक एक महिला उद्धार गृह की अमानवीय दशा की ओर सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान आकृष्ट कराया गया था। इसी प्रकार एक अन्य मुकदमे उपेंद्र बख्शी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मामले⁹ में आगरा स्थित महिला प्रोटेक्टिव होम

में व्याप्त अमानवीय दशाओं के प्रति न्यायालय का ध्यान आकृष्ट कराया गया था।

पीआईएल का दूसरा चरण सामाजिक-न्याय और कल्याण के प्रश्नों से संबंधित था। बंधुआ मजदूरों, काम की स्थितियों और असंगठित मजदूरों का वेतन, गरीब किसानों की दुर्दशा, फुटपाथ पर रहने वालों, सड़क पर फेरीवालों और समाज के कमजोर वर्गों के हितों से संबंधित मामलों की एक श्रृंखला में, न्यायालय ने न्याय प्रदान करने के प्रयास किए। उदाहरण के लिए बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ मामले¹⁰ में, नीरजा चौधरी बनाम मध्य प्रदेश राज्य मामले¹¹ में एवं एक अन्य मुकदमा 'एशियाड' वर्कर्स के मामले¹² में सर्वोच्च न्यायालय ने जनहितवादों के संबंध में महत्वपूर्ण सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। समाज के कमजोर वर्गों से सम्बन्धित कुछ अन्य भी महत्वपूर्ण वाद हैं। जैसे, आजाद रिक्शा पुलर्स यूनियन, अमृतसर बनाम पंजाब राज्य मामले¹³ में ; ओल्गा तेलिस बनाम मुंबई नगर निगम केस¹⁴ जो कि मुंबई की सड़कों, फुटपाथ निवासियों और झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वालों को बेदखल करने से संबंधित था। इसी प्रकार बाबू बिगहा का मामला¹⁵ 1983, जिसमें हरिजनों के साथ हिंसात्मक व्यवहार किया गया था, आदि में सर्वोच्च न्यायालय ने आगे बढ़कर समाज के कमजोर वर्गों को न्याय दिलाने के लिए महत्वपूर्ण सकारात्मक कार्य किए।

जनहित-वादों का तीसरा चरण बहुत महत्वपूर्ण रहा जिसमें पर्यावरणीय मुद्दे, लैंगिक मुद्दे, समाज में महिलाओं की स्थिति से सम्बन्धित मामले, शिक्षा विशेषकर प्राथमिक शिक्षा से संबंधित मामले आदि जनहित-वाद के रूप में सर्वोच्च न्यायालय के सामने लाए गए। प्रदूषण से बचाव से सम्बन्धित अनेक मामले जिनमें वननाशन, नदियों में प्रदूषण, पर्यावरणीय संतुलन के विनाश से सम्बन्धित बहुत से महत्वपूर्ण मामले उठाए गए। न्यायपालिका ने पर्यावरण तक जनहित-वादों का क्षेत्राधिकार विस्तृत करने में मूल अधिकारों (अनु.-21, 22) तथा नीति-निदेशक सिद्धांतों को आधार बनाया। उदाहरण के लिए सुभाष कुमार बनाम बिहार राज्य मामले¹⁶ में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद-21 के अंतर्गत जीवन का अधिकार दिया गया है, जिसमें जीवन का पूरा सुख प्राप्त करने के लिए प्रदूषण-मुक्त पानी तथा प्रदूषण-मुक्त हवा पाने का अधिकार भी सम्मिलित है।

इसी प्रकार उन्नीकृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य मामले¹¹ में उच्चतम न्यायालय ने प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार घोषित करते हुए उच्च शिक्षा तक पहुँच में सुधार के लिए कई निर्देश दिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन व समाज के प्रत्येक क्षेत्र और समस्या से सम्बन्धित जनहित मामले उच्चतम न्यायालय के समक्ष उठाए गए और न्यायालय ने भी पर्याप्त सतर्कता के साथ आवश्यक राहत देने का प्रयास किया है।

[2] इसके अंतर्गत उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुच्छेद-21 की नवीन व्याख्या की गई है, आम आदमी के जीवन और सुरक्षा को वास्तविक बनाने का प्रयास किया गया है। इस अनुच्छेद में यह कहा गया है कि, “विधि द्वारा स्थापित कार्यविधि के अतिरिक्त किसी व्यक्ति को उसके जीवन तथा निजी स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।”¹² पहले यह माना जाता रहा है कि कार्यपालिका या सरकार कोई न कोई कार्यविधि अपनाकर व्यक्ति की स्वतन्त्रता या जीवन को छीन सकती है, किन्तु मेनका गांधी बनाम भारत संघ मामले¹³ में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि कार्यविधि भी विवेकसम्मत, उत्तम तथा न्यायपूर्ण होनी चाहिए। सरकार की प्रत्येक कार्यवाही विवेकपूर्ण तरीके से संपन्न होनी चाहिए। इस प्रकार अब ऐसे मामलों में उपर्युक्त आधार पर उच्चतम न्यायालय कार्यकारिणी द्वारा अपनायी गयी कार्यविधि में हस्तक्षेप कर सकता है।

[3] इसके अंतर्गत उच्चतम न्यायालय ने नागरिकों की प्रतिष्ठा की सुरक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया है। मुंबई के पटरीवासियों के केस¹⁴ एवं सुनील बत्रा के मामले¹⁵ में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि अनुच्छेद-21 में जीवन का अर्थ केवल भौतिक अस्तित्व की सुरक्षा मात्र न होकर उन सभी नैसर्गिक शक्तियों से है जिनके द्वारा जीवन का उपभोग किया जाता है तथा मनुष्य की आत्मा बाह्य जगत में संचरण करती है। इसमें मानव प्रतिष्ठा के साथ ‘जीवन-यापन के अधिकार’ को उक्त मौलिक अधिकार (अनु.-21) के अंतर्गत शामिल कर लिया गया। इसका अर्थ यह हुआ कि निर्दयता, क्रूरता, मनुष्य को अमानवीय या पाशविक यातना या सजा देना आदि अब संभव नहीं होगा।

[4] सर्वोच्च न्यायालय ने पूर्णतः स्पष्ट कर दिया है कि कार्यपालिका के ‘स्वविवेक’ पर नियंत्रण किया जाना

चाहिए। उसके लिए विवेक तथा ‘अ-स्वेच्छाचारिता’ को आधार समझना चाहिए। कस्टूरीमल रेड्डी विवाद¹⁶ में सर्वोच्च न्यायालय का यह दृष्टिकोण रहा है कि राज्य के स्वविवेक का आधार संविधान के चतुर्थ अध्याय में वर्णित ‘राज्य नीति के निदेशक सिद्धांत’ होना चाहिए जिसमें सार्वजनिक मानदंड को प्रस्तुत कर दिया गया है।

[5] सर्वोच्च न्यायालय की यह मान्यता बन गई है कि यद्यपि न्यायाधीश या न्यायालय का काम कानून बनाना या निर्माण करना नहीं है, लेकिन वह कानून की रूपरेखाओं में रंग अवश्य भरता है अर्थात् विधि की सूखी हड्डियों पर रक्त-मांस अवश्यमेव चढ़ाता है। इस तरह वह कानून के निर्माण में भी भाग ले रहा है। न्यायाधीश एक ऐसा सृजनात्मक कलाकार है जिसमें न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती के अनुसार अरस्तू और प्लेटो दोनों के गुण पाए जाते हैं।¹⁷ अर्थात् एक ओर वह ‘विधि के शासन’ का संस्थापक है तो दूसरी ओर प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यकतानुसार न्याय प्रदान करने वाला ‘दार्शनिक राजा’ (Philosopher King) भी है।

इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न मामलों, वादों एवं विशेष रूप से जनहित याचिकाओं पर दिए गए निर्णयों और इन निर्णयों पर उसके द्वारा अपनाए गए नवीन रुख से यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि इन सबसे न्यायिक-सक्रियता अवश्य बढ़ी है। न्यायालय के समक्ष उठाए गए विभिन्न मामलों, विशेषकर जनहित-वादों में आयी विविधता और इसके बढ़ते दायरे ने अनिवार्य रूप से न्यायिक-सक्रियता के आयाम में वृद्धि की है। पिछले लगभग ढाई-तीन दशकों से भारत की न्याय-व्यवस्था के स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन आ रहा है और वह एक अनुदारवादी न्यायालय के स्थान पर ‘प्रगतिशील दृष्टिकोण वाले न्यायालय’ का रूप ग्रहण करता जा रहा है। इन दशकों में न्यायपालिका का आकार, प्रक्रिया, व्यवहार, क्षेत्राधिकार और विशेष रूप से उसका लक्ष्य ही बदल गया है। वर्तमान में न्यायपालिका का लक्ष्य व्यक्तिगत-न्याय के साथ ही एक मानवीय दृष्टिकोण अपनाते हुए ‘सामाजिक-न्याय’ की स्थापना करना है।

निष्कर्ष

इसमें कोई संदेह नहीं कि न्यायपालिका की सक्रियता ने सामाजिक-न्याय को स्थापित करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है और इस दृष्टि से हमें

न्यायिक सक्रियता का स्वागत करना चाहिए। किंतु साथ ही “न्यायिक अति-सक्रियता”¹⁸ (Judicial over-Activism) के भी खतरनाक परिणाम हो सकते हैं। इससे शासन के तीनों अंगों में टकराव व विरोध की स्थिति पैदा हो सकती है और यह स्थिति शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए कतई उचित नहीं है। राज्य के सम्यक विकास एवं शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए शासन के तीनों अंगों में सहयोग व संतुलन आवश्यक है। न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर के शब्दों में “न्यायपालिका को एक ‘संतुलित दृष्टिकोण’ (Balanced approach) अपनाना चाहिए।”¹⁹ निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि इसमें कोई संदेह नहीं कि पिछले ढाई-तीन दशकों में जिस प्रकार न्यायपालिका की प्रक्रिया, व्यवहार, क्षेत्राधिकार और विशेष रूप से उसका लक्ष्य ही बदल गया है। उससे न्यायिक-सक्रियता के आयाम में वृद्धि और विविधता का आना अवश्यंभावी था। न्यायिक-सक्रियता का विकास, जो समाज के कमजोर वर्गों के मानवाधिकारों को लागू करने के साथ शुरू हुआ था, गरीबों को उनके दुखों से बाहर आने में मदद करने के लिए बढ़ाया गया और अब इसे शासन के हर क्षेत्र तक विस्तारित किया गया। सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करने में न्यायाधीशों की चाहे जो भी सीमाएं रही हों, वे न्यायिक-शक्ति का रचनात्मक उपयोग करके बड़े पैमाने पर सफल रहे हैं। सामाजिक हितों के रक्षक की भूमिका निभाते हुए न्यायपालिका ने हर उस क्षेत्र और समूह तक पहुँचने का प्रयास किया है जहाँ शोषण, अधिकारों का अतिक्रमण और अन्याय की जानकारी न्यायालय के संज्ञान में आयी है। वास्तविकता यह है कि वर्तमान में न्यायपालिका की गतिविधि का केंद्र पूरा समाज बन गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंघल, डॉ. एस.सी. (2020); भारतीय शासन एवं राजनीति, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, पृष्ठ 125
2. जैन, डॉ. पुखराज एवं फड़िया, डॉ. बी.एल. (2002); भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृष्ठ 372
3. सईद, एस.एम. (2003); भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ 429
4. वही, पृष्ठ 428
5. सईद, एस.एम. (2003); भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ 436
6. वही, पृष्ठ 437
7. जैन, डॉ. पुखराज एवं फड़िया, डॉ. बी.एल. (2002); भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृष्ठ 370
8. Aithal, Dr. K.R. (2015) (Judicial Activism and The Enforcement of Human Rights in India, International Journal of Law and Social Sciences (IJLS), Volume 1, Issue 1, (ISSN No.: 2454-8553), p. 65
9. सईद, एस.एम. (2003); भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ 438
10. वही, पृष्ठ 439
11. Aithal, Dr. K.R. (2015) (Judicial Activism and The Enforcement of Human Rights in India, International Journal of Law and Social Sciences (IJLS), Volume 1, Issue 1, (ISSN No.: 2454-8553), p. 66
12. बसु, डी.डी. (1997); भारत का संविधान : एक परिचय, प्रेंटिस-हॉल आफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, पृष्ठ 106
13. वही, पृष्ठ 107
14. बेयर एक्ट (2007); भारत का संविधान, प्रयाग पुस्तक सदन पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, पृष्ठ 12
15. जैन, डॉ. पुखराज एवं फड़िया, डॉ. बी.एल. (2002); भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृष्ठ 369
16. सिंघल, डॉ. एस.सी. (2020); भारतीय शासन एवं राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, पृष्ठ 138
17. जैन, डॉ. पुखराज एवं फड़िया, डॉ. बी.एल. (2002); भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृष्ठ 373
18. सईद, एस.एम. (2003); भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ 442
19. सिंघल, डॉ. एस.सी. (2020); भारतीय शासन एवं राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, पृष्ठ 139

महाराणा फतहसिंह: 1903 ई. का दिल्ली-दरबार

मोहन लाल कलबी

शोधार्थी, मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

ब्रिटिश सम्राट एडवर्ड सप्तम् की गद्दीनशीनी के उपलक्ष में तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन ने दिल्ली में एक दरबार का आयोजन किया, जिसमें भारत की सभी देशी रियासतों के शासकों एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों को इसमें हिस्सा लेने के लिए निमंत्रण भेजा गया था। उसके इस मंतव्य के पीछे दौहरी चाल थी। उन्हें बुलाकर वह देखना चाहता था कि वे ब्रिटिश सम्राट के प्रति कितने स्वामीभक्त एवं वफादार हैं। साथ ही वह उन्हें अधीनस्थ शासक की स्थिति में भी लाना चाहता था। मेवाड़ महाराणा फतहसिंह को भी निमंत्रित किया गया था। निःसंदेह मेवाड़ – महाराणा के लिये यह एक घोर परीक्षा की घड़ी थी। उनके पास लार्ड कर्जन का निमंत्रण पत्र आया, उसी दिन से महाराणा ने दरबार में न जाने की युक्ति पर विचार करना शुरू कर दिया। समकालीन ऐतिहासिक स्त्रोत सूचित करते हैं कि महाराणा पूर्व से ही उक्त दरबार में उपस्थित न होने का मानस बना चुके थे तथा इससे बचने की युक्ति स्वरूप उनके पास पर्याप्त कारण थे, जो उनकी दूरदर्शिता का परिचायक है।

संकेताक्षर : निमंत्रण पत्र, महाराणा फतहसिंह, दरबार, चिकित्सा-परीक्षण, उपस्थित, ब्रिटिश सरकार।

ब्रिटिश सम्राट एडवर्ड सप्तम् की गद्दीनशीनी के उपलक्ष में तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन ने दिल्ली में जनवरी 1903 ई. में एक दरबार का आयोजन किया, जिसमें सम्राट के छोटे भाई इयूक ऑफ केनॉट अतिथि के रूप में आये थे। तब ब्रिटिश सरकार ने भारत की सभी देशी रियासतों के शासकों एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों को इसमें भाग लेने के लिए निमंत्रण दिया। इतना ही नहीं उन पर इसमें (दिल्ली-दरबार में) भाग लेने के लिए दबाव भी डाला गया कि वे हर संभव प्रयासानुसार इसमें आवश्यक रूप से सम्मिलित होंगे। यदि देखा जाये तो यह लार्ड कर्जन की कूटनीतिज्ञता से परिपूर्ण सोची-समझी साजिश थी। वह इन सभी को बुलाकर यह भी देखना चाहता था कि वे ब्रिटिश सम्राट के प्रति कितने स्वामीभक्त एवं वफादार रहें हैं। साथ ही वह उन्हें अधीनस्थ शासक की स्थिति में भी लाना चाहता था।

इसी कड़ी में मेवाड़ के महाराणा फतहसिंह को भी निमंत्रित किया गया था। निःसंदेह मेवाड़ – महाराणा के लिये यह एक घोर परीक्षा की घड़ी थी, जिसमें वंश गौरव, आत्मस्वाभिमान एवं राज्य की प्रतिष्ठा की रक्षा करनी थी। मेवाड़ के शासकों ने इससे पहले भी कभी दिल्ली पर आसीन किसी विदेशी सम्राट के सामने दरबार में एक अधीनस्थ शासक के रूप में उपस्थित होकर अभिवादन नहीं किया था। महाराणा इस 1903 ई. के दिल्ली-दरबार में जाकर अपने पूर्वजों की चली आ रही प्रतिष्ठित परम्परा पर धब्बा नहीं लगाना चाहता था। अतः महाराणा शुरू से ही दबार में अपनी बैठक की श्रेणी पुत्र (महाराज कुमार भूपाल सिंह) की बीमारी का कारण बताते हुए दरबार में जाने से निरंतर मना करते रहे। वैसे भी महाराणा फतहसिंह ने मेवाड़-राजवंश के प्राचीन गौरव परम्परा और प्रतिष्ठा की सुरक्षा के लिए प्रारंभ से ही ब्रिटिश विरोधी रुख अख्तियार कर रखा था। इस संदर्भ में ब्रिटिश प्रतिनिधि कर्नल माईल्स ने 1894 ई. में ब्रिटिश सरकार को जो पत्र लिखा, उसका आशय यह था कि यदि आगे कोई ब्रिटिश विरोधी विद्रोह भारत में हुआ तो वह दिल्ली से शुरू न होकर उदयपुर से होगा और उसका नेता एक मुसलमान न होकर हिन्दू (महाराणा फतहसिंह) होगा¹ इसके अतिरिक्त अनेक उदाहरण ऐसे भी हैं कि जिनमें महाराणा ने ब्रिटिश अधिकारियों की खुले आम अवहेलना

और ब्रिटिश सरकार द्वारा दिये गये निर्देशों को मानने से स्पष्टतः इन्कार कर दिया था।¹ महाराणा फतहसिंह ने मेवाड़ स्थित ब्रिटिश राजनीतिक प्रतिनिधि रेजिडेंट की स्थिति एक राजदूत सी बना दी, जिसका प्रतिदिन के मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं रह गया था। महाराणा फतहसिंह यद्यपि बहुत ज्यादा पढ़े लिखे नहीं थे किन्तु उनकी बुद्धि बहुत ही तेज थी और व्यक्तित्व बहुत ही ज्यादा प्रभावशाली था। इसके साथ ही उनकी मेवाड़ के प्राचीन गौरव और उच्च परम्पराओं के प्रति अटूट विश्वास एवं निष्ठा थी। उनकी इन बातों ने ब्रिटिश अधिकारियों के एक बहुत बड़े वर्ग को जो उस दौरान उदयपुर में किसी न किसी पद पर आसीन रहे थे। वे जब उनके सम्पर्क में आये तो बिना प्रभावित हुए ना रह सके। फलतः महाराणा के साथ वे घनिष्ठ मित्रता के आवरण में बंध गये।⁴

मार्च 19, 1901 ई. को महाराणा फतहसिंह के पास लार्ड कर्जन का निमंत्रण पत्र आया, उसी दिन से महाराणा ने दरबार में न जाने की युक्ति पर विचार करना शुरू कर दिया। इस कार्य में महाराणा ने अगस्त 21, 1902 ई. को 1903 ई. में होने वाले दिल्ली दरबार में सम्मिलित न होने संबंधी पत्र लिख दिया था।⁵ इस कार्य में महाराणा के घनिष्ठ मित्र तत्कालीन रेजिडेन्ट मेजर ए. एफ. पिन्हे⁶ (मेवाड़ में 1900 से 1906 ई. तक रेजिडेन्ट रहा है) ने काफी सहयोग किया जिसकी पुष्टि जून 10, 1902 ई. को महाराणा फतहसिंह द्वारा मेजर पिन्हे को लिखे एक पत्र से होती है जिसमें महाराणा ने ब्रिटिश - सरकार के बढ़ते दबाव का जिक्र करते हुए अपनी वंश परम्परा का परिचय देते हुए लिखा कि "मेरे खानदान में किसी भी महाराणा का दिल्ली में जाना अच्छा नहीं समझा जाता। मेवाड़ के महाराणा मुगल दरबार में भी कभी नहीं गये। हमारे पुरखों ने दिल्ली न जाने की प्रतिज्ञा भी कर रखी थी। मेरे दिल्ली जाकर दरबार में शामिल होने से मेरे खानदान की तथा मेवाड़ के महाराणाओं की मान-मर्यादा पर बड़ी ठेस पहुंचेगी। अब मैं क्या बहाना बनाऊँ? यदि मैं साफ-साफ सच्ची बात लिख कर इन्कार करता हूँ तो सरकार को नागवार गुजरेगा और शायद ठीक भी नहीं रहेगा। इसलिये आप मुझे कोई ऐसी माकूल तरकीब बताने की मेहरबानी करें जिससे साँप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। मेरा यह खत आप पढ़कर लौटा दें तथा जो तरकीब आप ठीक समझें मेरे आदमी को भली भाँति जबानी समझा दें। मैं फिर

वैसा ही करूंगा।" ऐसा प्रतीत होता है कि दिल्ली जाकर बीमार पड़ जाने की युक्ति मेजर पिन्हे ने ही महाराणा को सुझाई हो तो कोई आश्चर्य नहीं कारण कि आगे की व्यवस्था का जिम्मा भी उसी ने लिया था।⁷

हमें हकीकत बहीड़ों के अध्ययन करने पर पिन्हे के द्वारा किये गये सहयोग की सुस्पष्ट पुष्टि हो जाती है। साथ ही मास्टर आफ सेरेमनी शंभूनाथ पुरोहित की डायरी से भी जानकारी प्राप्त होती है।⁸ मेजर पिन्हे ने अपने मित्र डॉक्टर पैक को जयपुर से दिल्ली बुलाया और उसे महाराणा का चिकित्सक नियुक्त कराया। दोनों ही अधिकारियों ने महाराणा के साथ गुप्त मंत्रणा कर के ब्रिटिश सरकार को महाराणा के पक्ष में डॉक्टर की रिपोर्ट प्रस्तुत करवायी गई। ऐसा प्रतीत होता है कि यह सारा हो जाने के पश्चात् अगस्त 21, 1902 ई. को वायसराय लार्ड कर्जन को अपने कुँवर की गंभीर अवस्था एवं अस्वस्थता का कारण बताते हुए दिल्ली-दरबार में उपस्थित होने में अपनी असमर्थता प्रकट की। परन्तु महाराणा पर निरन्तर राजनैतिक दबाव पड़ने के कारण दिल्ली-यात्रा की योजना को अमलीजामा पहनाया गया। इस संदर्भ में हकीकत बहीड़ा जिल्द 4 तथा शंभूनाथ जी पुरोहित की डायरी के पन्नों से बहुत सुन्दर, वास्तविक एवं आखों देखी जानकारी उपलब्ध होती है- "दिसम्बर 25, 1902 को व्यवस्था के लिये महाराणा ने सरदारों तथा कर्मचारियों का एक अग्रिम-दल स्पेशल रेल द्वारा दिल्ली भेजा। महाराणा इन दिनों शिकार अभियान पर नाहर मगरा नामक स्थल पर थे, जहां उन्हें अपने बड़े भ्राता शिवरती महाराज गजसिंह के स्वर्गवास की सूचना प्राप्त हुई, तद्नुसार महाराणा ने उदयपुर आकर शोक-परम्पराओं का निर्वाहन किया। तत्पश्चात् महाराणा तथा रेजिडेन्ट पिन्हे ने दिसम्बर 30, 1902 ई. को अपने सरदारों तथा कर्मचारियों के साथ स्पेशल रेल द्वारा दिल्ली के लिये प्रस्थान किया। उदयपुर स्टेशन से दोपहर 2.35 पर रेल चली एवं सांयकाल 5.20 पर चित्तौड़ पहुंची, मार्ग में सनवाड़ के सरदार के प्रतिनिधि ने महाराणा का स्वागत कर घोड़ा भेंट किया। इसके बाद स्पेशल रेल ने चित्तौड़ से प्रस्थान किया और रात्री 9.45 पर रूपाहेली पहुंची, जहां रात्री भोज की व्यवस्था थी। भोजन पश्चात् महाराणा ने रात्री 11 बजे अगले मुकाम के लिये प्रस्थान किया। इससे पूर्व हमीरगढ़ भीलवाड़ा के पंच तथा माण्डल स्टेशन पर क्रमशः राणा के हमीरगढ़ के

प्रतिनिधि, भीलवाड़ा के पंच तथा माण्डल में मेजा रावत ने उपस्थित होकर महाराणा का स्वागत किया।⁹

रुपाहेली से प्रस्थान कर रेल दूसरे दिन दिसम्बर 31 प्रातः 9.45 पर बांदीकुई पहुंची, जहां दोपहर का भोजन किया, तत्पश्चात् मध्याह्न 3 बजे बांदीकुई से शाही अमले ने प्रस्थान किया तथा सांयकाल 7.45 पर महाराणा की स्पेशल रेल दिल्ली सराय रोहिल्ला स्टेशन पर पहुंची। जहां महाराणा के स्वागत सत्कार में कई नरेश, गणमान्य व्यक्ति तथा सिरदार उपस्थित हुए, तत्पश्चात् बग्गी सवार होकर महाराणा, नगर मेवाड़-कैम्प स्थित डेरे में पहुंचे। औपचारिक मुलाकात हेतु कई नरेश व सरदार महाराणा के समक्ष उपस्थित होते रहे, महाराणा की तबियत ठीक नहीं होने से जयपुर के डॉ. पेंक को बुलवाया गया, जो रेजिडेंट पिन्हे के साथ उपस्थित हुआ और महाराणा का चिकित्सा-परीक्षण कर आवश्यक दवाइयां देकर विदा हुआ। दूसरे दिन जनवरी 1, 1903 ई. को प्रातः 9.30 पर आम-दरबार-दिवस था, महाराणा का स्वास्थ्य ठीक नहीं होने से वे पलंग पर लेटे रहे, मेवाड़ के सरदार, रेजिडेंट पिन्हे के साथ दरबार में गये, दोपहर में चांपावत नारायण दास आये जिनसे महाराणा ने एकांत में बातचीत की, इसके बाद सांयकाल तक महाराणा की तबियत पूछने वालों का सिलसिला जारी रहा। तीसरे दिन जनवरी 2, 1903 ई. को महाराणा से एकांत में मुलाकात करने वाले आगन्तुकों में ईडर नरेश सर प्रताप, जयपुर के बालाबक्ष तथा किशनगढ़ के दीवान श्यामसुन्दर लाल, के नाम उल्लेखनीय हैं।¹⁰

चौथे दिवस जनवरी 3, 1903 को रेजिडेंट पिन्हे तथा डॉ. पेंक एकांत में विचार-विमर्श करने के बाद महाराणा का स्वास्थ्य परीक्षण कर उनसे बातचीत की। इस दिन महाराणा से एकांत में वार्ता करने वाले प्रमुख आगन्तुकों में अलवर के चांपावत नारायणदास, खरवा ठाकुर गोपालसिंह तथा किशनगढ़ महाराजा मदनसिंह थे।¹¹ इसके अतिरिक्त कई नरेशों ने अपने प्रतिनिधि भेज महाराणा के स्वास्थ्य समाचार ज्ञात किये। सांयकाल के समय महाराणा उदयपुर- प्रस्थान हेतु अपने डेरे से विदा हुए, दिल्ली सराय रोहिल्ला से सांयकाल 6.15 महाराणा की स्पेशल रेल ने प्रस्थान किया, खैरथल, बांदीकुई, रुपाहेली तथा चित्तौड़गढ़ विश्राम के बाद जनवरी 7, 1903 ई. को सांयकाल 6 बजे महाराणा उदयपुर लौट आये। कानोता के सामंत नारायण दास चांपावत के पुत्र अमरसिंह जो स्वयं उक्त

दरबार में अपने पिता के साथ गये थे, वे अपनी डायरी में लिखते हैं कि "वर्तमान महाराणा फतहसिंह जी की यही ईच्छा थी कि वे दरबार में न आयें, लेकिन उन्हें आने के लिये विवश किया गया, वे कोई दो दिन पहले आये लेकिन राजकीय समारोह में शामिल न हुए।"¹² एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं कि¹³ "महाराणा साहब को किसी भी अन्य महाराजा के नीचे बैठने पर आपत्ति है और यही कारण है कि वे दरबार में उपस्थित नहीं हुए। लेकिन उन्होंने (महाराणा) मेरे पिता को अपने इरादे से सूचित करने के लिये फतहकरण जी को भेजा है। अपने इरादे के पक्ष में महाराणा की दो दलीलें हैं, पहली वो यह कि उनके बड़े भाई की मृत्यु हो गई है और इस शोक के कारण वे राजपूतों के रिवाज के अनुसार दरबार में नहीं आ सकते, यह शोक कम से कम बारह दिनों तक रखा जाता है, दूसरी दलील यह है कि वे बीमार हैं, इसलिये कैसे आ सकते हैं।"

अतः उक्त डायरी जो एक समकालीन ऐतिहासिक स्रोत है सूचित करती है कि महाराणा पूर्व से ही उक्त दरबार में उपस्थित न होने का मानस बना चुके थे तथा इससे बचने की युक्ति स्वरूप उनके पास पर्याप्त कारण थे, जो उनकी दूरदर्शिता का परिचायक है।

इस प्रकार महाराणा ने दिल्ली दरबार में उपस्थित न होकर मेवाड़ की स्वातंत्र्य परम्परा एवं गौरव की युक्तिपूर्वक रक्षा कर तत्कालीन ब्रिटिश-विरोधी जनभावना का पोषण किया। महाराणा के इस ब्रिटिश विरोधी कृत्य से मेवाड़ के क्रान्तिकारियों को सम्बल मिला तथा वे गुप्त रूप से महाराणा के साथ भेंट करने लगे, तदनुसार उन्हें महाराणा से अप्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त होने लगा। इस अप्रत्यक्ष सहयोग का संकेत बिजोलिया-आन्दोलन के सैनानी विजयसिंह पथिक के विषय में महाराणा द्वारा तत्कालीन पुलिस प्रमुख को प्रदत्त गुप्त आदेश, जिसमें विजय सिंह पथिक को गिरफ्तार न करने का निर्देश था। महाराणा की गतिविधि को देखते हुए 1907 ई. में ब्रिटिश रेजिडेंट ने ए.जी. जी. को लिखा कि यदि महाराणा पर अधिक दबाव डाला गया तो वे कांग्रेस में मिल सकते हैं, क्योंकि क्रान्तिकारी इनसे मिलते रहते हैं। वास्तव में महाराणा की उक्त गतिविधियों से ब्रिटिश शासन को उनकी स्वामीभक्ति पर संदेह होने लगा, जिसकी परिणति 1921 में हुई, जिसके अनुसार ब्रिटिश शासन ने महाराणा से अधिकार छीन कर युवराज भूपालसिंह

को दिला दिया।

इस प्रकार इन दोनों ही प्रामाणिक ऐतिहासिक स्रोतों से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाराणा ने प्रारम्भ से ही दिल्ली- दरबार में न जाने का अपना मानस बना लिया था।

इस संदर्भ में विभिन्न विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न तथा परस्पर विरोधी राय प्रकट की गई है। कतिपय इतिहासकार कहते हैं कि महाराणा राजस्थान में उठ रही ब्रिटिश विरोधी भावना का प्रतिनिधि था, इसीलिये उसने दिल्ली- दरबार में न जाने का दृढ़ संकल्प किया था परंतु ब्रिटिश दबाव के कारण अंततः महाराणा दिल्ली दरबार में भाग लेने के लिए दिसम्बर 30, 1902ई. को उदयपुर से रवाना हुए। तब बारहठ केसरीसिंह (चारण कवि) ने 'चेतावणी रा चूंगट्या' शीर्षक से 13 दोहे लिख भेजे जो महाराणा को दिल्ली - मार्ग पर स्थित सरेड़ी रेल्वे स्टेशन पर मिले जिसके फलस्वरूप महाराणा दिल्ली जाकर भी दरबार में सम्मिलित नहीं हुए।¹⁴

परंतु हकीकत बहीड़ा, जिल्द 4, राजस्थान राज्य पुरा अभिलेखागार बीकानेर में सुरक्षित फाईल, शंभूनाथजी पुरोहित जी की डायरी, शोध पत्रिका, भाग 3, अंक 4, वहीं भाग 4, अंक 1 आदि से सुस्पष्ट हो जाता है कि यह कवि की अपनी रचना थी जो महाराणा फतहसिंह तक पहुंची भी नहीं थी। सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि तब रेल गाड़ी सरेरी स्टेशन पर थी तब महाराणा फतहसिंह वाशरूम गये हुए थे। अतः साथ ही व डेली डायरी नोट कर रहे व्यक्ति में पुरोहित जी द्वारा लिखी जा रही डायरी को प्रामाणिक स्रोत मानते हुए स्पष्टतया कहा जा सकता है कि महाराणा फतहसिंह का स्वाभिमान से युक्त निजी निर्णय यही था कि वे दिल्ली - दरबार में हिस्सा नहीं लेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मज्झिमिका (सं. डॉ. मनोहर सिंह राणावत) भाग 39, पृ.21, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर द्रष्टव्य- डॉ. राजेन्द्र नाथ पुरोहित का शोध पत्र - जन आन्दोलन के संदर्भ में महाराणा फतहसिंह एवं दिल्ली दरबार (1903ई) नवीन ज्ञातव्य) वर्ष 2003
2. डॉ. डी.एल. पालीवाल, मेवाड़ एण्ड दी ब्रिटिश, पृ. 196-197, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर
3. शोध पत्रिका, द्रष्टव्य आलेख-भगवती लाल जैन, अंक 3, वर्ष 23, पृ. 47, साहित्य संस्थान, उदयपुर
4. वही, पृ.47
5. हकीकत बहीड़ा (सं.गोपीनाथ शर्मा) जि.4 ,पृ. 64 के सामने मूल पत्र का चित्र देखे, महाराणा मेवाड़ रिसर्च इन्स्टिट्यूट पेलेस, उदयपुर वर्ष 1992
6. के.डी. एसकीन, राजपूताना गजेटियर पृ.3
7. मज्झिमिका (सं. डॉ. मनोहर सिंह राणावत) भाग 39, पृ.22,, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर, द्रष्टव्य- डॉ. राजेन्द्र नाथ पुरोहित का शोध पत्र, वर्ष 2003
8. डॉ. राजेन्द्र नाथ पुरोहित इसी परिवार से संबंधित है तथा यह डायरी भी इनके निजी संग्रह में सुरक्षित है।
9. हकीकत बहीड़ा (सं.गोपीनाथ शर्मा) जि.4, पृ. 67-70 महाराणा मेवाड़ रिसर्च इन्स्टिट्यूट पेलेस, उदयपुर, वर्ष 1992
10. मज्झिमिका (सं. डॉ. मनोहर सिंह राणावत) भाग 39, पृ.22, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर, द्रष्टव्य- डॉ. राजेन्द्र नाथ पुरोहित का शोध पत्र, वर्ष 2003
11. किशनगढ़ महाराजा की बग्गी तक पेशवाई और विदाई की रस्म पुरोहित शंभुनाथ जी ने अदा की।
12. द्रष्टव्य-डॉ. राजेन्द्र नाथ पुरोहित आलेख, वर्ष 2003
13. वही
14. के. एस. सक्सेना, दी पोलिटिकल मूवमेन्ट एण्ड अवेकनिंग इन् राजस्थान (1857-1947.) पृ. 121-122; डॉ डी एल पालीवाल, मेवाड़ एण्ड दी ब्रिटिश (1857-1921.) पृ. 230-231, डा. आर. एस. दरड़ा, फॉर्म फ्यूडलिज्म टू डेमोक्रेसी, पृ.4-5; रघुबीर सिंह, पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ. 307-308; पृथ्वीसिंह मेहता, हमारा राजस्थान, पृ. 288-289; बी. डी. केला, देशी राज्यों की जन जागृति, पृ. 25; रामनारायण चौधरी, वर्तमान राजस्थान, पृ.-51

सामान्य बालकों एवं अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता का तुलनात्मक अध्ययन

शोभा कुमारी

शोधार्थी, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग (झारखण्ड)



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

किसी भी राष्ट्र और समाज के विकास के लिए बालकों एवं बालिकाओं का सर्वांगीण विकास अति-आवश्यक होता है। बालकों के व्यक्तित्व का विकास उनके परिवार एवं समाजिक वातावरण पर निर्भर होते हैं। अपराधी बालकों एवं बालिकाओं के सर्वांगीण विकास के लिए राज्य में कई सम्प्रेक्षण गृह के साथ - साथ सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों द्वारा विभिन्न योजनाएँ चलाई जा रही हैं। प्रस्तुत: अध्ययन का मुख्य उद्देश्य हजारीबाग जिले के सामान्य बालकों एवं अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता का तुलनात्मक अध्ययन करना है। आँकड़ों एकत्रित करने के पश्चात् संख्याकीय विश्लेषण हेतु वर्णनात्मक संख्याकीय में मध्यमान तथा मानक विचलन की गणना की गई है, तथा समूहों के मध्य अंतर टी-अनुपात ज्ञात किया गया है। प्राप्त परिणाम प्रदर्शित करते हैं, कि सामान्य बालकों एवं अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता में सार्थक अंतर अधिक पाया गया एवं उच्चवर्ग के सामान्य बालकों एवं उच्चवर्ग के अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता में सार्थक अंतर अधिक पाया गया और निम्नवर्ग के सामान्य बालकों एवं निम्नवर्ग के अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता में सार्थक अंतर अधिक पाया गया है।

संकेताक्षर : सामान्य बालकों, अपराधी बालकों, व्यक्तित्व विभिन्नता, परिवारिक, सामाजिक मनोविज्ञानिक विभिन्नता।

प्रारंभिक समय में बालकों को जिस प्रकार के वातावरण एवं अनुभव प्राप्त होते हैं। उनका उसी के आधार पर व्यक्तित्व का निर्माण होते हैं। बालक के व्यक्तित्व का विकास उनके परिवार व सम्पूर्ण समाजिक वातावरण का परिणाम स्वरूप होते हैं। मुख्यरूप से मूल्यप्रवृत्तियाँ, अभिवृत्तियाँ, मानसिक ग्रंथियाँ, अवचेतन मनोरचनायें तथा विचार बालक के व्यक्तित्व को विशिष्टता प्रदान करते हैं। आलपोर्ट 1937 के अनुसार व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोशारीरिक तंत्रों का गतिशील या गत्यात्मक संगठन है, जो वातावरण में उनके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करते हैं। आइजेन्क 1952 के अनुसार व्यक्तित्व के चरित्र, चितप्रकृति, ज्ञानशक्ति तथा शारीरिकगठन का करीब - करीब एक स्थायी एवं टिकाऊ संगठन है, जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन का निर्धारण करते हैं। व्यक्तित्व एक ऐसा तंत्र है जिसका मनोवैज्ञानिक तथा मनोशारीरिक दोनों पक्ष आपस में अन्तः क्रिया करते हैं। इस तंत्र के मुख्य तत्व शीलगुण, संवेग, आदत, ज्ञानशक्ति, चरित्रप्रकृति, चरित्र तथा अभिप्रेरक आदि होते हैं। जो सभी मानसिक गुण हैं इससे स्पष्ट होता है, कि व्यक्तित्व न तो पूर्णतः मनोवैज्ञानिक और न तो मनोशारीरिक ही है। अतः व्यक्तित्व इन दोनों पक्षों का मिश्रण होते हैं। बालक जन्म लेते ही एक ऐसा मानव निर्मित वातावरण में प्रवेश करता है, जहाँ की भौतिक वस्तुओं (बंगला, गाड़ी आदि) तथा अभौतिक वस्तुओं (धर्म, प्रथा, परम्परा, विश्वास आदि) उसे घेरे रखते हैं। इसी वातावरण से उनका पालन - पोषण होते हैं तथा इसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व के विकास पर पड़ते हैं। यदि किन्हीं कारणवश बालक के मस्तिष्क में मूल्यों एवं विचारों में संघर्ष उत्पन्न हो जाये तो ऐसे में वह परिवार विरोधी एवं समाज विरोधी कार्यों में लिप्त हो सकते हैं, और ऐसे बालकों को अपराधी की श्रेणी में रखा जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने बालक अपराधियों प्रवृत्तियों को मन अथवा व्यक्तित्व सम्बन्धी विकार माना है। वर्तमान समय में बाल अपराध की समस्या उन प्रमुख समस्याओं में से एक है जिसे

अपराधार्थक व्यवहार के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्त्व दिया जा रहा है। बालक अपराधी समस्या एक विश्वव्यापी है, जिसे प्रत्येक राष्ट्र और समाज में किसी न किसी रूप में देखे जा सकते हैं। भारत वर्ष में अपराधी बालकों के संबंध में भी आंकड़े प्राप्त हुए हैं, उनके आधार पर कहा जा सकता है, कि यह समस्या दिन - प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। यही कारण है, कि वर्तमान समय में इस समस्या को विशेष महत्त्व दिया जा रहा है। जब एक बच्चे द्वारा कोई कानून विरोधी या असामाजिक कार्य किये जाते हैं, तो इसे बाल अपराधी कहा जाता है। कानून की दृष्टिकोण से, बाल अपराध 8 वर्ष से अधिक और 16 वर्ष से कम आयु के बच्चे द्वारा किया गया, एक कानून विरोधी कार्य है, जिसे कानूनी कार्यवाही के लिए बाल न्याय अधिनियम अनुच्छेद 1986 (संशोधित 2000) के अनुसार, 16 वर्ष के बालक और 18 वर्ष तक की बालिकाओं को अपराध करने पर बाल अपराधियों की श्रेणी में शामिल किये जाते हैं, बाल अपराधी के लिए अधिकतम आयु सीमा एक राज्यों से दूसरे राज्यों में भिन्न होती है। अतः केवल आयु ही बाल अपराध को निर्धारित नहीं करती, बल्कि इसमें अपराध की गंभीरता भी महत्त्वपूर्ण पक्ष है। 7 से 16 वर्ष का बालक तथा 7 से 18 वर्ष की बालिका द्वारा कोई भी ऐसा अपराध किया गया हो, जिसके लिए राज्य मृत्यु - दण्ड अथवा आजीवन कारावास देते हैं, जैसे हत्या, देशद्रोह, घातक आक्रमण आदि। आज भी बाल अपराध की समस्या अपराधशस्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों के लिए गम्भीर बनी हुई है, ऐसा माना जाता है, कि बाल अपराध, अपराध के प्रवेश द्वार है, क्योंकि बाल अपराध की निरन्तर वृद्धि ने व्यस्क अपराधों की समस्या खड़ा कर दिये हैं, और यही कारण है, कि वर्तमान समय में बाल अपराध की समस्या की तरफ विशेष रूप से ध्यान दिये जा रहे हैं और बाल अपराध की ओर ले जाने वाले कारणों की खोज तथा निषेध के कार्यक्रमों का विश्लेषण किया जा रहा है, ताकि बालकों को अपराधी बनने से यथासम्भव रोका जा सके।

साहित्य समीक्षा

अपराधी बालकों की समस्या जो मूल्यरूप से परिवार और समुदाय के विघटन के परिणाम स्वरूप होते हैं। भारत वर्ष में बाल अपराधियों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है, यह एक चिंता का विषय है। जब की इन्हीं बालकों पर राष्ट्र और समाज का भविष्य निर्भर

करता है, अगर वे असामान्य बालक बन जाये तो देश का भविष्य अंधकारमय हो जाएगा। बाल अपराध एक सामाजिक समस्या है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार कोई भी बालक जन्म से अपराधी नहीं होते हैं, बल्कि बालकों को अपराधी बनने के निम्नलिखित कारण होते हैं। जिसके कारण बालक अपराधी प्रवृत्ति के हो जाते हैं। जैसे - वंशगत, बिखरे परिवार, पक्षपातपूर्ण व्यवहार, हीनता की भावना, अधिक सुख की इच्छा, दोषपूर्ण अनुशासन, बालकों का तिरस्कार, मानसिक अस्थिरता, बुद्धि का निम्न स्तर, अस्वस्थ मनोरंजन, जाति विभेद, गलत संगत, आर्थिक कारण आदि महत्त्वपूर्ण होते हैं। आस्ट्रेलियन चाइल्डहुड फाउंडेशन के चीफ टूसी के अनुसार समय से पूर्व बालकों में परिपक्व व्यवहार के लिए फिल्म, म्यूजिक वीडियो, विज्ञापन, वीडियो गेम्स दोषी हो सकते हैं। जिसमें असंभव और हिंसात्मक दृश्यों की बहुलता होती है। ऐसे दृश्यों से बालकों के व्यक्तित्व काफी प्रभावित हो जाते हैं। टूसी ने बताया की प्रतिवर्ष ऐसे करीब 200 बालकों को सुधारगृह भेजे जाते हैं पिछले दशक से यह प्रवृत्तियाँ 20 गुणा तेजी से बढ़ी है। यूनिवर्सिटी ऑफ मोसाच्युसेट्स के मनोवैज्ञानिक डॉ. शैरॉन लैब के अनुसार स्क्रीन पर दिखाये जाने वाले कार्यक्रम काफी आक्रमक व हिंसक होने लगे हैं, जिन्हें देखने से बालक के मन में बुरा प्रभाव पड़ता है। जिससे उनमें आक्रमक प्रवृत्ति विकसित होने लगी है। डॉ. लैब ने देखा कि 4-18 आयु वर्ग के 674 बालकों मारधाड़ करना पसंद करते हैं। एसोसिएम सर्वे नवम्बर, 2010 के अनुसार टी. वी. कार्यक्रमों में बढ़ती अभद्रता और आपत्तिजनक शब्दों के प्रयोग से बालकों की मनोवृत्तियाँ परिवर्तित होने लगी हैं। 6 - 7 वर्ष के बालक सप्ताह में कम से कम 35 घंटे टी. वी. देखते हैं। जिसके कारण उनका व्यक्तित्व इतना कुप्रभावित हो जाते हैं, कि वह हिंसक व्यवहार तथा अभद्र शब्दों का अनुकरण करने लगते हैं। डॉ. लैरी रोजेन 2011 ने बताया कि फेसबुक या अन्य सोशल नेटवर्किंग वेबसाइट पर नियमित लॉग - इन रहने से बालकों में कई तरह की व्यावहारिक समस्याएँ एवं आत्मकेन्द्रीत रहने की प्रवृत्ति पनपने लगती है, इन वेबसाइट के प्रभाव से बालकों का ध्यान अपने मूल कार्यों से हट जाते हैं जिसके कारण इनके व्यक्तित्व कुप्रभावित हो जाते हैं। डॉ. संजय कुमार 2021 के अनुसार सामान्य बालकों एवं अपराधी बालकों के प्रति उनके परिवार कि एकाग्रता संबंधी व्यवहार का स्तर निम्न तथा उपेक्षात्मक व्यवहार का स्तर उच्च पाया

जाता है। अतः बाल अपराधी समस्याओं को रोकने के लिए हमें और हमारे देश को इसके उत्पन्न होने वाली कारणों पर रोकथाम करना चाहिए ताकि बालकों को अपराधी बनने से रोका जाए। विभिन्न अध्ययनों में यह देखा गया है कि अपराध की ओर जाने का मूल कारण बालक का समुचित पालन - पोषण न होना है। अतः बाल अपराध को रोकने के लिए सबसे पहले परिवारों का पुनः संगठन करना होगा। माता - पिता बनने से पहले प्रत्येक स्त्री और पुरुष को बाल - मनोविज्ञान तथा बालकों के पालन - पोषण संबंधी बातों का ज्ञान होना आवश्यक है। बालक का पालन - पोषण एक कला एवं विज्ञान है, इस कला की आवश्यकता माता - पिता का चरित्र एवं व्यवहार तथा घर का वातावरण है आवश्यकता से अधिक लाड - प्यार से बालक बिगड़ जाते हैं, और आवश्यकता से कम स्नेह तथा प्यार पाने से उनका भावनात्मक विकास नहीं हो पाते हैं। अतः प्यार का बालकों के जीवन में बहुत बड़ा महत्त्व होते हैं एवं आवश्यक यौन शिक्षा के अभाव में उनके बालक - बालिकायें बाल अपराध की राह पर चल पड़ते हैं। मनोरंजन का बालक के जीवन में बहुत बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। स्वस्थ मनोरंजन के अभाव में बालक की अपराध प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलते हैं। अतः अपराध रोकने के लिए स्वस्थ एवं सुसंस्कृति मनोरंजन होना चाहिए। परिवार के बाद बालकों पर स्कूल का प्रभाव पड़ता है, अतः बालकों को सुस्वस्थ एवं समुचित शिक्षा का प्रबंध करना चाहिए। शिक्षकों को बाल - मनोविज्ञान का विशेष ज्ञान होनी चाहिए। ताकि बालकों में विषय के प्रति रुचि उत्पन्न कर सकें। शिक्षकों का चरित्र और व्यवहार अच्छा होनी चाहिए और शिक्षकों के द्वारा बालकों का अपमान नहीं किया जाना चाहिए तथा शारीरिक एवं मानसिक दण्ड का यथा सम्भव प्रयोग नहीं करनी चाहिए। पढ़ने - लिखने में कमजोर बालकों पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए क्योंकि उनके अपराधी बनने की सम्भावना अधिक रहती है। सामान्य शिक्षा के साथ - साथ बालकों को शारीरिक शिक्षा, औद्योगिक शिक्षा तथा नैतिक शिक्षा भी देनी चाहिए। स्कूल का वातावरण तथा शिक्षा पद्धति ऐसी होनी चाहिए, कि बालक विद्यालय से न भागे। बालकों को अपराधी बनने से रोकने के लिए उनके मनोवैज्ञानिक दोषों का उपचार अत्यंत होना चाहिए। इसके लिए स्कूलों में नैदानिक चिकित्सालय और परामर्शदाता होनी चाहिए। बाल अपराध प्रारंभिक अवस्था में रोके जा सकते हैं यदि परिवार और

विद्यालयों में उचित देख - रेख की जाए और बालकों के सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक सुधार के लिए गंभीरतापूर्वक कार्य किया जाए।

3. समस्या कथन :-

सामान्य बालकों एवं अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता का तुलनात्मक अध्ययन:

4. शोध के उद्देश्य :-

सामान्य बालकों एवं अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

5. शोध परिकल्पना :-

I. सामान्य बालकों एवं अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता में सार्थक अंतर पाया जाएगा

II. उच्चवर्ग के सामान्य बालकों एवं उच्चवर्ग के अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता में सार्थक अंतर पाया जाएगा

III. निम्नवर्ग के सामान्य बालकों एवं निम्नवर्ग के अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता में सार्थक अंतर पाया जाएगा

6. तकनीकी शब्दों का परिभाषीकरण :-

1. सामान्य बालकों :-

सामान्य बालकों से तात्पर्य ऐसे बालकों से है जो शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ होते हैं। ये मानसिक रोग से ग्रस्त नहीं होते हैं। सामान्य बालकों की बुद्धिलब्धि साधारण 90 से 110 के बीच होती है। सामान्य बालक समाज, परिवार एवं विद्यालय के साथ सही से समायोजन स्थापित कर लेते हैं। वे अपने संवेगों पर नियंत्रण रखने में सफल होते हैं। अतः वे प्रायः उभयमुखी होते हैं। यह ज्यादा महत्वाकांक्षी नहीं होते हैं, बल्कि स्तर एवं शिक्षा कि वजह से मध्यम सोच रखते हैं।

2. अपराधी बालकों :-

अपराधी बालकों से तात्पर्य ऐसे बालकों से है। जो कानून का उल्लंघन करते हैं। समाज के नियमों के खिलाफ काम करते हैं। जैसे की हत्या, बालात्कार, चोरी, नशा। ऐसे बालक को अपराधी बालक की श्रेणी में रखा जाता है। अपराधी बालक मानसिक रूप से अस्वस्थ होते हैं, वे अपने परिवार एवं समाज में सही से समायोजन नहीं स्थापित कर पाते हैं। वे अपने संवेगों पर नियंत्रण रखने में अपने आप को असमर्थ

पाते हैं। वे प्रायः अन्तमुखी होते हैं, और वे ज्यादा महत्त्वकांक्षी प्रवृत्ति के होते हैं।

3. व्यक्तित्व विभिन्नता :-

व्यक्तित्व से तात्पर्य वैसे बालकों के व्यक्तित्व से होता है। जिसमें किसी बालक के सोचने, महसूस करने और व्यवहार करने का अनूठा तरीका से होता है। यह बालक की अनूठा समायोजन प्रक्रिया को बनाने वाली स्थायी लक्षणों और व्यवहार है। यह बालकों की भावनाओं, विचारों और कार्यों का संयोजन है। बालकों के व्यक्तित्व, जैविक और पर्यावरणीय कारकों के बीच परस्पर क्रिया और तालमेल का नतीजा होता है। लेकिन यह पूरे जीवनकाल में बदलते रहते हैं। व्यक्तित्व एक व्यापक शब्द है, और इसमें दृष्टिकोण, योग्यता, प्रेरणा, राय, तर्क, समझ, मनोदशा शामिल होते हैं।

7. शोध के परिसीमाएँ

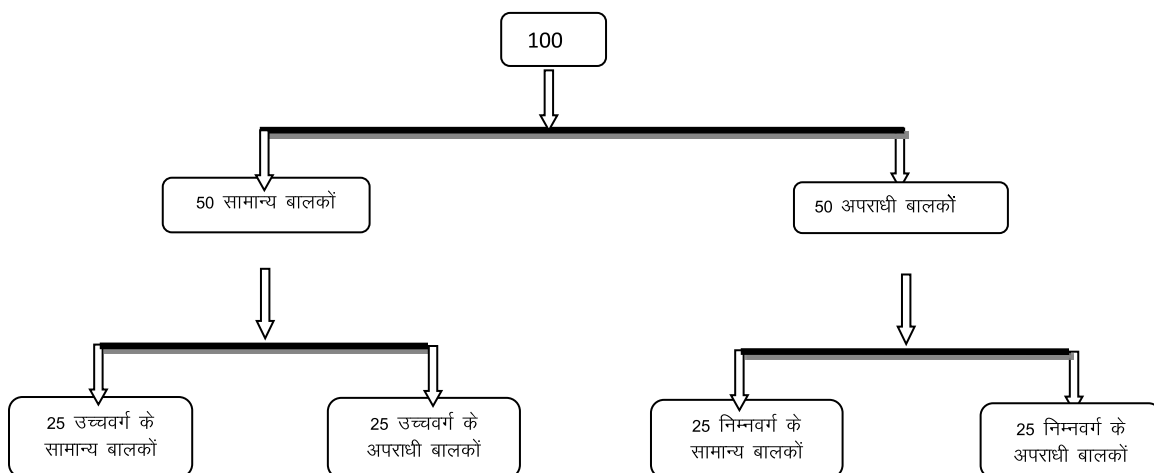
प्रस्तुत: शोध में समय, श्रम व सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए अनुसंधान की निम्नलिखित परिसीमाएँ हैं :-

1. इस शोध अध्ययन में सामान्य बालकों एवं अपराधी बालकों का उम्र 8 वर्ष से 18 वर्ष तक सीमित रखा गया है।

2. इस शोध अध्ययन में उच्चवर्ग के सामान्य बालकों एवं उच्चवर्ग के अपराधी बालकों तक सिमित रखा गया है।
3. इस शोध अध्ययन में निम्नवर्ग के सामान्य बालकों एवं निम्नवर्ग के अपराधी बालकों तक सिमित रखा गया है।
4. इस शोध अध्ययन में केवल 8 से 18 वर्ष तक के 100 सामान्य बालकों एवं अपराधी बालकों पर ही अध्ययन सीमित रखा गया है।
5. इस शोध अध्ययन में हजारीबाग जिले के बाल संप्रेक्षण गृह के अपराधी बालकों और सामान्य क्षेत्र के बालकों को प्रतिदर्श के रूप में लिया गया है।
6. इस शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा सामान्य बालकों एवं अपराधी बालकों को लिया गया है।

7. शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोधकार्य के उद्देश्यों की प्राप्ति तथा परिकल्पनाओं के प्ररीक्षण हेतु आँकड़े एकत्रित करने के लिए प्रश्नावली विधि का प्रयोग किया गया है।



8. न्यायदर्श

प्रस्तुत: अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा सम्भाव्यता प्रतिदर्श विधि में से यादृच्छिक प्रतिदर्श का प्रयोग कर हजारीबाग जिले के बाल संप्रेक्षण गृह के अपराधी बालकों एवं सामान्य क्षेत्र के बालकों का अध्ययन करने के लिए चयन किया गया है।

9. शोध उपकरण

इस शोध में अनुसंधानकर्ता प्रस्तुत अध्ययन के संपादन करने हेतु आई. जेन्क व्यक्तित्व प्रश्नावली (EPQ) प्रो. गिरधर प्रदास ठाकुर एवं डॉ. मंजू ठाकुर द्वारा निर्मित का प्रयोग द्वारा निर्मित का प्रयोग किया गया है।

10. शोध अध्ययन में प्रस्तुत सख्यांकी

शोधकर्ता द्वारा परिकल्पनाओं के परीक्षण हेतु आंकड़ों का विश्लेषण किया गया इस हेतु सांख्यिकी :-

I. मध्यमान

II. मानक विचलन

III. टी. अनुपात

सारणी संख्या : 1

क्रम संख्या	तुलनात्मक समूह	प्रदत्तों की कुल संख्या : 100	मध्यमान	मानक विचलन	टी० मूल्य
1.	सामान्य बालकों	50	24.18	7.67	3.33
2.	अपराधी बालकों	50	27.84	7.8	

स्वतंत्रता के अंश 198 हेतु आवश्यक 'टी' का तालिका मान

0.05 विश्वास स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक मान - 1.97 :

0.01 विश्वास स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक मान - 2.60 :

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से ज्ञात होता है, की सामान्य बालकों व अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता से प्राप्त मध्यमान 24.18 व 27.84 के बीच 'टी' मूल्य 3.33 प्राप्त हुआ। यह 'टी' मूल्य 0.

11. आँकड़ों का वर्गीकरण, विश्लेषण एवं व्याख्या

परिकल्पना :- 1

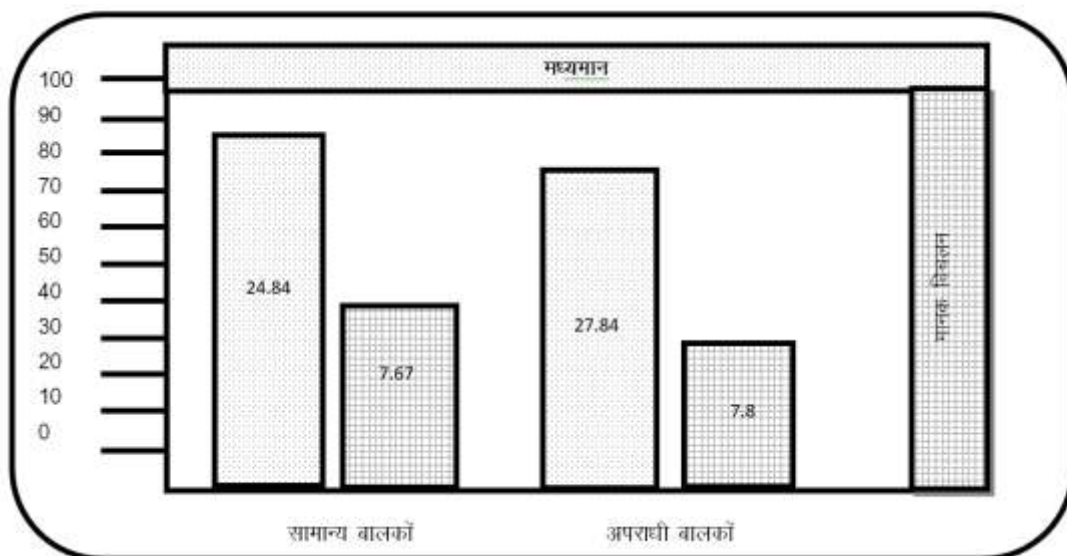
सामान्य बालकों एवं अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता में सार्थक अंतर होगा।

05/0.01 स्तर पर 1.97/2.60 से अधिक है, जो यह प्रदर्शित करता है, की सामान्य बालकों व अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता में सार्थक अंतर होता है।

अतः परिकल्पना "सामान्य बालकों व अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता में सार्थक अंतर होगा", स्वीकृत की जाती है।

सामान्य बालकों एवं अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता संबंधी आँकड़ों को प्रदर्शित करने वाला आरेख :

आरेख संख्या : 1.1



परिकल्पना : 2

उच्चवर्ग के सामान्य बालकों एवं उच्चवर्ग के अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता में सार्थक अंतर होगा।

सारणी संख्या : 2

क्रम संख्या	तुलनात्मक समूह	प्रदत्तों की कुल संख्या : 50	मध्यमान	मानक विचलन	टीव मूल्य
1.	उच्चवर्ग के सामान्य बालकों	25	28.12	5.62	2.84
2.	उच्चवर्ग के अपराधी बालकों	25	24.10	8.44	

स्वतंत्रता के अंश 198 हेतु आवश्यक 'टी' का तालिका मान

0.05 विश्वास स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक मान - 1.97 :

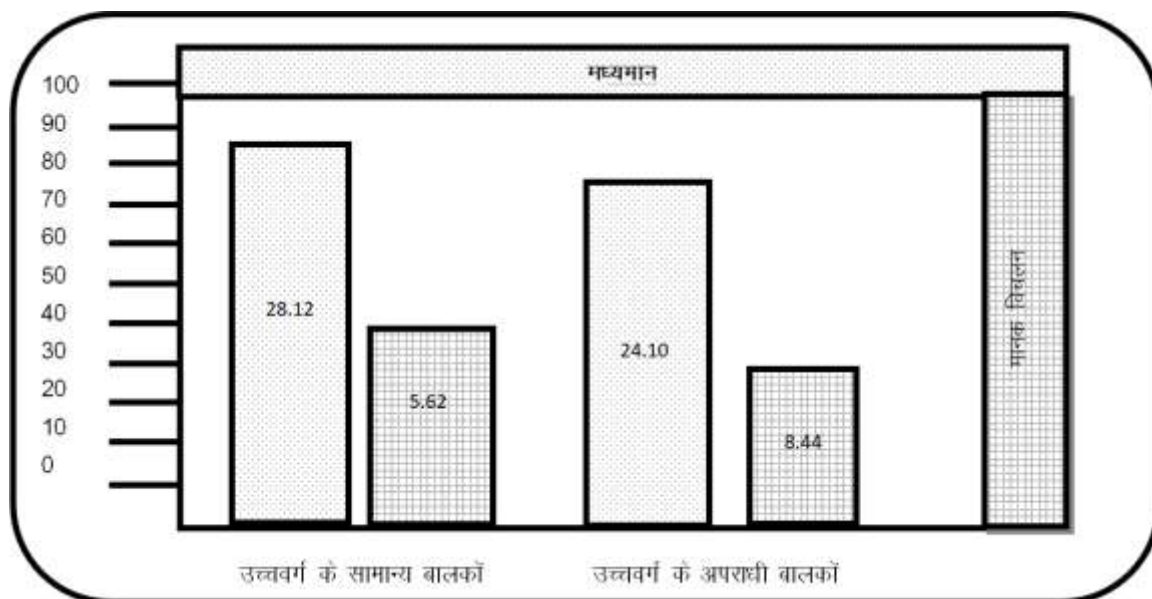
0.01 विश्वास स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक मान - 2.60 :

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से ज्ञात होता है, की उच्चवर्ग के सामान्य बालकों एवं उच्चवर्ग के अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता से प्राप्त मध्यमान 28.12 व 24.10 के बीच 'टी' मूल्य 2.84 प्राप्त हुआ।

यह 'टी' मूल्य 0.05/0.01 स्तर पर 1.97/2.60 से अधिक है। जो यह प्रदर्शित करता है, कि उच्चवर्ग के सामान्य बालकों एवं उच्चवर्ग के अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता में सार्थक अंतर होता है।

अतः परिकल्पना “उच्चवर्ग के सामान्य बालकों एवं उच्चवर्ग के अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता में सार्थक अंतर होगा”, स्वीकृत की जाती है।

उच्चवर्ग के सामान्य बालकों एवं उच्चवर्ग के अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता से संबंधी आँकड़ों को प्रदर्शित करने वाला आरेख :-



परिकल्पना : 3

निम्नवर्ग के सामान्य बालकों एवं निम्नवर्ग के अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता में सार्थक अंतर होगा।

सारणी संख्या : 3

क्रम संख्या	तुलनात्मक समूह	प्रदत्तों की कुल संख्या : 50	मध्यमान	मानक विचलन	टीव मूल्य
1.	निम्नवर्ग के सामान्य बालकों	25	30.41	5.02	3.62
2.	निम्नवर्ग के अपराधी बालकों	25	32.91	4.67	

स्वतंत्रता के अंश 198 हेतु आवश्यक 'टी' का तालिका मान

0.05 विश्वास स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक मान - 1.97 :

0.01 विश्वास स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक मान - 2.60 :

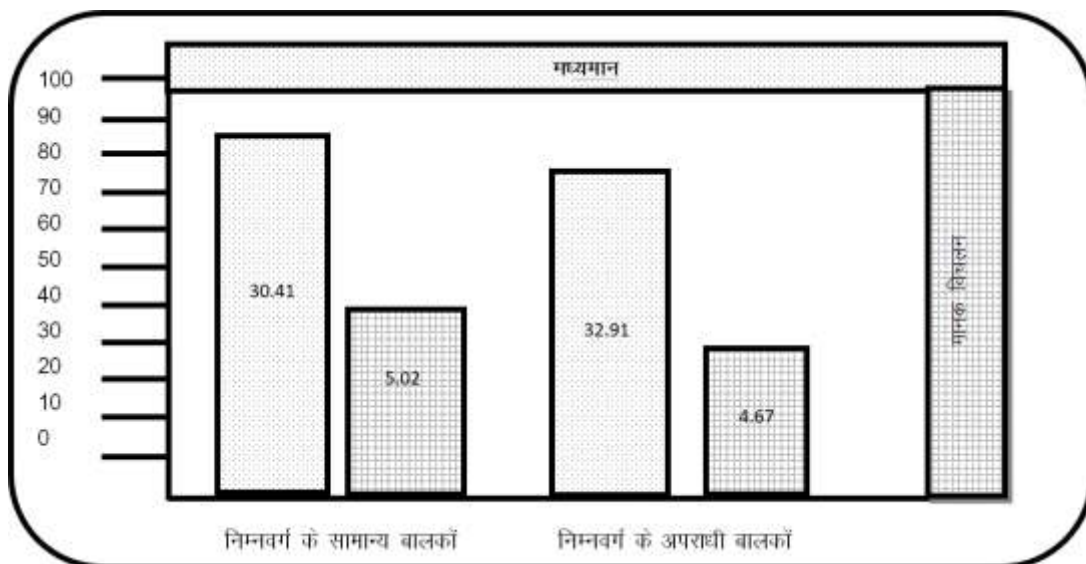
उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से ज्ञात होता है, कि निम्नवर्ग के सामान्य बालकों एवं निम्नवर्ग के अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता से प्राप्त मध्यमान 30.41 व 32.91 के बीच 'टी' मूल्य 3.62 प्राप्त हुआ,

यह 'टी' मूल्य 0.05/0.01 स्तर पर 1.97/2.60 से अधिक है। जो यह प्रदर्शित करता है, कि निम्नवर्ग के सामान्य बालकों एवं निम्नवर्ग के अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता में सार्थक अंतर होता है।

अतः परिकल्पना “निम्नवर्ग के सामान्य बालकों एवं निम्नवर्ग के अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता में सार्थक अंतर होगा”, स्वीकृत की जाती है।

निम्नवर्ग के सामान्य बालकों एवं निम्नवर्ग के अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता से संबंधी आँकड़ों को प्रदर्शित करने वाला आरेख :-

आरेख संख्या : 3.1



निष्कर्ष

1. सामान्य बालकों एवं अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता में सार्थक अंतर अधिक पाया गया है।
2. उच्चवर्ग के सामान्य बालकों एवं उच्चवर्ग के अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता में सार्थक अंतर अधिक पाया गया है।
3. निम्नवर्ग के सामान्य बालकों एवं निम्नवर्ग के अपराधी बालकों के व्यक्तित्व विभिन्नता में सार्थक अंतर अधिक पाया गया है।
3. सुलेमान, डॉ . मुहम्मद, ;2005ईए मनोविज्ञान, शिक्षा एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों में सांख्यिकी, प्रकाशन : मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या : 117 दृ 120^ए
4. सिंह, अरुण कुमार, सिंह, आशीष कुमार, ;2008ईए व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, प्रकाशन : मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या : 113 दृ 115^ए
5. सिंह, अरुण कुमार, ;2005ईए आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, प्रकाशन : मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या : 366 दृ 383^ए
6. सिंह, डॉ. एच. एस., शर्मा, डॉ. रचना, ;1996ईए शिक्षा मनोविज्ञान, प्रकाशन : एटलांटिक पब्लिकेशंस डिस्ट्रिब्यूटर्स, बी-2, विशाल एंक्लेव, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या : 375 दृ 384^ए

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पाल. मिली, गुप्ता. सीमा,(2011), बाल अपराधी व सामान्य बालकों के व्यक्तित्व का व्यवहारिक अध्ययन, प्रकाशन: इंडियन एकेडमी ऑफ सोशल साइंस व हुमयुनिटीज, जौनपुर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ. 0974.1089ए टवस दृ 40ए पृष्ठ संख्या : 142 - 146.
2. चौधरी, डॉ . ललित मोहन, शर्मा नीतू, (2023), भारत में बाल - अपराध के कारण एवं रोकथाम के उपाय, प्रकाशन: ;पुष्पम्बुद्ध इनटरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ एडुकेशन एण्ड टेक्नोलोजी, पृष्ठ.2581. 7795ए टवस दृ 5ए पृष्ठ संख्या : 14 - 21.

20वीं सदी की शुरुआत में जोधपुर रियासत की सिंचाई व्यवस्था: परंपरागत तकनीक, प्रशासनिक नीतियाँ और पर्यावरणीय प्रभाव



shodhshree@gmail.com

देवपाल सिंह चारण

शोधार्थी, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर

शोध सारांश

20वीं सदी की शुरुआत में जोधपुर रियासत की सिंचाई व्यवस्था ने परंपरागत तकनीकों और प्रशासनिक नीतियों के माध्यम से अपने जल संसाधनों का प्रबंधन किया। इस शोध पत्र में जल संरक्षण के पारंपरिक साधनों, जैसे कुंड, बावड़ी, तालाब और नहर प्रणालियों का विश्लेषण किया गया है। इसके अतिरिक्त, ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन और जोधपुर दरबार द्वारा लागू की गई नीतियों का प्रभाव भी अध्ययन का केंद्र है। इन प्रणालियों का स्थानीय समाज, कृषि उत्पादकता और पर्यावरणीय परिस्थितियों पर क्या प्रभाव पड़ा, यह विश्लेषित किया गया है। शोध से यह स्पष्ट होता है कि पारंपरिक और आधुनिक तकनीकों के मिश्रण ने क्षेत्र में जल प्रबंधन की स्थिरता को प्रभावित किया।

संकेताक्षर : जोधपुर रियासत, सिंचाई व्यवस्था, परंपरागत तकनीक, प्रशासनिक नीतियाँ, जल संरक्षण, पर्यावरणीय प्रभाव, 20वीं सदी।

सजस्थान के थार मरुस्थल में स्थित जोधपुर रियासत ऐतिहासिक रूप से जल संकट से जूझती रही है। यहाँ की जलवायु मुख्यतः शुष्क और अर्ध-शुष्क है, जहाँ वर्षा अनियमित होती है और जल स्रोतों का प्राकृतिक पुनर्भरण सीमित रहता है। ऐसी परिस्थितियों में जल प्रबंधन और सिंचाई व्यवस्था की आवश्यकता अत्यंत महत्वपूर्ण थी। 20वीं सदी की शुरुआत में जोधपुर रियासत की जल प्रबंधन प्रणाली पारंपरिक जल संचयन तकनीकों और ब्रिटिश शासन के हस्तक्षेप का एक मिश्रण थी। इस समय तक, स्थानीय समाज ने तालाबों, बांधों, नाड़ियों, कुओं और बावड़ियों जैसी जल संचयन प्रणालियों का विकास कर लिया था, जो कई सदियों से उनकी जीवनशैली और कृषि व्यवस्था का अभिन्न अंग थीं।

ब्रिटिश प्रशासन के आगमन के बाद सिंचाई व्यवस्था में नए परिवर्तन लाने की कोशिश की गई। 19वीं शताब्दी के अंत और 20वीं शताब्दी की शुरुआत में ब्रिटिश इंजीनियरों और जोधपुर दरबार के सहयोग से कई जल संरक्षण परियोजनाएँ चलाई गईं। इनमें जलाशयों का विस्तार, नए बांधों का निर्माण, और पाइपलाइन द्वारा जल आपूर्ति की योजनाएँ शामिल थीं। हालाँकि, इन परियोजनाओं में कई तकनीकी और प्रशासनिक चुनौतियाँ थीं। कई बार, पारंपरिक प्रणालियों की उपेक्षा करके अपनाई गई आधुनिक तकनीकें स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल नहीं थीं, जिससे वे लंबे समय तक प्रभावी नहीं रह सकीं।

इस शोध में 20वीं सदी के प्रारंभ में जोधपुर रियासत की सिंचाई प्रणाली का विस्तृत अध्ययन किया गया है। इसमें पारंपरिक जल संचयन प्रणालियों, ब्रिटिश प्रशासन द्वारा लागू की गई नीतियों, और इनसे उत्पन्न पर्यावरणीय प्रभावों का विश्लेषण किया जाएगा। इसके अतिरिक्त, यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करेगा कि उस समय की जल प्रबंधन नीतियाँ किस प्रकार जोधपुर के कृषि, समाज और पर्यावरण पर प्रभाव डालती थीं। इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के माध्यम से वर्तमान जल संकट और जल संरक्षण नीतियों को भी एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया जा सकता है।

पारंपरिक जल संसाधन प्रबंधन

20वीं सदी की शुरुआत में जोधपुर रियासत की सिंचाई व्यवस्था मुख्य रूप से पारंपरिक जल संचयन प्रणालियों पर

आधारित थी, जो सदियों से इस शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्र में जल संरक्षण का एक महत्वपूर्ण साधन रही हैं। जोधपुर जैसे शुष्क क्षेत्र में जल का संचयन और प्रबंधन एक चुनौतीपूर्ण कार्य था, जिसे स्थानीय ज्ञान, अनुभव और नवाचार के माध्यम से विकसित किया गया था। इन प्रणालियों का मुख्य उद्देश्य वर्षा जल को संचित करके वर्षभर उपयोग के लिए संरक्षित रखना था।

जोधपुर में जल संरक्षण की सबसे प्रभावी प्रणाली तालाबों और जलाशयों का निर्माण थी। इनमें प्रमुख थे बालसमंद, कायलाना और चोपासनी जलाशय, जिन्हें जोधपुर के विभिन्न भागों में जल आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए बनाया गया था। बालसमंद जलाशय शाही परिवार, सेना, और नगर प्रशासन के लिए जल आपूर्ति का एक प्रमुख स्रोत था। कायलाना जलाशय भी इसी उद्देश्य के लिए बनाया गया था और इसे जोधपुर शहर की जल आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता था। तालाबों के निर्माण में प्राकृतिक भू-आकृति का उपयोग किया जाता था ताकि जल संचयन अधिकतम हो सके।

इसके अतिरिक्त, जोधपुर में कुएँ और बावरियाँ भी जल आपूर्ति के प्रमुख स्रोत थे। कुओं का निर्माण इस प्रकार किया जाता था कि वे भूजल स्तर को बनाए रखें और लंबे समय तक जल उपलब्ध करवा सकें। मंडोर क्षेत्र में स्थित कुएँ 1905 की रिपोर्ट में उल्लिखित हैं, जिनका उपयोग अकाल के दौरान जल आपूर्ति के लिए किया जाता था। इन कुओं से जल निकालने के लिए विभिन्न पारंपरिक प्रणालियाँ विकसित की गई थीं, जैसे संधीया (चमड़े की थैली से पानी खींचना), अरहठ (पर्शियन व्हील), झेलवा (गहरे कुएँ से जल निकालने की विशेष तकनीक) आदि।

जोधपुर में नहरों और बांधों का निर्माण भी किया गया ताकि वर्षा के पानी को संचय कर सिंचाई के लिए प्रयोग में लाया जा सके। लूणी नदी के जल का उपयोग इन उद्देश्यों के लिए किया जाता था, लेकिन इसकी अविरलता पर निर्भरता एक चुनौती बनी रही। 1899-1900 के अकाल के बाद, प्रशासन ने बांकलि बांध परियोजना की शुरुआत की थी, जिसका उद्देश्य वर्षा जल संचयन करके कृषि क्षेत्र में जल उपलब्धता बढ़ाना था। हालाँकि, यह परियोजना विभिन्न प्रशासनिक और तकनीकी कारणों से पूरी तरह सफल नहीं हो सकी।

पारंपरिक जल प्रबंधन प्रणालियाँ केवल जल संग्रहण

तक ही सीमित नहीं थीं, बल्कि वे सामाजिक और सामुदायिक सहयोग पर आधारित थीं। तालाबों, कुओं, और नहरों की देखरेख और रखरखाव ग्राम पंचायतों और स्थानीय समाज के सामूहिक प्रयासों द्वारा किया जाता था। विभिन्न जल स्रोतों के उपयोग को नियंत्रित करने के लिए कड़े नियम बनाए गए थे ताकि जल का समान वितरण हो सके और इसकी बर्बादी रोकी जा सके। उदाहरण के लिए, जल संचयन और सिंचाई हेतु उपयोग के लिए अलग-अलग तालाब और कुएँ निर्धारित किए जाते थे, जिससे जल संसाधनों का संतुलित उपयोग सुनिश्चित किया जा सके।

20वीं सदी के प्रारंभ में, जोधपुर रियासत में पारंपरिक जल संसाधन प्रबंधन प्रणाली स्थानीय जलवायु परिस्थितियों के अनुरूप प्रभावी रूप से कार्य कर रही थी। हालाँकि, ब्रिटिश प्रशासन के हस्तक्षेप और कुछ आधुनिक जल प्रबंधन नीतियों के लागू होने के बाद, इन पारंपरिक प्रणालियों में बदलाव देखा गया। इसके बावजूद, आज भी जोधपुर के कई पारंपरिक जल स्रोत मौजूद हैं और जल संरक्षण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

ब्रिटिश प्रशासन और सिंचाई नीति

20वीं सदी की शुरुआत में जोधपुर रियासत की सिंचाई नीति पर ब्रिटिश प्रशासन का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। पारंपरिक जल प्रबंधन प्रणालियों के बावजूद, ब्रिटिश अधिकारियों ने आधुनिक जल आपूर्ति और सिंचाई प्रणालियों को लागू करने के प्रयास किए। हालाँकि, ये नीतियाँ अक्सर स्थानीय भौगोलिक और सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल नहीं थीं, जिससे कई परियोजनाएँ असफल साबित हुईं।

ब्रिटिश शासन के तहत, जोधपुर में जल आपूर्ति को व्यवस्थित करने के लिए कई परियोजनाएँ चलाई गईं। 1905 की रिपोर्ट के अनुसार, जोधपुर शहर के लिए जल आपूर्ति सुनिश्चित करने हेतु बालसमंद और कायलाना जलाशयों से पानी लाने की योजना बनाई गई थी। इस योजना के तहत, पाइपलाइनों और पंपिंग स्टेशनों का उपयोग कर शहर को जल आपूर्ति करने की प्रक्रिया अपनाई गई। हालाँकि, यह योजना पूरी तरह सफल नहीं हो सकी क्योंकि जल स्रोत वर्षा पर निर्भर थे और वर्षा की अनिश्चितता के कारण पानी की उपलब्धता हमेशा स्थिर नहीं थी।

ब्रिटिश प्रशासन ने कई नहर और बांध परियोजनाएँ भी

शुरू की, लेकिन वे स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप नहीं थीं। बांकलि बंध परियोजना (1899-1900) एक प्रमुख उदाहरण थी, जिसे जोधपुर के शुष्क क्षेत्रों में जल संरक्षण और सिंचाई के लिए प्रस्तावित किया गया था। हालांकि, निर्माण में तकनीकी कठिनाइयाँ और प्रशासनिक अक्षमताओं के कारण यह परियोजना प्रभावी नहीं हो सकी। इसी तरह, जवाई नदी परियोजना को भी जल भंडारण और सिंचाई के विस्तार के लिए प्रस्तावित किया गया था, लेकिन पर्याप्त सर्वेक्षण न होने के कारण इसे मंजूरी नहीं मिल सकी। ब्रिटिश इंजीनियरों द्वारा बनाई गई योजनाएँ अक्सर क्षेत्र की वास्तविक आवश्यकताओं को ध्यान में रखे बिना तैयार की जाती थीं, जिससे स्थानीय किसान और प्रशासनिक तंत्र उनके क्रियान्वयन में रुचि नहीं दिखाते थे।

इसके अलावा, जल वितरण व्यवस्था में भी ब्रिटिश प्रशासनिक नीतियों के कारण असमानताएँ देखी गईं। सरकारी और शहरी क्षेत्रों में पानी की आपूर्ति प्राथमिकता के आधार पर की जाती थी, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों को जल संकट का सामना करना पड़ता था। 1899 के भीषण अकाल के दौरान, मंडोर क्षेत्र में स्थित कुओं से जोधपुर शहर के लिए जल आपूर्ति की गई थी, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में कोई ठोस प्रबंध नहीं किया गया, जिससे वहाँ के लोग और मवेशी भारी जल संकट से जूझते रहे।

चोपासनी जलाशय का निर्माण भी ब्रिटिश काल में जल संरक्षण की एक महत्वपूर्ण पहल के रूप में किया गया था। इसे जोधपुर शहर को जल आपूर्ति करने के उद्देश्य से बनाया गया था, लेकिन जल रिसाव की समस्या के कारण यह एक अविश्वसनीय जल स्रोत बन गया। ब्रिटिश प्रशासन के तहत सिंचाई और जल आपूर्ति व्यवस्था में कई योजनाएँ बनीं, लेकिन उनमें से अधिकांश को उचित रखरखाव और क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अभाव में स्थायी सफलता नहीं मिल सकी।

इन परियोजनाओं की असफलता का एक प्रमुख कारण यह था कि ब्रिटिश प्रशासन ने जोधपुर के परंपरागत जल प्रबंधन प्रणालियों को पर्याप्त मान्यता नहीं दी। स्थानीय जल संरक्षण प्रणालियाँ, जैसे कि नाड़ी, तालाब, और बावड़ियाँ, समुदायों द्वारा संचालित होती थीं और लंबे समय से प्रभावी रूप से काम कर रही थीं। लेकिन ब्रिटिश अधिकारियों ने इन प्रणालियों को

अनदेखा कर बड़े पैमाने पर जल संरचनाओं का निर्माण किया, जो कई बार असफल साबित हुईं। इसके अलावा, बढ़ते जल संकट और अव्यवस्थित जल वितरण ने किसानों और ग्रामीण समुदायों के लिए समस्याएँ और बढ़ा दीं, जिससे कई क्षेत्रों में कृषि उत्पादन प्रभावित हुआ और लोग बड़े पैमाने पर पलायन करने लगे।

इस प्रकार, ब्रिटिश प्रशासन द्वारा लागू की गई सिंचाई नीति जोधपुर रियासत के लिए पूरी तरह कारगर नहीं रही। आधुनिक तकनीकों के प्रयोग के बावजूद, उनकी योजनाएँ स्थानीय जलवायु, भूगोल और सामाजिक-सांस्कृतिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखे बिना बनाई गई थीं, जिसके परिणामस्वरूप जल संकट और पर्यावरणीय असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो गई।

पर्यावरणीय प्रभाव

20वीं सदी की शुरुआत में जोधपुर रियासत की सिंचाई व्यवस्था और जल प्रबंधन की नीतियों का पर्यावरण पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। जल संसाधनों के अत्यधिक दोहन, पारंपरिक जल प्रणालियों की उपेक्षा और ब्रिटिश प्रशासन द्वारा थोपे गए अप्रभावी सिंचाई उपायों ने स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित किया।

सबसे महत्वपूर्ण पर्यावरणीय समस्या भूजल स्तर में गिरावट थी। 1905 की रिपोर्टों में बताया गया है कि मंडोर और अन्य क्षेत्रों में कुएँ अत्यधिक गहरे होते जा रहे थे, जिससे जल निकालना कठिन हो गया। जल संकट के कारण किसानों को पारंपरिक जल स्रोतों पर अत्यधिक निर्भर होना पड़ा, जिससे उनके संरक्षण और पुनर्भरण की प्रक्रिया बाधित हुई। भूजल की अत्यधिक निकासी और प्राकृतिक पुनर्भरण की कमी ने कई क्षेत्रों में अकाल जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं।

इसके अतिरिक्त, मृदा अपरदन और मरुस्थलीकरण की समस्या बढ़ती गई। जोधपुर के कई हिस्सों में वनस्पति कम होने और अत्यधिक चराई के कारण मिट्टी की पकड़ कमजोर हो गई, जिससे तेज हवाओं के कारण मृदा अपरदन की गति बढ़ गई। ब्रिटिश प्रशासन द्वारा शुरू की गई कुछ नहर परियोजनाएँ अपेक्षित परिणाम नहीं दे सकीं, जिससे किसानों की निर्भरता भूमिगत जल और परंपरागत जलाशयों पर बनी रही। इससे भूमि की उर्वरता धीरे-धीरे घटने लगी और कई कृषि योग्य भूमि बंजर होती गई।

जलवायु परिवर्तन और पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव भी स्पष्ट रूप से देखने को मिले। जोधपुर जैसे शुष्क क्षेत्र में जल स्रोतों का सही प्रबंधन किया जाए तो स्थानीय जलवायु संतुलन बनाए रखा जा सकता है। हालाँकि, पारंपरिक जलाशयों और तालाबों की उचित देखरेख न होने के कारण पानी का संचयन सीमित हो गया। इससे जलवायु में अधिक शुष्कता आई, जिससे वनस्पति और जीव-जंतुओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। 20वीं सदी की शुरुआत में ही रिपोर्टों में उल्लेख किया गया था कि जोधपुर के कई क्षेत्रों में वृक्षों की संख्या तेजी से कम हो रही थी, जिससे गर्मी बढ़ रही थी और मिट्टी में नमी की मात्रा कम होती जा रही थी।

षि उत्पादन और सामाजिक प्रभाव भी इन पर्यावरणीय परिवर्तनों से अछूते नहीं रहे। जल संकट के कारण कृषि योग्य भूमि सीमित हो गई, जिससे किसानों की आय प्रभावित हुई। 1899 के अकाल के दौरान जब पानी की भारी कमी हुई, तब बड़ी संख्या में लोग पलायन करने के लिए मजबूर हुए। इसके अलावा, जल वितरण की असमानता के कारण ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में जल आपूर्ति को लेकर भी संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई। ब्रिटिश प्रशासन की योजनाएँ मुख्य रूप से शहरी क्षेत्रों की जल आवश्यकताओं को पूरा करने पर केंद्रित थीं, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में किसान जल संकट से जूझते रहे।

कुल मिलाकर, 20वीं सदी की शुरुआत में जोधपुर की सिंचाई नीतियाँ और जल प्रबंधन की कमियाँ पर्यावरणीय असंतुलन का मुख्य कारण बनीं। भूजल स्तर में गिरावट, मरुस्थलीकरण, वनस्पति क्षरण और जलवायु परिवर्तन की समस्याएँ इस दौर की मुख्य पर्यावरणीय चुनौतियाँ थीं। यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि जल संरक्षण की पारंपरिक प्रणालियों को पुनर्जीवित किए बिना और सतत जल प्रबंधन रणनीतियाँ अपनाए बिना, जोधपुर जैसे शुष्क क्षेत्र में पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखना कठिन हो सकता है।

निष्कर्ष

20वीं सदी की शुरुआत में जोधपुर रियासत की सिंचाई व्यवस्था एक जटिल और विविध प्रणाली थी, जो पारंपरिक जल संचयन तकनीकों और ब्रिटिश प्रशासनिक हस्तक्षेप के बीच संतुलन बनाए रखने का प्रयास कर रही थी। जोधपुर का भौगोलिक और जलवायु परिवेश अत्यधिक शुष्क था, जहाँ जल एक बहुमूल्य संसाधन था। इस स्थिति को ध्यान में रखते

हुए, स्थानीय शासकों ने जल संरक्षण के लिए जलाशयों, तालाबों, बंधों और कुओं की पारंपरिक प्रणालियों को विकसित किया। बालसमंद और कायलाना जैसे जलाशय तथा मंडोर क्षेत्र के कुएँ और बावरियाँ जल आपूर्ति के महत्वपूर्ण स्रोत थे। इन प्रणालियों का उद्देश्य सीमित जल संसाधनों का कुशल उपयोग करना और कृषि तथा पेयजल आवश्यकताओं को पूरा करना था।

ब्रिटिश प्रशासन के प्रभाव से सिंचाई नीति में कुछ आधुनिक तकनीकों को अपनाने का प्रयास किया गया, लेकिन अधिकांश योजनाएँ स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप नहीं थीं। उदाहरणस्वरूप, 1899 के अकाल के बाद पाइपलाइन जल आपूर्ति प्रणाली और बड़े जलाशयों के निर्माण की योजनाएँ प्रस्तावित की गईं, किंतु वे अपेक्षित सफलता नहीं प्राप्त कर सकीं। चोपासनी जलाशय का निर्माण इसी क्रम में हुआ, लेकिन जल रिसाव की समस्याओं के कारण यह एक विश्वसनीय जल स्रोत नहीं बन सका। इसी प्रकार, बैकली बंध और जोवाई नदी परियोजनाएँ भी प्रशासनिक व तकनीकी कठिनाइयों के कारण पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाईं। जल आपूर्ति में असमानता भी एक महत्वपूर्ण समस्या थी, जहाँ शहरी क्षेत्रों को प्राथमिकता दी गई, जबकि ग्रामीण और कृषि प्रधान क्षेत्रों को पर्याप्त जल उपलब्ध नहीं हो पाया।

पर्यावरणीय दृष्टिकोण से भी जोधपुर की सिंचाई व्यवस्था अनेक चुनौतियों का सामना कर रही थी। जल स्रोतों के अत्यधिक दोहन और अपर्याप्त संरक्षण के कारण भूजल स्तर में गिरावट आई। मंडोर क्षेत्र के कुएँ, जो कभी पर्याप्त जल प्रदान करते थे, 85 फीट से अधिक गहरे हो गए, जिससे जल निकासी कठिन हो गई। इसके अलावा, नहर परियोजनाओं के प्रभावी न होने के कारण स्थानीय जल स्रोतों पर बढ़ती निर्भरता ने मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया को तेज कर दिया। मृदा अपरदन और शुष्क परिस्थितियों के कारण कृषि उत्पादन प्रभावित हुआ, जिससे खाद्य संकट और पलायन की स्थिति बनी रही।

कुल मिलाकर, जोधपुर रियासत की सिंचाई व्यवस्था एक संक्रमणकालीन दौर से गुजर रही थी, जहाँ परंपरागत प्रणालियों का महत्व बना रहा, लेकिन आधुनिक तकनीकों को सफलतापूर्वक लागू करने में प्रशासन को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। यदि ब्रिटिश प्रशासन स्थानीय परिस्थितियों और पारंपरिक

ज्ञान को ध्यान में रखते हुए योजनाएँ बनाता, तो जल संसाधन प्रबंधन अधिक प्रभावी हो सकता था। वर्तमान समय में, जोधपुर की ऐतिहासिक जल संरक्षण प्रणालियों से सीख लेकर जल प्रबंधन की नई रणनीतियाँ बनाई जा सकती हैं। सतत कृषि तकनीकों, जल पुनर्भरण उपायों और भूजल संरक्षण नीतियों को अपनाकर जल संकट और मरुस्थलीकरण की समस्याओं को कम किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नोट ऑन इरिगेशन इन द जोधपुर स्टेट, जोधपुर स्टेट, 1905, गवर्नमेंट प्रेस जोधपुर, पृ. 6
2. बालसमंद झील जोधपुर-मंडोर मार्ग पर शहर से पांच किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इसका निर्माण 1159 ईस्वी में परिहार शासक बलक राव परिहार द्वारा किया गया था, जिसका उद्देश्य सूखे से बचाव और जल आपूर्ति सुनिश्चित करना था। यह कृत्रिम झील अब एक प्रमुख पर्यटन स्थल है, जहाँ सुंदर उद्यान और महल स्थित हैं।
3. कायलाना झील जोधपुर से आठ किलोमीटर पश्चिम में स्थित एक कृत्रिम झील है, जिसका निर्माण 1872 में प्रताप सिंह ने किया था। यह झील लगभग 84 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली है और शहर की जल आपूर्ति का महत्वपूर्ण स्रोत है। झील के आसपास बबूल के पेड़ और सर्दियों में प्रवासी पक्षियों का आवागमन इसे प्राकृतिक सौंदर्य प्रदान करता है।
4. चौपासनी क्षेत्र में भी जलाशय स्थित हैं, जो जोधपुर की जलापूर्ति प्रणाली का हिस्सा हैं। इन जलाशयों में कायलाना, तखत सागर और उम्मेद सागर शामिल हैं, जो इंदिरा गांधी नहर से जुड़े हुए हैं और शहर की जल आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। हालांकि, हाल के वर्षों में जल स्तर में कमी और सूखे की स्थिति ने इन जलाशयों की स्थिति पर प्रभाव डाला है, जिससे जल संरक्षण के प्रयासों की आवश्यकता बढ़ गई है।
5. जोधपुर ऐड्मिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट 1992-1993, जोधपुर गवर्नमेंट प्रेस, 1993, पृ 25
6. नोट ऑन इरिगेशन इन द जोधपुर स्टेट, जोधपुर स्टेट, 1905, गवर्नमेंट प्रेस जोधपुर, पृ 30
7. 'संढीया' एक ऐसी विधि है जिसमें चमड़े की थैली का उपयोग करके पानी खींचा जाता है। यह तकनीक विशेष रूप से उन क्षेत्रों में प्रचलित थी जहाँ जल स्तर ऊँचा होता था और कम गहराई से पानी निकालना होता था।
8. 'अरहट', जिसे पर्शियन ढील भी कहा जाता है, एक यांत्रिक उपकरण है जो निरंतर पानी उठाने के लिए उपयोग किया जाता है। इसमें पहियों और बाल्टियों की एक श्रृंखला होती है जो घूर्णन के माध्यम से पानी को कुएँ से सतह तक लाती है। यह प्रणाली विशेष रूप से सिंचाई के लिए उपयोगी थी और इसे बैलों या अन्य पशुओं की सहायता से चलाया जाता था।
9. 'झेलवा' एक विशेष तकनीक है जिसका उपयोग गहरे कुओं से जल निकालने के लिए किया जाता है। इसमें एक बड़ी बाल्टी या पात्र को रस्सियों की सहायता से कुएँ में डाला जाता है और फिर खींचकर पानी निकाला जाता है। यह विधि उन क्षेत्रों में प्रचलित थी जहाँ जल स्तर गहरा होता था और अन्य साधन प्रभावी नहीं होते थे।
10. 1899-1900 में मारवाड़ क्षेत्र एक भीषण अकाल से ग्रस्त हुआ, जिसे 'छप्पनिया अकाल' कहा जाता है। यह अकाल 1899 में मानसून की विफलता के कारण उत्पन्न हुआ, जिससे खरीफ की फसलें पूरी तरह नष्ट हो गईं। इस संकट ने लगभग 14 लाख मवेशियों की जान ले ली, जो कुल मवेशी संख्या का आधा था। राज्य सरकार ने बाहरी स्रोतों से अनाज और चारा मंगाने का प्रयास किया, लेकिन परिवहन सुविधाओं की कमी के कारण यह पर्याप्त नहीं था, जिससे मानव और पशुधन दोनों की व्यापक मृत्यु हुई। अकाल के दौरान, अनाज की कीमतों में अत्यधिक वृद्धि हुईय उदाहरण के लिए, 25 अगस्त 1899 को जोधपुर में गेहूँ की कीमत 6 सेर प्रति रुपये तक पहुँच गई थी। इस अवधि में लूटपाट की घटनाएँ बढ़ गईं, जिससे प्रशासन को महकमों की तिजोरियाँ सुरक्षित स्थानों पर रखनी पड़ीं। अकाल के बाद, हैजा और मलेरिया जैसी बीमारियों ने महामारी का रूप ले लिया, जिससे जनसंख्या में भारी गिरावट आईय 1891 की जनगणना में मारवाड़ की जनसंख्या 25,28,178 थी, जो 1901 में घटकर 19,38,565 रह गई। इस प्रकार, छप्पनिया अकाल ने मारवाड़ की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को अत्यंत दयनीय बना दिया था।
11. जोधपुर ऐड्मिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट 1901, जोधपुर गवर्नमेंट प्रेस।, नोट ऑन इरिगेशन इन द जोधपुर स्टेट, जोधपुर स्टेट, 1905, गवर्नमेंट प्रेस जोधपुर, पृ 28
12. नोट ऑन इरिगेशन इन द जोधपुर स्टेट, जोधपुर स्टेट, 1905, गवर्नमेंट प्रेस जोधपुर, पृ 30
13. वही, पृ. 28
14. बांकली बांध का निर्माण 1904 ईस्वी में राजस्थान

के जालौर जिले में सुकड़ी और कुलथाना नदियों के संगम पर बांके गांव के पास किया गया था। 1956-57 में इसका पुनर्निर्माण हुआ, जिससे जालौर और पाली जिलों में सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध हुई। नोट ऑन इरिगेशन इन द जोधपुर स्टेट, जोधपुर स्टेट, 1905, गवर्नमेंट प्रेस जोधपुर, पृ 35

15. जवाई नदी परियोजना राजस्थान के पाली जिले में स्थित एक महत्वपूर्ण सिंचाई एवं पेयजल आपूर्ति परियोजना है। इस परियोजना के अंतर्गत जवाई नदी पर जवाई बाँध का निर्माण किया गया है, जो लूणी नदी की एक सहायक नदी है। बाँध का निर्माण कार्य 12 मई 1946 को जोधपुर के महाराजा उम्मेद सिंह के संरक्षण में आरंभ हुआ और 1957 में पूरा हुआ। इसकी कुल जल संग्रहण क्षमता 7,887.5 मिलियन क्यूबिक फीट है, जिससे लगभग 102,315 एकड़ (414.05 वर्ग किलोमीटर) कृषि भूमि की सिंचाई होती है बाँध की ऊँचाई लगभग 61.25 फीट (18.67 मीटर) है। यह बाँध पाली और जोधपुर जिलों के लिए मुख्य पेयजल स्रोत है, और पर्याप्त जल उपलब्धता की स्थिति में जालौर जिले के कुछ गाँवों को भी सिंचाई जल प्रदान करता है इसके अतिरिक्त, जवाई बाँध क्षेत्र की जैव विविधता के लिए भी महत्वपूर्ण है, जहाँ सर्दियों में कई प्रवासी पक्षी प्रजातियाँ देखी जाती हैं, और यह बड़ी मगरमच्छ आबादी के लिए भी जाना जाता है। जवाई बाँध के जलाशय और आसपास की आर्द्रभूमि प्रवासी और स्थानीय पक्षियों की कई प्रजातियों के लिए आश्रय

स्थल हैं, जिससे यह पक्षी प्रेमियों के लिए आकर्षण का केंद्र बन गया है। बाँध के किनारे मगरमच्छों की बड़ी आबादी भी पाई जाती है, जो इसकी जैव विविधता को और समृद्ध करती है। इस प्रकार, जवाई नदी परियोजना न केवल सिंचाई और पेयजल आपूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, बल्कि क्षेत्र की पारिस्थितिकी और जैव विविधता के संरक्षण में भी इसका विशेष योगदान है। नोट ऑन इरिगेशन इन द जोधपुर स्टेट, जोधपुर स्टेट, 1905, गवर्नमेंट प्रेस जोधपुर, पृ 43-47

16. नोट ऑन इरिगेशन इन द जोधपुर स्टेट, जोधपुर स्टेट, 1905, गवर्नमेंट प्रेस जोधपुर, पृ 38
17. गोकुल दास, पंडित, Progress Report on the Forest Administration in the Jodhpur State] Rajputana] for the Year 1895&96] जोधपुर: Printed at the "Marwar State" Press] 1896, पृ 40
18. गोकुल दास, पंडित, Progress Report on the Forest Administration in the Jodhpur State] Rajputana] for the Year 1895-96, जोधपुर: Printed at the "Marwar State" Press, 1896, पृ 40
19. जोधपुर ऐड्मिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट 1901, जोधपुर गवर्नमेंट प्रेस।, नोट ऑन इरिगेशन इन द जोधपुर स्टेट, जोधपुर स्टेट, 1905, गवर्नमेंट प्रेस जोधपुर, पृ 28

हिंदी की महिला रचनाकारों की गद्य विधाओं में नारी विमर्श के परिवर्तित आयाम



shodhshree@gmail.com

डॉ. ऋतु भनोट

असिस्टेंट प्रोफेसर, देव समाज कॉलेज फॉर वुमेन, चंडीगढ़

शोध सारांश

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हिंदी साहित्य में एक आंदोलन बड़े जोर-शोर से उभरा जिसे नारी विमर्श का नाम दिया गया। पहली बार स्त्री प्रश्न को केंद्र में रखकर विचार-विमर्श और साहित्यिक बहस की शुरुआत हुई। अभी तक हिंदी साहित्य में पुरुष लेखक ही स्त्री की दशा और दिशा का चित्रण करते आये थे लेकिन पहली बार महिला लेखिकाओं की एक पूरी जमात साहित्यिक परिदृश्य पर प्रकट हुई और उन्होंने छद्म नामों की आड़ लिए बिना साहित्य लेखन में अपनी उपस्थिति दर्ज करवानी शुरू की। कविता, कहानी, उपन्यास ही नहीं, पहली बार हिंदी साहित्य में महिला रचनाकारों ने आत्मकथाएं लिखीं और पूरी बेबाकी से अपने अंतर्मन की पीड़ा को कागज़ पर उकेरा। महिला लेखन के इतिहास में यह दौर स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाएगा। शनैः-शनैः नारी विमर्श के सरोकार बदलते गए और इक्कीसवीं शताब्दी में नारी विमर्श के सरोकार ही नहीं, उसके आयाम भी काफी हद तक बदल गए। इस शोध-पत्र में महिला लेखिकाओं की गद्य विधाओं में नारी विमर्श के इन परिवर्तित आयामों पर विस्तार से चर्चा की जाएगी।

संकेताक्षर : नारी-विमर्श, महिला लेखन, नारी-विमर्श के बदले आयाम, वैश्वीकरण के युग में स्त्री छवि।

वैदिक काल में याज्ञवल्क्य से वाद-विवाद करती गार्गी, थेरीगाथाओं के माध्यम से अपने शोषण व मुक्ति-कामना को कलमबद्ध करती थेरियाँ, मध्यकाल में निषेधों व वर्जनाओं के विरुद्ध आवाज उठाती मीरा, शृंखला की कड़ियों में बंधी नारी की समस्याओं और स्त्री प्रश्न पर विचार करती महादेवी वर्मा तथा बीसवीं शताब्दी में शताधिक महिला रचनाकारों के लेखन में नारी संबंधी विचार-विश्लेषण के रूप में नारी विमर्श सदैव उपस्थित रहा है। नारी विमर्श नारी मन की पीड़ा, आवेग, संवेग, अनुभूति, क्रिया-प्रतिक्रिया तथा नारी के मूक, दमित अन्तः की अभिव्यक्ति है। यह बात और है कि समय के साथ-साथ नारी विमर्श में दर्ज प्रतिरोध के स्वर उग्र होते गए और छद्म नामों के आवरण से बाहर आकर स्त्री ने पूर्ण निर्भीकता से चुनौतियों को अंगीकार किया। महिला लेखन ने परंपरा पोषित स्त्री छवि के बरक्स स्वत्वचेता, आत्मनिर्भर, आत्मविश्वास से परिपूर्ण एक ऐसी स्त्री को सिरजा है जो पुरुष वर्चस्व के दायरे में सेंध लगाकर लगातार अपने पैरों तले की जमीन पर काबिज होने का संघर्ष लड़ रही है। संस्कारों, परम्परा, परिवार की मान-मर्यादा तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्वयं को पुरुष आश्रित पाकर दायम अथवा द्वितीय मान कर स्त्री अपने प्रति अमानुषिकता को चुपचाप सहती आई है। मूक रहकर सहने की सीख जन्मते ही घुट्टी में पिलाए जाने के बावजूद प्रत्येक युग में स्त्री ने अपनी असहमति व विरोध दर्ज किया है। सामाजिक घात-प्रतिघात तथा भीड़ में अकेले छूट जाने की असुरक्षा को निज पर झेलकर भी जो इक्का-दुक्का औरतें प्रतिरोध में उठ खड़ी होती हैं, वे वास्तव में नारी-विमर्श की संवाहक हैं। यही इक्का-दुक्का आवाजें वक्त के साथ-साथ बुलंद होती गईं और इक्कीसवीं सदी तक आते-आते स्त्री विमर्श बहुआयामी संघर्ष में परिवर्तित हो गया। नारी-विमर्श किसी युग विशेष का नहीं अपितु स्त्री-समय का समकालीन है।

पर्दे की घुटन में घुटती नारी आज अपने लिए अधिकारों का मुक्त नीला आकाश खोज रही है। नारी की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति में परिवर्तन आया है। वह अधिकार सम्पन्न तथा चेतना-युक्त हुई है। साहित्य में भी महिला-लेखन के लड़खड़ाते कदम सध कर चलना सीख गए हैं। अतः महिला लेखिकाओं के गद्य साहित्य में

नारी-विमर्श के आयाम भी परिवर्तित हो गए हैं। महिला लेखन ने सवत्वचेता, आत्मसजग तथा स्वाभिमान के तेज से दिपदिपाती ऐसी स्त्री का सृजन किया है जो अपनी पांरपरिक भोग्या छवि को तोड़कर बाहर आ रही है, जो अपने निजत्व की कीमत समझने लगी है, जो पितृसत्ता की सीमा रेखा लांघ कर बाहर आ रही है। नए जमाने की नई स्त्री के हौसले ने पितृसत्ता की नींव खोखली कर दी है, पुरुष का एकाधिकार छिन गया है। स्त्री अब याचक बन कर नहीं, सहभागी बन कर उपस्थित है। यह बदली हुई स्त्री-छवि महिला रचनाकारों ने अपने साहित्य में दर्ज करके नारी-विमर्श के बदले आयामों को अभिव्यक्ति दी है।

एक समय था जब पिता के घर की चारदीवारी से पति के घर की चारदीवारी में स्थानांतरित हुई औरत मृत्यु के पश्चात् ही उस चौहद्दी से मुक्त होती थी। शिक्षा की उपलब्धता तथा कामकाजी स्त्री की समाज में कुछ हद तक स्वीकृत छवि की बदौलत आज स्त्री शनैः-शनैः स्वतंत्र आर्थिक सत्ता की ओर कदम बढ़ा रही है। विवाह को ही कैरियर मानने वाली स्त्री साहित्यिक परिदृश्य से ओझल हो चुकी है। अब तो साहित्य में बहुधा उस स्त्री के दर्शन होते हैं जो कैरियर को ही अपना सर्वस्व मानती है। प्रभा खेतान के उपन्यास 'छिन्नमस्ता' में प्रिया आर्थिक आधार पर आत्मनिर्भर स्त्री के रूप में उभर कर सामने आती है। आर्थिक स्वावलम्बन स्त्री को बल देता है, लड़ने की ताकत देता है और पुरुष की रुग्ण निर्भरता से भी मुक्त कर देता है। प्रिया कहती है, “ज्यों-ज्यों मैं अपने काम में स्थापित होती गई, त्यों-त्यों प्यार की जरूरत, प्यार के माध्यम से स्वयं को किसी भी पुरुष की नज़र में स्थापित करने की चेष्टा और चाहत भी खत्म होती गई। तुम स्वीकारो या न स्वीकारो, यह तुम्हारी मर्जी। तुम इस सच को नहीं नकार सकते कि यह सीमित दुनिया मेरा अन्तिम सच नहीं है कि मेरे स्व का घेरा वृहद् से वृहत्तर की ओर अग्रसर हो रहा है।”¹

चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'आवां' की नायिका नमिता गर्भवती होने पर द्विधाग्रस्त हो जाती है। अभी उसकी पढ़ाई भी पूरी नहीं हो सकी और वह आत्मनिर्भर भी नहीं। ऐसी स्थिति में वह बच्चे को जन्म नहीं देना चाहती। उसका प्रेमी संजय कनोई उसे पढ़ने और कमाने की अपेक्षा मातृत्व पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए कहता है तो वह उसे टोकते हुए कहती है, “मैं आत्मनिर्भर होना चाहती हूँ.....स्वयं अर्जन का नितांत अपना ही आत्म सुख होता है, संजय! तृप्ति

होती है। शक्ति होती है। निःशंक होता है मन छिन जाने के भय से।”²

कुसुम अंसल के कहानी संग्रह 'वह आया था' की कहानी 'तुम्हारे मोहरे' की नायिका रुबी न सिर्फ आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर है अपितु वह महत्वाकांक्षाओं के पंखों पर सवार होकर सबसे आगे निकल जाना चाहती है। वह पुरुषों को पीछे छोड़कर अपनी विशिष्टता को प्रव करना चाहती है। अपने बारे में बात करते हुए वह अपनी महत्वाकांक्षा को इन शब्दों में अभिव्यक्त करती है, “ मैं दिलों पर नहीं, सिर पर पैर रखकर चलना जानती हूँ, क्योंकि मेरी दृष्टि, मेरी आंखें केवल ऊपर की ओर देखती हैं- आसमान मेरी महत्वाकांक्षा है।”³

पुरुष समाज में अपनी निर्णायक तथा नियंता की भूमिका के कारण स्वयं को 'आत्म' के रूप में देखता है और स्त्री को अपने से भिन्न तथा हीन मानते हुए 'अन्या' ठहराता है। स्त्री विमर्श में 'अन्य' की अवधारणा का प्रयोग सर्वप्रथम सिमोन द बोउवार ने किया था। पुरुष अपने बारे में 'आत्म' की स्थिति में सोचता है परन्तु स्त्री की समाज में दोगुनी स्थिति तथा पुरुष संदर्भ में उसे कमजोर तथा परमुखापेक्षी ठहराया जाना, उसे 'अन्या' की श्रेणी में अवस्थित करता है। सिमोन जब स्त्री के सम्बंध में 'अन्य' की अवधारणा की बात करती है तो वह अरस्तु की उस परिभाषा का संदर्भ भी देती है जिसके अनुसार पुरुष से कमतर होना ही स्त्री होना है, इसलिए पुरुष श्रेष्ठ है, सर्वोपरि है, 'आत्म' है और स्त्री मात्र 'अन्या' है। “अरस्तु ने स्त्री की परिभाषा यह कह कर दी कि औरत कुछ गुणवत्ताओं की कमियों के कारण ही औरत बनती है। वह एक प्रासंगिक जीव है। वह आदम की एक अतिरिक्त हड्डी से निर्मित है। अतः मानवता का स्वरूप पुरुष है। औरत वही बन सकती है, जैसा पुरुष उसको आदेश देता है। इसका अर्थ यह है कि वह अनिवार्यतः पुरुष के लिए एक भोग की वस्तु है और इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। वह पुरुष के संदर्भ में ही परिभाषित, विभेदित की जाती है। वह आनुषांगिक है, अनिवार्य के बदले नैमित्तिक है, गौण है। पुरुष 'आत्म' है, विषयी है, वह पूर्ण है, जबकि औरत बस 'अन्या' है।”⁴

स्त्री मनुष्य जाति के इतिहास में मनुष्य के रूप में सदैव अनुपस्थित रही है। वह देवी, दासी, वेश्या अथवा भोग्या तो है परंतु समग्र रूप से मानव इकाई नहीं मानी गई। वह या तो इतनी पूजनीय है कि उसे

देवालय में स्थापित कर दिया जाए अथवा इतनी पतित है कि उसके स्पर्श भर से जीवन कलंकित हो जाए। स्त्री या तो रहस्य कथा है या तो गोपन पहली अथवा बिना धड़ की देह जिसे मनमाने उपभोग के पश्चात् कहीं भी, कभी भी दफन किया जा सकता है। “मनुष्यता के इतिहास में स्त्री की मौजूदगी किसी दंतकथा से कम नहीं है। हम एक स्त्री खोजते हैं और बदले में हमें रानियां, वेश्याएं, सतियां, मांएं, डाकिनियां मिलती हैं। उसका स्त्री होना किसी तरह के पुरातात्विक अवशेष की तरह होना है, जिसे धो-पोंछकर समाज और सत्ताओं के संग्रहालय में या तो किसी रंगारंग विज्ञापन की तरह या फिर संकटग्रस्त जानवर की तरह सजा-संवार दिया जाता है। उसको खोजने-टोलने के लिए हमें जीवन की नहीं परिकथाओं की जरूरत है। हमने उसे आख्यान, तिलिस्म, पहली, लतीफे और अंधविश्वासों के ज़रिये जानने की आदत सी डाल ली है।”⁵

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास ‘चाक’ में लेखिका स्त्री की हीन दशा का चित्रण करते हुए समाज में स्त्री और जानवर की एक समान अवस्था का वर्णन करती हैं। उन्नति के तथाकथित सोपान चढ़ने के बावजूद स्त्री को उसी प्रकार परंपरा व नैतिकता के खूंटों से बांध कर रखा जाता है जैसे जानवरों को खुला छोड़ देने पर हानि का भय रहता है। समाज की इसी मानसिकता के चलते स्त्री आज भी व्यक्ति के रूप में पहचान बनाने हेतु सक्रिय है। कड़वा सच है कि रोज़मर्रा के जीवन में, “जानवरों के बाद अगर किसी को खूंटों से बांधा जाता है तो वे हैं आंगन लीपती, घर सहेजती, खेतों में काम करती औरतें। छोटी कौम से लेकर बड़ी जाति तक की औरतों की एक सी दशा। एक से बंधन। एक से कसाव।”⁶

वस्तु से व्यक्ति तथा व्यक्ति से व्यक्तित्व तक स्त्री की यात्रा स्त्री के हौंसले की उड़ान है। अपने नन्हें-नन्हें पंखों से छोटी-छोटी दूरी तय करती औरत खुले आसमान की छाती पर अपनी महत्वाकांक्षा के चाँद-तारे टांक रही है। कुसुम अंसल के कहानी संग्रह ‘वह आया था’ की कहानी ‘तुम्हारे मोहरे’ की नायिका अपनी इसी महत्वाकांक्षा को यों बयान करती है, “मेरी दृष्टि, मेरी आंखें केवल ऊपर की तरफ देखती हैं..... आसमान मेरी महत्वाकांक्षा है। मुझे तुम्हारी मसीहाई से कुछ लेना-देना नहीं है मेरा बोधिसत्व मैं खुद हूँ।”⁷ अन्या से अनन्या की ओर अग्रसर होती स्त्री अबला अथवा अतिशय संवेदनशील होने की परंपरागत छवि के बरक्स सशक्त व समर्थ नारी को

प्रस्तुत कर रही है। जब तक स्त्री अपने जीवन की निर्णायक स्वयं नहीं होती तब तक वह पुरुष के समकक्ष स्थापित नहीं हो सकती। रोहिणी अग्रवाल के कथा संग्रह ‘आओ मां! हम परी हो जाएं’ की ‘कोलाज’ कहानी में लेखिका इसी सत्य की ओर इंगित करते हुए कहती है, “जज बनें! फैसला करो, तुम्हें क्या चाहिए? जिंदगी की प्राथमिकताएं निर्धारित करो। फिर एक डिवटेटर की तरह वक्त की कैची अपनी मुट्ठी में कर लो। क्षति और क्षतिपूर्ति दोनों तुम्हारी मर्जी से होगी। जिंदगी की दहलीज पर याचक बन कर खड़े रहे तो कुछ भी हासिल न होगा..... न सम्मान, न संतोष। न तृप्ति, न आनंद।”⁸

पुरुष के सब आदेश चुपचाप मान लेने वाली औरत प्रतिरोध दर्ज करना सीख गई है। अपनी देह, विवाह, कैरियर, मातृत्व यहाँ तक कि वह सभी आचार-व्यवहार जो कभी मात्र पुरुषों के लिए आरक्षित थे, उन क्षेत्रों में भी स्त्री ने अपनी उपस्थिति दर्ज की है। चित्रा मुद्गल के उपन्यास ‘आवां’ में विमला बेन सुनंदा की हत्या कर दिए जाने पर उसकी मय्यत को स्त्रियों द्वारा कंधा देने के लिए उद्यत होती है। मय्यत को स्त्री द्वारा कंधा दिया जाना शास्त्र सम्मत नहीं है, इतना सुनते ही वे बिफर कर कहती हैं, “कूपमंडूक पुरुषों से हमें सीखना होगा कि स्त्रियों के लिए क्या शास्त्र सम्मत है, क्या नहीं?... मैं कंधा किसी औरत की मय्यत को नहीं दे रही, उस स्त्री चेतना को दे रही हूँ जिसका गला घोटने की कोशिश हत्या के बहाने हुई है। मैं हर जाति, धर्म, वर्ण की स्त्रियों का आवाहन करती हूँ कि वे सब की सब श्मशान चले और बारी-बारी से सुनंदा की मय्यत को कंधा दें।”⁹ मृदुला गर्ग के उपन्यास ‘कठगुलाब’ की एक नारी पात्र असीमा कहती है कि किसी की दया मत स्वीकारो, अपने पर भरोसा रखो केवल अपने पर मर्दों की दुनिया में रहने के लिए होम साईंस नहीं, कराटे की जरूरत है। वास्तव में यही वाक्य नारी को अन्या से अनन्या बनाने की मंजिल का अंतिम पड़ाव है। नारी को यह बात समझनी होगी कि पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में अपने लिए सम्मानजनक स्थान पाने के लिए उसे किसी के मार्गदर्शन, सहायता अथवा दया की आवश्यकता नहीं है, जरूरत है तो बस स्वयं पर विश्वास रखने की, अपनी सहायता स्वयं करने की। पितृसत्ता में नारी का अस्तित्व वस्तु से अधिक नहीं आँका गया जैसे वस्तु मनुष्य की सुख-सुविधा व उपभोग के लिए होती है, उसी प्रकार नारी को भी मात्र उपभोग की वस्तु मानकर पुरुष ने उसकी भावनाओं व

सुख-दुःख से किनारा कर लिया। सदियों तक स्त्री अपने इस पदार्थीकरण के प्रति निश्चेष्ट रही है। अपने 'स्व' का बोध जगने पर धीरे-धीरे उसने इस वस्तुस्थिति से बाहर आने के लिए चेष्टा की। वह अपनी दैहिकता की कैद से बाहर आने के लिए छटपटा रही है। स्त्री अपनी तमाम महिमा-मंडित छवियों के बावजूद पुरुष के निमित्त उपयोगी व उपभोगी वस्तु से अधिक कुछ नहीं हो सकी। पुरुष को रिझाने हेतु सदियों तक वे गुड़िया की भांति स्वयं को सजाती संवारती रही हैं, शादी के बाजार में उसे नुमायश की वस्तु बनाकर परोसा जाता रहा है। उसकी प्रतिभा, उसके गुणों का एकमात्र लक्ष्य पुरुष को प्रसन्न करना तथा उसकी कृपा-पात्र बने रहना है। लेकिन वक्त के साथ सोच और हालात बदल रहे हैं। पढ़ी-लिखी आत्मनिर्भर स्त्री ही नहीं अपितु घर-परिवार संभालने वाली आर्थिक रूप से परावलम्बी स्त्री भी अब अत्याचार का डट कर मुकाबला करती है। दो वक्त की रोटी के एवज में वह चुपचाप अत्याचार सहन करना अपने स्त्रीत्व का अपमान मानती है। स्त्री के भीतर पनपा यह स्वाभिमान उसके व्यक्ति होने के संघर्ष का साक्षी है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'चाक' की नायिका सारंग अपने पति द्वारा धमकाने पर डरने की अपेक्षा उसे ललकार कर कहती है, "तुम! तुम सोचते हो कुछ भी करोगे और मैं डर के मारे कुछ नहीं कहूँगी? तुमसे डरती ही रहूँगी? तुम दुमुँहा हो गए हो तो मैं तुम्हारा फन कुचल न डालूँगी। यह मत समझना कि दो रोटी के पीछे.....।"¹⁰ ममता कालिया के उपन्यास 'दुःखम-सुखम' में प्रतिभा द्वारा माडलिंग को कैरियर बनाने के विरोध में उसके माता-पिता उसे डरा-धमका कर मनमानी करना चाहते हैं परंतु प्रतिभा बिना डरे अपना प्रतिरोध दर्ज करते हुए कहती है, "पापा आप हमें कठपुतली समझते हैं, जैसे मर्जी घुमा दिया, जैसे मर्जी नचा दिया।"¹¹ प्रभा खेतान के उपन्यास 'छिन्नमस्ता' की नायिका प्रिया स्त्रीत्व के नाम पर अवांछित समझौते करने से इनकार करती है। पत्नीत्व और मातृत्व की अपेक्षा वह अपने व्यक्तित्व पर ध्यान केन्द्रित करना श्रेयस्कर समझती है। वह जब भी लड़खड़ाती है अथवा स्वयं को कमजोर पाती है तो खुद को चेताने के लिए कहती है, 'तुम खुद अपनी व्यवस्था बन सकती हो, अपनी जमीन।' स्त्री ने अब स्वयं को सम्मान देना सीख लिया है। पितृसत्ता की चालाकियों को समझकर उसने अपने पक्ष में खड़े होना, विरोध करना आरंभ कर दिया है। पति द्वारा उसके भाग्य का निर्धारण व संचालन अब उसे स्वीकार्य नहीं है। वह इस

मनुवादी धारणा का सिरे से खंडन करती है कि पिता के घर से उसकी डोली उठती है और पति के घर से अर्थात्। वह अपने निजत्व का प्रश्न उठाते हुए कहती है, "अरे! मैं धान का पौधा नहीं हूँ, जो बाप के आँगन से उखाड़ कर पति के घर में रोप दी जाऊँगी।"¹²

नारी विमर्श के परिवर्तित आयामों में एक नया आयाम वैश्वीकरण ने भी जोड़ा है। वैश्वीकरण अथवा भूमंडलीकरण ने पूरे संसार को विश्वग्राम में परिणत कर दिया है और दुनिया भर के बाशिंदे इस विश्वग्राम के नागरिक हैं। वैश्वीकरण के कारण जहां विश्व भर के देशों की आपसी दूरियां घटी हैं, बाजारवाद तथा उपभोक्तावाद का बोलबाला है, ऐसे में स्पष्टतः नारी की छवि भी समयानुसार परिवर्तित हुई है। घर-परिवार में स्त्री की स्थिति पहले से बेहतर हुई है, शिक्षा तथा नौकरी के क्षेत्र में उसके लिए अवसर बढ़े हैं, विवाह के विषय में कुछ हद तक उसकी इच्छा-अनिच्छा पर विचार किया जाता है और यदि किसी कारणवश वह विवाह को निभाने में सक्षम नहीं हो पाती है तो तलाक लेकर अपना जीवन अपने मनोनुकूल जीने की थोड़ी बहुत स्वतंत्रता है। थोड़े शब्दों में कहना हो तो कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण के दौर में नारी की गुलामी समाप्त हुई है, उसने भी स्वतंत्रता का वर्जित फल चख लिया है। प्रश्न यह उठता है कि इस नई वैश्विक व्यवस्था में स्त्री की भूमिका आखिर क्या है? वह एक ओर विज्ञापनों का केन्द्र बनती जा रही है तो दूसरी ओर उसकी देह को लक्षित कर उसे एक बहुत बड़े उपभोक्ता बाजार में बदला जा रहा है। उपभोक्तावाद का ही प्रभाव है कि नारी के सौंदर्य के प्रतिमान देह तक सीमित कर दिए गए हैं। स्त्री को बाजारीकरण के खतरों से सावधान रहने की आवश्यकता है, स्त्री को पुरुष वर्चस्व से बाहर न आने देने के लिए ही उसकी चेतना को उपभोक्तावाद में पुनः देह पर केन्द्रित किया जा रहा है। "यहाँ दोहरा संकट बन रहा है। एक ओर स्त्री कर्म क्षेत्र और उपभोक्ता क्षेत्र दोनों में मर्द के दायरे (चौके) से बाहर निकल कर अपनी भाषा बना रही है और इस तरह मर्दों की निरकुंश दुनिया को विचलित कर रही है तो दूसरी ओर ऐसा लगता है कि वह स्वयं उपभोक्ता बनती जा रही है.....एक लड़ाई इस उपभोक्तावाद से भी बनती है। यानी एक झगड़ा स्त्री का स्त्री के उत्तर युग से भी होना है।"¹³ अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान जब अमेरिका से ब्यूटी थेरेपी का कोर्स करके आती है और हेल्थ क्लब खोलती है तो स्त्री की स्वयं के प्रति यह दृष्टि उन्हें विचलित करती है। प्रभा खेतान के शब्दों में, "औरत इस हद तक वस्तु हो

जाती है कि अपनी ही देह की एक-एक परत को दूसरों की नजर से तौलती रहती है और नापने-जोखने, तौलने के बाद की अतृप्ति, पूर्णता हासिल नहीं कर पाने की हार और थकान औरत को तोड़ कर रख देती है। मीडिया स्त्री देह की एक खूबसूरत मगर असम्भव सी तस्वीर को औरत के सामने आदर्श रूप में प्रस्तुत करता है। चूँकि वह स्त्री मीडिया द्वारा निर्मित छवि के अनुकूल नहीं बन पाती इसलिए अपनी देह को वह अन्य रूप में लेने लगती है। यह देह मानो उसकी अपनी नहीं, देह मानो उससे स्वतंत्र है और देह की इस स्वतन्त्रता को नियंत्रित करना होगा। इसे कांटना-छांटना होगा।¹⁴

स्त्री स्वतंत्र हुई है, अपने निर्णय स्वयं लेने में सक्षम हुई है लेकिन उपभोक्तावाद और बाजारीकरण की नीतियों ने स्त्री को भुलावे में डाल दिया है। वह कुछ हद तक दिग्भ्रमित हो गई है। “स्त्रियों के लिए आज स्वतंत्रता की कसौटी यह है कि उनके पास कितने सूट, साड़ियाँ, चप्पलें, कॉस्मेटिक सामान और गहने हैं। उन्हें महादेवी वर्मा की यह पंक्ति सुनाई नहीं देती, ‘जाग तुझको दूर जाना !’ इन दिनों उपभोक्तावाद द्वारा बढ़ा दिए गए सतहीकरण के कारण ऐसा बहुत कुछ आँख मूंदकर और बिना सोचे-समझे स्वीकार कर लिया जाता है जिसमें मजा है, मनोरंजन है और तात्कालिक फायदा है पर सच्चाई नहीं है।”¹⁵ स्त्री को स्वतंत्रता और मुक्ति के सही मायने याद रखने होंगे और बाजार की नीतियों का शिकार होने से खुद को बचाना होगा।

इसमें कोई दोराय नहीं है कि इक्कीसवीं सदी अपने साथ तरक्की, तकनीक और सुविधाओं का अम्बार लाई परंतु साथ ही साथ मनुष्य से मनुष्य के बीच बढ़ते अंतराल, अजनबियत और अकेलेपन की बीमारियाँ भी लाई हैं। यह लाईलाज रोग आधुनिक मनुष्य के जीवन की भयावह त्रासदी है, जिसके साथ जीना असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। हिंदी की महिला रचनाकारों ने बदलते वक्त की नब्ज को पहचाना है, उन्होंने अपनी गद्य रचनाओं में परिवर्तन की बयार को ही अभिव्यक्त नहीं किया अपितु इस बयार के अंधड़ में बदल जाने के खतरों को भी चित्रित किया है। महिला रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में स्त्री से जुड़े इन सारे प्रश्नों, मुद्दों और सरोकारों पर लेखनी चलाई है। उन्होंने नारी विमर्श के बदले हुए आयामों को भी कलमबद्ध किया है और स्त्री के संदर्भ में अपनी रचनाओं में वैश्वीकरण के संदर्भों को भी तलाशा है। समय के साथ प्रत्येक विमर्श के सरोकार बदलते हैं और यह बदलाव विकास की

स्वाभाविक प्रक्रिया का ही एक अभिन्न अंग है। समाज में होने वाला बदलाव साहित्य को बदलता है और साहित्य में होने वाले परिवर्तन साहित्य के आंदोलनों और विमर्शों में झलकते हैं, नारी-विमर्श भी बदलाव की इस जरूरी प्रक्रिया से गुजर रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. 183
2. चित्रा मुद्गल, आवां, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, 2014, पृ. 522
3. कुसुम अंसल, वह आया था, (तुम्हारे मोहरे) शिक्षा भारती, दिल्ली, 2004, पृ. 105
4. प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता, अनुवाद-द सेकेण्ड सेक्स, सिमोन द बोउवार, हिन्द पॉकेट बुक्स, दिल्ली, 2004, पृ. 53
5. सुबोध शुक्ल, गूंगे इतिहासों की सरहदों पर, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2016, पृ. 10
6. मैत्रेयी पुष्पा, चाक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 345
7. कुसुम अंसल, वह आया था, (तुम्हारे लिए) शिक्षा भारती, दिल्ली 2004, पृ. 105-108
8. रोहिणी अग्रवाल, आओ मां! हम परी हो जाएं (कोलाज), सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ. 103
9. चित्रा मुद्गल, आवां, सामयिक प्रकाशन, 2014, दिल्ली, पृ. 153-154
10. मैत्रेयी पुष्पा, चाक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 290
11. ममता कालिया, दुःखम-सुखम, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृ. 253
12. मैत्रेयी पुष्पा, पियरी का सपना, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, 2014, पृ. 185
13. राजेन्द्र यादव (सं), हंस, सुधीश पचौरी के लेख से उद्धृत, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, दिसंबर 1994, पृ. 36
14. प्रभा खेतान, अन्या से अनन्या, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 170-171
15. शंभुनाथ, वागर्थ, स्त्री, स्त्रीवाद और स्त्री-सशक्तिकरण, मार्च 2024, (सम्पादकीय), भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता।

प्राचीन भारतीय इतिहास के सिक्कों में हाथी

कविता

शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

सिक्कों, भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण स्तम्भ है। भारतीय संस्कृति में देवी-देवताओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, उसी के साथ वनस्पति एवं पशु-पक्षी को भी पूजनीय माना गया है। भारतीय देवी-देवताओं के वाहन के रूप में पशु-पक्षियों का सीन दिया गया है, जिसमें हाथी का बड़ा महत्व है, जैसे गज लक्ष्मी, इन्द्र का ऐरावत हाथी। वहीं प्रथम आराध्य देव गणपति का मस्तक भी हाथी का दर्शाया गया है। उसी से वर्तमान में हाथी को कुछ लोग अपने जीवन यापन के साधन के रूप में भी उपयोग लेते हैं। हाथी का साक्ष्य हमें पाषाण काल से देखने को मिलता है। सिन्धु घाटी सभ्यता में भी देखने को मिलता है। इसके अलावा हाथी का युद्ध में भी उपयोग होता था। भारत में हाथी के लेन-देन का प्राचीनतम साक्ष्य चन्द्रगुप्त मौर्य के समय का मिलता है। सिक्कों का आरम्भ भारत में छठी शताब्दी ईसा पूर्व से देखने को मिलते हैं। जिनको आहत सिक्कों के नाम से जाना जाता है। सिक्के इतिहास की घटनाओं का वर्णन भी करता है, जिसका कोई दूसरा साक्ष्य नहीं उपलब्ध है। इस शोध आलेख में भारत के प्रारम्भिक सिक्कों से लेकर गुप्त काल तक के सिक्कों में हाथी के साक्ष्य को दर्शाया गया है। जिसमें हाथी को विभिन्न प्रकार से दर्शाया गया है, जिसमें हाथी पर सवार राजा, हाथी द्वारा सिंह को मारते हुए दिखाया गया है।

संकेताक्षर : हाथी, प्राचीन भारत, सिक्के, गुप्त काल, आहत सिक्के।

भारतीय संस्कृति में देवी-देवताओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, उसी के साथ वनस्पति एवं पशु-पक्षी को भी पूजनीय माना गया है। भारतीय देवी-देवताओं के वाहन के रूप में पशु-पक्षियों का सीन दिया गया है, जिसमें हाथी का बड़ा महत्व है, जिसमें हाथी इन्द्र देवता का वाहन बताया गया है, साथ ही अन्य देवताओं के साथ भी हाथी का सम्बन्ध देखने को मिलता है। प्राचीन काल में निर्मित मूर्तियों में गज लक्ष्मी के रूप में लक्ष्मी के साथ हाथी को दर्शाया गया है, वहीं प्रथम आराध्य देव गणपति का मस्तक भी हाथी का दर्शाया गया है।

ऐतिहासिक काल में हाथी का उपयोग युद्ध में भी किया जाने लगा था और हाथी को लेन-देन के रूप में उपयोग किया गया था। भारत में हाथी के लेन-देन का प्राचीनतम साक्ष्य चन्द्रगुप्त मौर्य के समय मिलता है, चन्द्रगुप्त मौर्य व सेल्युकस के बीच जो संधि हुई उसमें सेल्युकस ने अपनी पुत्री हेलेना का विवाह चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ कर दिया, जिसके बदले में चन्द्रगुप्त मौर्य ने सेल्युकस को 500 हाथी उपहार स्वरूप दिये। (शर्मा 2004 : 200) इस काल के बाद में राजाओं के द्वारा धार्मिक कार्यों के लिए भी हाथी का उपयोग किया जाता था। जैसे कि उदाहरण के तौर पर मेवाड़ के महाराणा गणगौर उत्सव पर हाथी पर बैठ कर निकलते थे। इसके अलावा बहुत से राजा के अपने मुख्य हाथी होते थे, जिसका नाम भी होता था, जैसे कि मेवाड़ के महाराणा प्रताप का हाथी रामप्रताप था, जिसका नाम अकबर ने पीरप्रसाद रखा था। (गुप्ता 2015 : 44), जयपुर के महाराजा सवाई मानसिंह के हाथी का नाम मर्दाना था। इसके अलावा हेमू के हाथी का नाम हवाई था।

प्राचीन काल में मंदिर हिन्दु ग्रंथों के अनुसार बनाये गये थे मंदिर निर्माण में चार स्तरों का वर्णन मिलता है। उन स्तरों में से एक गज स्तर भी होता है, जिसका मुख्य कार्य नकारात्मक शक्तियों को मंदिरों में प्रवेश करने से रोकना

है। उदाहरण - उदयपुर में स्थित जगदीश मंदिर (चित्र न. 1)



चित्र 1 जगदीश मंदिर

पाषाण काल

भारत में हाथी का साक्ष्य आदि मनुष्य के समय का है। पाषाण काल को तीन भागों में विभाजित किया जाता है, (1. पुरा पाषाणकाल, 2. मध्य पाषाणकाल 3. नव पाषाणकाल) पुरा पाषाणकाल को भी पुनः तीन भागों में विभाजित किया जाता है (निम्न पुरा पाषाणकाल, मध्य पुरा पाषाणकाल, उच्च पुरा पाषाणकाल)। निम्न पुरापाषाण काल में अरुण सोनाकिया ने मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जिले में स्थित हथनोरा (नर्मदा नदी घाटी) से अशुलियन औजार के साथ मानव कपाल एवं हाथियों की जीवाश्म प्राप्त किया। पशुओं के जीवाश्म सर्वप्रथम नर्मदा घाटी में मिले, इसलिए इन पशुओं के जीवाश्म को नमदिकस कहा जाता है। हाथियों के जीवाश्म को स्टेगोडॉन गनेशा तथा एलीफॉस हिंसुड्रिकस कहा गया। (चोबे : 2021 : 100) इसके अलावा उत्तर प्रदेश की बेलन घाटी जिसका उत्खनन जी. आर. शर्मा ने किया था, यहाँ से निम्न पुरापाषाण काल से नवपाषाणकाल और प्रागऐतिहासिक काल तक का स्तर विन्यास है। निम्न पुरापाषाण काल स्तर की कुल 44 स्थलों की प्राप्ति हुई, इस स्थल से गाय, बैल, भैंस, हाथी आदि पशुओं के जीवाश्म प्राप्त हुए। (प्रजापतः 2021: 69)

ताम्रपाषाण काल

प्रथम शहरीकरण सिन्धु घाटी सभ्यता का कहा जाता है। सिन्धु एवं उसकी सहायक नदियों के उपजाऊ मैदानी भाग में भारत की कांस्य युगीन प्राचीन सभ्यता का उदय हुआ, जिसको सिन्धु घाटी सभ्यता कहा जाता है। इसको हड़प्पा सभ्यता के नाम से भी जाना जाता है



चित्र न. 2 मोहनजोदड़ो - भेड़ा एवं हाथी की संयुक्त मूर्ति

सौजन्य - जयनारायण पाण्डेय पेज न. 389

इसके अवशेष खोजे गये थे। इस सभ्यता के भारत व पाकिस्तान में अनेक पुरास्थल हैं यथा हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, कालीबंगा, कानमेर, लोथल, चहुंदड़ो आदि। सन् 1921 में भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के महानिदेशक जॉन मार्शल के निर्देशन में दयाराम साहनी ने हड़प्पा में उत्खनन करवाया। इसका अन्य महत्वपूर्ण स्थान मोहनजोदड़ो है, जिसका उत्खनन सन् 1922 में भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के महानिदेशक जॉन मार्शल के निर्देशन में आर. डी. बनर्जी ने किया। (पाण्डेय : 2000; 362) कलात्मक दृष्टि से उल्लेखनीय वह मूर्ति है, जो भेड़ा और हाथी की संयुक्त (Composite) मूर्ति है। (चित्र न. 2) चूना पत्थर की वह मूर्ति लगभग 25 सेमी. ऊँची है। शरीर और सींग भेड़ा के और सूँड़ हाथी की है। यह मूर्ति डी के क्षेत्र से प्राप्त हुई थी। इससे यह पता चलता है की उस समय हाथी विद्यमान था (पाण्डेय 2000 : 389)। इसके अलावा मोहनजोदड़ो से हाथीदाँत पर बनी पुरुष आकृति मिली है, जो टोपी एवं लंगोटा पहने हुए है, पीठ पर धनुष है तथा दोनों हाथ कमर पर टिके हैं। यहाँ से हाथी का कपालखण्ड भी प्राप्त हुआ है। (चोबे : 2021 : 134) लोथल से पुरा का पुरा हाथी का दाँत (Trunk) मिला है, इसके अलावा हाथी दाँत की पटरी (Scale) भी मिली है। (चोबे : 2021 : 138)

सिक्कों

प्राचीन भारत में सिक्कों का प्रारम्भ कब हुआ, यह विचाराधीन है। प्रारम्भ में वस्तु विनिमय होता था,

भारत में द्वितीय शहरीकरण के साथ ही (छठी शताब्दी ईसा पूर्व) सिक्कों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। सिक्कों के उद्भव से सम्बन्धित सुझावों के परिप्रेक्ष्य में केनेडी का सुझाव समालोच्य हो जाता है। इनका कहना था कि छठी शताब्दी ईसा पूर्व में पश्चिम से सामुद्रिक व्यापार के खुल जाने के कारण बेबीलोन के प्रभाव विशेष परिणामस्वरूप भारत की प्राचीनतम् मुद्राओं (आहत सिक्कों) का प्रारम्भ हुआ (सिंह 1998 : 16)। सिक्के इतिहास में एक अहम भूमिका निभाते हैं। ए. एस. अल्तेकर ने सैंधव कालीन स्तर को भी अपने विवेचन क्रम में मुद्रा-उत्पत्ति से सम्बन्धित युग के रूप में विशेष महत्त्व दिया है। (सिंह 1998 : 21) इनकी सहायता से बहुत सी ऐतिहासिक घटनाओं के बारे में जानकारी मिलती है। उदाहरण के तौर पर समुद्रगुप्त द्वारा किया गया अश्वमेध यज्ञ की जानकारी केवल उनके सिक्कों से पता चलती है, जबकि उनके द्वारा लिखवाई गई इलाहाबाद प्रशस्ति में इस यज्ञ का कोई वर्णन नहीं मिलता है।

आहत सिक्के



चित्र 3 आहत सिक्का
सौजन्य - भाकर कलेक्सन



चित्र 4 आहत सिक्का
सौजन्य - भाकर कलेक्सन

सम्पूर्ण भारत वर्ष से सर्वेक्षण एवं समुत्खनन शोधों से आहत सिक्के प्रकाश में आए हैं। उन आहत सिक्कों की संख्या सर्वाधिक है। भारत के प्रचीन सिक्कों को आहत सिक्के (पंच मार्क सिक्के) की संज्ञा दी गई है, पंच पद्धति से बने होने के कारण इन सिक्कों को पंच मार्क सिक्के कहा जाता है। ज्यादातर सिक्कों के अग्र भाग पर 5 प्रकार के प्रतीक चिन्ह मिलते हैं, जिनमें सूर्य, चंद्र, षडरचक्र, वृषभ लगभग सभी में हैं। प्राचीन साहित्य में आहत सिक्कों को पण अथवा कार्षापण कहा गया है। मनु ने कार्ष की तौल 80 रत्ती बतलायी है। पुरासाहित्य में "पुराण या धरण" शब्द सन्दर्भ इन्हीं सिक्कों का बोध कराते हैं (सिंह, 1998; 37)। इन सिक्कों की बनावट, आकार-प्रकार, धातु को आधार मानकर पी. एल. गुप्ता ने आहत मुद्राओं को शाही व स्थानीय दो भागों में

बांटा है। इन सिक्कों का प्रचलन महाजनपद काल से हो रहा था। महाजनपद काल द्वितीय नगरीकरण का समय था। इस समय भारत में कुल 16 प्रमुख महाजनपद थे, जो इस प्रकार हैं- 1. काशी 2. कोशल 3. अंग 4. चेदि 5. वत्स 6. कुरु 7. पांचाल 8. मत्स्य 9. सूरसेन 10. अश्मक 11. अवन्ति 12. गांधार 13. कम्बोज 14. वज्जि 15. मल्ल 16. मगध।

ये 16 महाजनपदों में से मगध सबसे शक्तिशाली था। आहत सिक्कों का प्रारम्भ महाजनपद काल से ही माना जाता है इन सभी महाजनपदों के सिक्कों पर अपने अपने चिह्न थे, इन सोलह महाजनपद में से केवल 6 महाजनपद ऐसे हैं, जिनके सिक्कों पर हमें हाथी का चिह्न देखने को मिलता है। ये सिक्के चांदी धातु के हैं, जिनका XRF Analysis उदयपुर में श्री नाकोडा गोल्ड टेस्टिंग लैब द्वारा करवाया गया है, जिसकी रिपोर्ट निम्न प्रकार है। जिसमें चांदी की मात्रा 54 प्रतिशत है, ताँबे की मात्रा 45.01 प्रतिशत है, एवं लेड की मात्रा 0.98 प्रतिशत है। चित्र न. 3 सिक्के का वजन 3.08 ग्राम है, जिसका आकार वर्गाकार है, जिसकी लम्बाई व चौड़ाई 14.3 मिमी. है, जिस पर हाथी, पर्वत, सूर्य आदि बने हुए हैं, एवं जिसके पृष्ठ भाग पर अंग का चिन्ह बना हुआ है।

लेखरहित ढली हुई ताम्र-मुद्राएँ

आहत सिक्कों के साथ एवं बाद में भारत में लेखरहित ढली हुई ताम्र-मुद्राओं का चलन प्रारम्भ हुआ। ढालने की तकनीक में सबसे पहले सांचों का प्रयोग किया

जाता है। ये सांचे सामान्यतः मिट्टी के बनाये जाते हैं। इससे सिक्के के चित व पट चित्र 06 लेखरहित सिक्का भागों के अलग-अलग दो सांचे होते हैं। उन दोनों को एक के ऊपर इस प्रकार रखते हैं, कि आगे-पीछे छाप एक ही सीध में रहे। (गुप्त : 1996 : 85)। ये ज्यादातर गोल आकार के ही होते हैं इस सिक्के के अग्र भाग में हाथी व पश्च भाग में अर्द्धचन्द्र युक्त पर्वत है, इस इसके अलावा दो गोल सिक्के जो आपस में जुड़े हुए हैं



चित्र 05 लेखरहित सिक्का
सौजन्य - अमितेश्वर झा पेज न. 11



चित्र 06 लेखरहित सिक्का
सौजन्य - भाकर कलेक्सन
हिन्दू यवन मुद्राएँ

ईसा पूर्व 326 ई. में सिकन्दर के भारत आगमन के साथ ही भारतीय इतिहास का एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। सिकन्दर की विजय के उपलक्ष्य में चांदी के सिक्के (डिकाड्रेक्स) सेल्युकय द्वारा जारी किया गया, जिसके अग्र भाग में ज्यूस देवता की आकृति बनी हुई है, पृष्ठभाग में हाथी के ऊपर दो मनुष्य सवार हैं, व उनके पीछे एक अश्वारोही भाला लिये हुए है (चित्र न. 2.10) (वाजपेयी : 1997 : 138)। हिन्दुकुश के उत्तर और दक्षिण दोनों क्षेत्रों पर शासन करने वाला अन्तिम

शासक युक्रिदिद (Eucratides) था। लेकिन जिस शासक ने नियमित इन्डो-ग्रीक सिक्कों के पैटर्न को स्थापित किया वो था, अपलदत प्रथम (Apollodotus I)। उसने सिक्कों पर भारतीय भाषा, प्राकृत के लेख के लिए खरोष्ठी लिपि का प्रयोग शुरू किया (झा : 2003 : 16)।



चित्र 07 सिकन्दर का सिक्का
सौजन्य - अमितेश्वर झा पेज न. 12



चित्र 08
सौजन्य - अमितेश्वर झा पेज न. 16

शक पहलव मुद्राएँ

ग्रीक शासन के पतन के पीछे दो शक्तियाँ उत्तरदायी थी- ये थी मध्य एशिया से आयी यूची और शक



चित्र 09 अय द्वितीय का सिक्का
सौजन्य - अमितेश्वर झा पेज न. 19

(Indo Scythians) कबायलियों के आक्रमण। शक वंश के एक शासक अय द्वितीय के ताँबे के सिक्के पर हाथी देखने को मिलता है। इस सिक्के के एक तरफ ग्रीक व दुसरी तरफ खरोष्ठी लिपि लिखी गयी है। (चित्र न. 09) (झा : 2003 : 19)

हस्ति वंश के सिक्के

कर्नूल जिले के कृष्णा नदी के किनारे स्थित वीरपुरम नाम के जगह पर खुदाई में हस्ति वंश के शासकों के सीसे के सिक्कों का पता चला है। इन सिक्कों पर राजा के नाम के पहले महारठिस और बाद में हथिस लिखा होता है। इन पर कई नाम जैसे महाहथि, वसुहथि, शिवमहाहथि, खदपोरि हथि, शिवखद हथि आदि मिले हैं। इन सिक्कों पर एक तरफ बाँयी ओर मुँह किए हाथी, कुछ छोटे चिन्ह और ब्राह्मी में लेख तथा दूसरी तरफ एक दोहरे चौकोर के अन्दर चैत्यों वाला पर्वत और कुछ अन्य चिन्ह होते हैं। यहाँ मिले सातवाहन सिक्के भी बाद के राजा वाशिष्ठीपुत्र पुलवामी के हैं। स्पष्ट होता है, कि इन्हीं के शासन काल में शायद ये प्रदेश सातवाहनों के अंदर आया होगा और इनसे पहले हस्ति शासक यहाँ शासन करते थे। (चित्र न. 10) (झा : 2003 : 57)



चित्र 10 हस्ति वंश का सिक्का
सौजन्य - अमितेश्वर झा पेज न. 57

सातवाहन वंश के सिक्के

मौर्य काल के बाद मौर्योत्तर काल के कुछ प्रमुख राजवंशों में से दक्षिण भारत का सातवाहन वंश प्रमुख है। सातवाहनों के इतिहास को जानने में पुराण, अभिलेख तथा मुद्राएं विशेष उल्लेखनीय हैं। पुराणों में मत्स्य पुराण तथा वायु पुराण विशेष रूप से

अवलोकनीय हैं। मत्स्य पुराण में सातवाहन राजाओं की कुल संख्या 30 दी गई है, जिन्होंने 460 वर्षों तक शासन किया। पुरालिपि शास्त्र, मुद्रातत्त्व तथा उत्खनित प्राचीन वस्तु सभी साक्ष्यों के आधार पर सातवाहन वंश का प्राचीनतम अस्तित्व प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य या उत्तरार्द्ध में निश्चित किया जा सकता है।

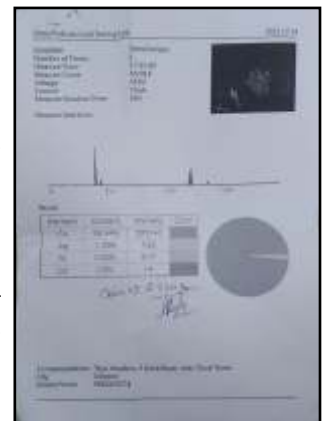


चित्र 11 सातवाहन वंश का सिक्का
सौजन्य - भाकर कलेक्सन



चित्र 12 सातवाहन वंश का सिक्का
सौजन्य - भाकर कलेक्सन

नागनिका के नासिक लेख से शातकर्णि प्रथम की उपलब्धियों का ज्ञान होता है। इसी प्रकार गौतमीपुत्र शातकर्णि के लेख उसके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर सुन्दर प्रकाश डालते हैं। लेखों के साथ-साथ विभिन्न स्थानों से सातवाहन राजाओं के बहुसंख्यक सिक्के भी प्राप्त किये गये हैं। नासिक के जोगलथम्बी नामक स्थान से क्षहरात शासक नहपान के सिक्कों का ढेर मिला है। इसमें अनेक सिक्के गौतमीपुत्र शातकर्णि द्वारा दुबारा अंकित कराये गये हैं। यज्ञ श्री शातकर्णि के एक सिक्के पर जलपोत के चिन्ह उत्कीर्ण है। इससे समुद्र के उपर उनका



अधिकार प्रमाणित होता है। सातवाहन सिक्के मुख्यतः सीसा, तांबा, पोटीन (तांबा, जिंक, सीसा, टिन मिश्रित धातु) में ढलवाये गये हैं। इन पर मुख्यतः वृष, गज, सिंह, अश्व, पर्वत, जहाज, चक्र, स्वस्तिक, कमल, त्रिरत्न, उज्जैन चिन्ह (क्रॉस से जुड़े चाल वाल) आदि का अंकन मिलता है। (श्रीवास्तव; 294; 2007) इन सिक्कों पर ब्राह्मी लिपि में नाम अंकित किये गये हैं। इसके सिक्के के मुख्य दरचम, कार्षापण था। इन के सिक्कों के पश्च भाग में उज्जैन चिन्ह एवं पर्वत हमें देखने को मिलता है जिसमें उज्जैन चिन्ह 12 प्रकार से लिखा गया है। (Dutta : 1990 : 75.85) और सिक्के के अग्र भाग में हाथी की आकृति 2-3 प्रकार की है। जिसमें हाथी की सूंड ऊपर की ओर उठी हुई है। सातवाहन वंश के सिक्के पुसाड से भी प्राप्त हुए हैं पुसाड पुस नदी के किनारे यवतमाल जिले में स्थित है। यहाँ सातवाहन के साथ-साथ सेबाका व मित्ता वंश के सिक्के मिले हैं जिस पर सी. एस. गुप्ता व अशोक सिंह ठाकुर ने अल्प टिप्पणियाँ की हैं। (Somkuwar : 2011: 105.107) इसमें जो सातवाहन के सिक्कों में से एक सिक्के का वर्णन इस प्रकार है। इस सिक्के के अग्र भाग में सूंड ऊपर किये हुए हाथी का चित्र है उसके साथ अन्य चित्र है और बाह्मी लिपि में Rano Sari Sadavaha लिखा है जो 10'o clock से प्रारम्भ होता है और 4'o clock पर खत्म होता है। और पश्च भाग में दो लाईनों वाला उज्जैन चिन्ह अंकित है।

इस सिक्के के अग्र भाग में हाथी का चित्र बना हुआ है एवं ब्राह्मी लिपि में पुलुमावी में लिखा गया है। सिक्के के पश्च भाग में उज्जैन चिन्ह बना हुआ है। यह सिक्का तांबा धातु का है। जिसका वजन 2.5 ग्राम है, एवं जिसका व्यास 3 सेमी. है। जिसका XRF Analysis रिपोर्ट इस प्रकार है।

कुषाण वंश के सिक्के



चित्र 13 हुविष्क राजा की दीनार
सौजन्य - अमितेश्वर झा पेज न. 44

कुषाण वंश तक्षशिला में स्थित था। जिसकी स्थापना कुजुल कडफिसेस ने की थी। कुषाण शासक कनिष्क ने शक संवत् प्रारम्भ किया (Brown : 2009 : 23)। कनिष्क के पश्चात् शासन-संचालन का दायित्व हुविष्क के हाथों में आ गया। कुषाण राजा हुविष्क की मुद्राएँ पर हाथी देखने को मिलता है। इन सिक्कों के पुरोभाग पर राजा का ऊर्ध्वांग अंकन तथा मुद्रालेख 'शाओ नानो शाओ ओवेशकी कुषानो' सामान्यतया प्राप्त होता है, परन्तु पृष्ठतल पर अनेक देवी देवताओं की आकृतियाँ अंकित हैं। (चित्र न. 2.17)

ताम्र-मुद्राएँ - तीन भिन्न-भिन्न प्रकार की आकृतियों के अंकन वाले पुरोभाग के आधार पर कनिंघम ने हुविष्क की ताम्र-मुद्राओं को तीन भागों में वर्गीकृत किया है। 1. पुराभोग पर राजा गजारुढ़ दिखाया गया है। 2. पुरोभाग पर राजा मणि मण्डित सिंहासन पर आसिन दिखाया गया है। 3. सम्राट भारतीय मुद्रा में कुषाण पर पाल्थी मारकर बैठा हुआ दिखाया गया है। (सिंह : 1998 : 194)

गुप्ताकालीन मुद्राएँ

मौर्य वंश के बाद उत्तर भारत का सबसे प्रतापी वंश गुप्त वंश था। इस वंश की स्थापना श्रीगुप्त के द्वारा की गई थी। गुप्त वंश में सर्वप्रथम सिक्के श्रीगुप्त के पौत्र चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा चलवाये गए थे। गुप्त वंश की सबसे महत्वपूर्ण मुद्रा स्वर्ण दिनार थी। (ज्ञानउत रु 2017 रु 67) पूरे भारत वर्ष में सर्वाधिक सोने के सिक्कों को चलाने का श्रेय गुप्त वंश को जाता है। गुप्त वंश में सिक्कों के ढालने लिए सोने, चाँदी, ताँबे, सीसे धातुओं का उपयोग में किया गया था। गुप्त वंश में सोने के सिक्कों को दीनार कहा जाता था, इसी प्रकार चाँदी के सिक्के को रूपक कहा जाता था, इसी प्रकार ताम्र सिक्के को माषक कहा जाता है। (प्रजापत 483 : 2021) गुप्त वंश चन्द्रगुप्त प्रथम ने सर्वप्रथम राजा-रानी प्रकार के सिक्के चलाए और उनका पुत्र समुद्रगुप्त के द्वारा सर्वाधिक प्रकार के सिक्कों को प्रचलन में लाया गया था, जिनका प्रमुख सिक्का अश्वमेघ यज्ञ का है। इसी क्रम में गुप्त वंश में केवल कुमारगुप्त प्रथम (415-455 ईस्वी) ऐसे राजा थे, जिनके सिक्कों पर हाथी का अंकन देखने को मिलता है। इनके दो प्रकार के हाथी के सिक्के हैं, जिनका वर्णन इस प्रकार है-

1. गजारुढ़ भांत (Elephant-rider Type)

इसे अश्वारोही भांत का ही दूसरा रूप कह सकते हैं। इस पर अश्व का स्थान गज ने लिया है; राजा गज को अंकुश द्वारा नियन्त्रित करते दिखाया गया है। हाथी तेजी से बायीं ओर भाग रहा है। राजा के पीछे छत्र लिये कुब्जक बैठा है। इस भांत के सिक्के केवल कुमारगुप्त प्रथम के हैं। (गुप्त : 262 : 1996) इन सिक्कों पर ब्राह्मी लिपी लिखी गई है। (चित्र न. 2.18)



चित्र 14 गजारुढ़ भांत

सौजन्य - <http://coinindia.com/galleries-kumaragupta.html>

2. गजारुढ़ सिंह-निहन्ता भांत (Elephant-rider Lion-slayer Type)



चित्र 15 गजारुढ़ सिंह निहन्ता भांत

सौजन्य - <http://coinindia.com/galleries-kumaragupta.html>

अग्रभाग पर अंकन - सम्राट को उत्तराभिमुख हाथी से सिंह का शिकार करते हुए दर्शाया गया है। सम्राट के पीछे बोना सेवक छत्र लिए हुए बैठा है। सम्राट के दायां हाथ में कटार है। हाथी के सामने सिंह है। हाथी बायें पैर से सिंह को कुचलना चाहता है। सिंह का मुँह आक्रामक दर्शाया गया है, जो हाथी के दाहिने पैर पर काटने का प्रयत्न कर रहा है। सम्राट ने कान में कुण्डल, गले में हार, भुजबन्ध आदि आभूषण धारण कर रखे हैं। मुद्रा पर वर्तकार लेख 'क्षतरिपु कुमारगुप्तो राजत्राता जयति रिपून्' ब्राह्मी लिपी में अंकित है। (उप्पल : 2018 : 90)

पृष्ठभाग पर अंकन - दक्षिणाभिमुख कार्तिकेय के सम्मुख देवी प्रभामण्डलयुक्त त्रिभंग मुद्रा में प्रदर्शित किया है। देवी ने चोली, साड़ी, कर्णफूल, गले में हार, कानों में कुण्डल, हाथों में कड़े आदि विभिन्न वस्त्राभूषण धारण किये हुए हैं। उत्तरी दिशा में मोर को नाचते हुये प्रदर्शित किया है। देवी बायें हाथ मयुर/मोर को दाना चुगा रही हैं, तथा दायें हाथ में दाने हा पात्र प्रतीत होता है। देवी के बायीं ओर लेख 'सिंह निहन्ता महेन्द्र गजः' ब्राह्मी लिपी में अंकित है। सिक्के पर गोलाई में चारों ओर बिन्दुओं की किनारी बनी हुई है। मुद्रा की उत्तरी दिशा में टकसाल का चिह्न अंकित नहीं है। सिक्के की धातु : सोना, भार : 5.46 ग्राम, आकार 1.9'1.9 cm वृताकार (उप्पल : 2018 : 91) है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Brown, C.J. 2009| The Coins of India | Delhi : Bharatiya Kala Prakashan
2. Dutta, Mala 1990| A Study of the Satavahana Coinage| New Delhi : Harman Publishing House
3. Kumar, Sanjeev 2017| Treasures of the Gupta Empire| The Shivlee Trust
4. Somkumar, Rajesh K. 2011 | The Pusad Hoard of Sebaka and other Coins | Numismatica Indica (Ed. By Prof. P. Chenna Reddy)| New Delhi : Research India Press | (Pp 105-107)
5. शर्मा, डॉ. कृष्णगोपाल 2004। प्राचीन भारत का इतिहास । जयपुर : अजमेरा बुक कम्पनी
6. गुप्ता, मोहनलाल 2015। हल्दीघाटी का युद्ध और महाराणा प्रताप । जोधपुर : राजस्थानी ग्रन्थागार
7. पाण्डेय, जयनारायण 2000। पुरातत्त्व विमर्श। इलाहाबाद : प्राचीन विद्या संस्थान
8. प्रजापत, पप्पू सिंह 2021। प्राचीन भारत नवीन सर्वेक्षण पाषाण काल से 1200 ईस्वी तक (द्वितीय संस्करण)। जोधपुर : रॉयल पब्लिकेशन
9. चौबे, सौरभ कुमार 2021। प्राचीन भारत। प्रयागराज : युनिवर्सल बुक्स
10. सिंह, डॉ. आनन्द शंकर 1998। भारत की प्राचीन मुद्राएँ । इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन
11. झा, अमितेश्वर 2003। भारतीय सिक्के एक ऐतिहासिक परिचय । नासिक : प्स्टे
12. गुप्त, डॉ. परमेश्वरीलाल 1996। भारत के पूर्व-कालिक सिक्के। वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन

13. वाजपेयी, डॉ. सन्तोष कुमार 1997। ऐतिहासिक भारतीय सिक्के। दिल्ली : ईस्टर्न बुक लिंकरस
14. खाँ, जफर उल्लाह, प्रिंस कुमार उप्पल 2018। 'राजस्थान पुरातत्त्व एवं संग्रहालय विभाग में संग्रहित गुप्तकालीन मुद्राएँ'। जयपुर : राजस्थान प्रिन्टर्स
15. श्रीवास्तव, के. सी. (2007); प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति; इलाहाबाद; यूनाइटेड बुक डिपो

Websites & Museum & Lab

1. Shree Nakoda Gold Testing Lab. Udaipur
2. The Bhakar Collection dsfIDds
3. <http://coinindia.com/galleries-kumaragupta.html>

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : ‘अंधेर नगरी’ नाटक की प्रासंगिकता

डॉ. स्नेहा कुमारी

अतिथि शिक्षक, आर.टी.सी. कॉलेज, ओरमांझी, रांची (झारखंड)



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

अंधेर नगरी में तत्कालीन समाज की अनेकानेक समस्याओं, विद्रूपताओं, धार्मिक पाखण्ड, सामाजिक जाति-पाँत आदि परिस्थितियों का व्यंग्यपूर्ण चित्रण हुआ है। अविवेकी राजा की स्थूल न्याय बुद्धि तत्कालीन न्याय व्यवस्था पर चुटीला प्रहार करती है। यह व्यवस्था आज भी विद्यमान है, अतएव अंधेर नगरी आज भी पहले की तरह पूर्ण प्रासंगिक रचना कही जाएगी।

संकेताक्षर : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, नाटक, व्यंग, अंधेर नगरी, प्रासंगिकता।

अंधेर नगरी लोककथा पर आधारित प्रहसन है जिसमें भारतेन्दु ने जाति प्रथा, समाज व्यवस्था और सामंतों तथा शासकों की खुशामद पसंदी की तीव्र व्यंग्यपूर्ण आलोचना की है। इसका पूरा नाम है-‘अंधेर नगरी चौपट राजा टके सेर भाजी, टके सेर खाजा।’ यह छह दृश्य की है। बालू शिव नन्दन सहायक ने संकेत दिया है कि बिहार प्रान्त के किसी राजा की असावधानता देखकर उसके सुधार के लिए ही इसकी रचना हुई है। इसका समर्पण काव्यमय है। आरम्भ इन पंक्तियों से होता है।

‘मान्य योग्य नहीं होत कोऊ कोरो पद पाए।’

मान्य योग्य नर ते, जे केवल परहित जाए।।’

इससे भारतेन्दु की विचारधारा और जीवन दर्शन का पता चलता है। शुरु में ही जो श्लोक आया है, उसमें कहा गया है-‘चंदन, आम तथा चम्पा के वन को काटकर करीर वृक्ष की जो रचना करता है, हंस, मोर तथा कोयल को मारकर जो कौए की लीला से प्रेम करता है, हाथी देकर गदहा खरीदता है और कपूर तथा कपास को समान समझता है-‘जहाँ के गुणी लोगों के ऐसे विचार हों, उस देश को नमस्कार है।’ इससे ‘अंधेर नगरी’ की समस्या पर प्रकाश पड़ता है। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में-“‘अंधेर नगरी अंग्रेजी राज्य का ही दूसरा नाम है।’”²

कथा है एक ऐसे गाँव की जहाँ केवल मूर्ख ही बसे थे। वहाँ का राजा हरबोंग था। जिसकी लाठी उसकी भैंस के न्याय के उदाहरण दिये जाते थे। भारतेन्दु ने इन्हीं बातों से परिचालित होकर, नेशनल थियेटर के लिए एक ही दिन में ‘अंधेर नगरी’ जैसी कालजयी प्रहसन लिखा था। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है इसकी प्रासंगिकता बढ़ती जाती है। डॉ. एम. जैन ने अपनी पुस्तक ‘भारतेन्दु हरिश्चंद्र के नाटक’ में ठीक ही लिखा है कि-“‘उनके नाटक न केवल मनोरंजन के लिए थे, बल्कि समाज में जागरूकता लाने का माध्यम भी थे।’”³

नाटक का प्रारम्भ पात्रों एवं परिस्थिति का परिचायक होता है। प्रथम अंक में महंत अपने दो शिष्यों गोबरधनदास और नारायणदास के साथ भजन गाते हुए इस नगरी में प्रवेश करते हैं। महंत अपने चेलों को भिक्षा लाने के लिए आदेश देता है, साथ ही लोभ से दूर रहने की चेतावनी भी। यथा-

‘लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।

लोभ कभी नहीं कीजिए, यामैं नरक निदान।।’⁴

भिक्षाटन करने के बाद गोबरधन दास बाजार में प्रवेश करता है, जहाँ कबाबवाला, घासीराम चनेवाला, नारंगीवाला,

हलवाई, कुँजड़िन, चूरनवाला आदि का दृश्य उपस्थित किया गया है। इस बाजार में सभी वस्तुएँ टुके सेर है। अतः गोबरधनदास साढ़े तीन सेर मिठाई खरीदता है। प्रहसन का विकास पात्रों के संघर्ष और घटनाओं से निर्मित होता है। इस भाग में निरर्थक शब्द समूहों की योजना विकास में बाधा डालती है। अतः कुशल एकांकीकार द्वन्द्व की गति और तीव्रता की निरन्तरता बनाये रखने के लिए उपयुक्त शब्दों के चयन का विशेष ख्याल रखता है। आलोच्य प्रहसन में गोबरधन दास द्वारा नगरी की प्रशंसा करने पर महंत भविष्य की अनिष्टकारी आशंका से विचलित होकर तत्काल अंधेर नगरी छोड़कर चल देने को तैयार हो जाते हैं, उनके अनुसार ऐसे देश में क्षण भर रहना खतरे से खाली नहीं होता।

**“सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास।”
ऐसे देस कुदेस में, कबहुँ न कीजै बास।।”**

महंत एक शिष्य को लेकर चला जाता है किन्तु लोभवश गोबरधनदास गुरु की इच्छा के विपरित ‘अंधेर नगरी’ में रुक जाता है। चौथे दृश्य में राजसभा का चित्रण है। राजा पीनक, पान खाने के स्थान पर सूपनखा आई समझकर चौंक पड़ता है और इस कारण क्रमशः सेवक, तमोली को दण्ड की आज्ञा देता है और मंत्री को रानी के नाम से डराता है। इसके बाद राज दरबार में एक फरियादी है, जिसकी बकरी कल्लू बनिये की दीवार गिरने से मर गई है। इस अन्याय के लिए जिम्मेदार क्रमशः कल्लू बनिया, कारीगर, चूने वाला, कसाई, गड़ेरिया और कोतवाल अपराध का दण्ड दिये जाने के लिए बुलाए जाते हैं और अंत में धूमधाम से सवारी निकालने के कारण कोतवाल को दोषी ठहराया जाता है किन्तु फाँसी का फंदा बड़ा पड़ जाने के कारण किसी मोटे आदमी की खोज की जाती है। अब एकांकी चरमोत्कर्ष की ओर अग्रसर है।

कथा का रहस्य खुलने लगता या फल या लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है। पाँचवें दृश्य में चार सिपाही गोबरधनदास को फाँसी के लिए पकड़ ले जाते हैं क्योंकि बकरी मरने के अपराध में किसी न किसी को सजा जरूर होनी चाहिए, नहीं तो न्याय न होगा। गोबरधनदास इस आकरिमक विपक्ति में करुण क्रंदन करते हुए गुरु का स्मरण करता है।

प्रस्तुत प्रहसन के अंतिम छठे दृश्य में महंत जी आ जाते हैं। उपदेश के बहाने महंत गोबरधन दास को कान में कुछ समझाते हैं। और उसके बाद दोनों परस्पर

फाँसी पर चढ़ने के लिए लड़ने पर उतारु हो जाते हैं। इस विचित्र घटना का रहस्य पूछने पर महंत राजा से कहता है—‘इस समय ऐसी साइत है कि जो मरेगा सीधा बैकुंठ जाएगा। गुरु की इस बात पर कोतवाल और मंत्री आपस में लड़ने लगते हैं। राजा बीच में हस्तक्षेप करते हुए कहता है—

“चुप रहो, सब लोग। राजा के आछत और कौन बैकुंठ जा सकता है। हमको फाँसी चढ़ाओं जल्दी, जल्दी।”⁶ और मूर्ख राजा फाँसी पर स्वयं चढ़कर दर्शकों के मनोरंजन का पात्र बनता है। सम्पूर्ण प्रहसन में हास्यरस प्रधान है।

निष्कर्षतः ‘अंधेर नगरी’ में तत्कालीन समाज की अनेकानेक समस्याओं को उजागर करता है, किन्तु यह आज भी उतना ही महत्वपूर्ण है भले ही अंग्रेजी शासन समाप्त हो गया हो पर अंग्रेजियत अभी वैसी ही है। आज भी भारत का प्रशासन अपने को जन-साधारण से ऊपर समझता है। यही कारण है कि यह नाटक आज भी उतना ही लोकप्रिय है और इसका मंचन होते रहना, इसकी प्रासंगिकता को स्वयं ही रेखांकित करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. रवेतीरमण : भारत दुर्दशा कथ्य और शिल्प, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-1999
2. शर्मा, रामविलास : भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवा संस्करण-2014
3. जैन, एम : भारतेन्दु हरिश्चंद्र के नाटक साहित्य भवन, लखनऊ, संस्करण-2013ई.
4. मित्तल, डॉ. ब्रजकुमार : अंधेर नगरी, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-1997
5. वही, पृ.सं. 31
6. वही, पृ.सं. 46

लोकतांत्रिक नौकरशाही और आम जनता

राजेन्द्र कुमार

अतिथि शिक्षक, राजकीय महाविद्यालय, हिंडोली



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

सन् 1688 ईस्वी में इंग्लैण्ड (ग्रेट-ब्रिटेन) में वहाँ के निरंकुश राजा (शासक) के खिलाफ आम जनता ने रक्तहीन क्रांति करके राजा के निरंकुश और अत्याचारी शासन को समाप्त कर दिया तथा आम जनता द्वारा निर्वाचित सरकार की स्थापना करके आधुनिक लोकतंत्र की नींव रखी। तब से ही दुनियां में सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में आधुनिक लोकतांत्रिक सरकार (आधुनिक लोकतंत्र) की स्थापना हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि आज दुनियां के नाममात्र के कुछ देशों को छोड़कर लगभग सभी देशों में लोकतांत्रिक सरकारें स्थापित हो चुकी हैं; जो जनता की विभिन्न समस्याओं का समाधान, लोक कल्याण, विकास, सुरक्षा इत्यादि के कार्य; 'नौकरशाही' [Bureaucracy] के माध्यम से संपन्न कर रही है। आज के लोकतंत्र में यदि आम जनता की विभिन्न समस्याओं, सुविधाओं तथा जन कल्याणकारी कार्यों की तरफ शासन एवं प्रशासन तंत्र यदि ध्यान नहीं देते हैं तो; जनता लोकतंत्र के सबसे मजबूत हथियार 'मतदान' (वोट) के माध्यम से सरकार को ही बदल देती है और प्रशासन तंत्र अर्थात् 'नौकरशाही' को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से इसका संकेत दे देती है। यद्यपि अब विभिन्न कारणों से भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका सहित दुनियां के अधिकांश देशों में नौकरशाही के प्रभाव में कटोती की जा रही है। साथ ही अब दुनियां के वर्तमान देशों की नौकरशाही जिसे सरकारी (प्रशासनिक) अधिकारी तंत्र भी कहते हैं कि कार्यप्रणाली में लगातार नवाचार आ रहे हैं तथा जनता द्वारा निर्वाचित जन प्रतिनिधि (राजनीतिक कार्यपालिका) भी नौकरशाही को आम जनता के साथ अच्छा व्यवहार करते हुए उसकी (जनता की) विभिन्न समस्याओं को तुरन्त प्रभाव से दूर करने का आदेश देती रहती है। आज 21वीं शताब्दी की लोकतांत्रिक नौकरशाही द्वारा आम जनता की विभिन्न सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए तथा उसकी विभिन्न समस्याओं को दूर करने के लिए अत्याधुनिक तकनीकी युक्त संसाधनों तथा अत्याधुनिक तकनीकों जैसे - फोन/ मोबाइल फोन, कंप्यूटर, लैपटॉप, इंटरनेट, विभागीय वेबसाइट, टोल फ्री (Helpline) नम्बर, ट्विटर [एक्स-X] वाट्सअप, फ़ैक्स, ई-मेल, फेसबुक, इंस्टाग्राम, सूचना का अधिकार [R.T.I.], जन सुनवाई (जन शिकायत निवारण) कैंप, इत्यादि की सुविधाएं समाज के सभी वर्गों को दी जा रही है। जिनके माध्यम से आज के लोकतांत्रिक युग में आम जनता इन अत्याधुनिक संसाधनों, अत्याधुनिक तकनीकों एवं सुविधाओं का सदुपयोग करके; विभिन्न सरकारी योजनाओं का लाभ तथा सुविधाएं प्राप्त कर रही है तथा अपनी विभिन्न समस्याओं का उचित समाधान प्राप्त करके स्वयं का जीवन स्तर भी ऊँचा कर रही है।

संकेताक्षर : नौकरशाही का उद्गम, राजनीतिक कार्यपालिका, लोकतांत्रिक, जनकल्याण, कार्यप्रणाली, संपर्क और व्यवहार।

यूरोपीय महाद्वीप के देश इंग्लैण्ड से रक्तहीन क्रांति के परिणामस्वरूप प्रारम्भ होने वाले आधुनिक लोकतंत्र ने धीरे-धीरे दुनियां के अधिकांश देशों में भी अपनी जड़ें जमा ली हैं और इन देशों की राजनीतिक तथा प्रशासनिक व्यवस्था में भी लोकतांत्रिक स्वरूप की छवि देखने को मिल रही है। दुनियां के लोकतांत्रिक देशों में मौजूद वहाँ की 'लोक सेवा' को ही 'नौकरशाही' [Bureaucracy] अर्थात् 'अधिकारी तंत्र' कहते हैं। इस 'नौकरशाही' में कार्यरत कार्मिकों का चयन यद्यपि भर्ती विज्ञापन तथा निर्धारित योग्यता एवं प्रतियोगी परीक्षाओं के आधार पर निष्पक्ष रूप से बिना किसी भेदभाव के किया जाता है।

जो कि स्थायी प्रकृति की होती है तथा अपने कामकाज में प्रशिक्षित एवं कार्य अनुभव से कुशलता प्राप्त कर लेती है।

वस्तुतः 'नौकरशाही' शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द 'ब्यूरोक्रेसी' [Bureaucracy] का हिन्दी रूपान्तरण है।

वैसे 'नौकरशाही' शब्द का प्रयोग दुनियां में सर्वप्रथम 'फ्रांस' देश के निवासी 'जे.सी.एम. विन्सेण्ट डी गॉर्ने' [J.C.M. Vincent De Gourny] ने फ्रांस में सन् 1746 ईस्वी में किया था।

'ब्यूरोक्रेसी' [Bureaucracy] शब्द फ्रेंच व ग्रीक भाषा के दो शब्दों से मिलकर बना है जिसमें फ्रेंच भाषा के 'Bureau' का अर्थ 'डेस्क या ऑफिस' ग्रीक भाषा के 'Kratas' का अर्थ 'शासन या राजनीतिक शक्ति' होता है। दोनों शब्दों को मिलाकर अर्थ देखने पर 'डेस्क सरकार' या 'ऑफिस का शासन' निकलता है। अतः वह शासन जिसे कार्यालय में कार्य करने वाले (कार्मिक) चलाते हैं, वह नौकरशाही कहलाता है।'

लेकिन; आधुनिक संदर्भ में नौकरशाही का सर्वप्रथम व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन तथा इसके बारे में अपने विचार व्यक्त करने में जर्मनी के अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री मैक्स वेबर (1864-1920) का नाम सबसे पहले आता है। मैक्स वेबर ने इस बात पर बल दिया कि; किसी भी संगठन के उद्देश्यों या लक्ष्यों की उचित प्रगति के लिए 'नौकरशाही' का होना अनिवार्य है। मैक्स वेबर ने ऐसी 'नौकरशाही' को 'आदर्श' [Ideal] बताया है।

वर्तमान विश्व के अधिकांश देशों में वहाँ की शासन व्यवस्था का संचालन लोकतांत्रिक तरीके अर्थात् जनता द्वारा निर्वाचित सरकारों द्वारा किया जा रहा है। विश्व के अधिकांश देशों में जनता द्वारा निर्वाचित लोकतांत्रिक सरकारों ने मानव जीवन के अधिकतम कल्याण, विकास तथा सुरक्षा का कार्य करने का निश्चय किया है। लेकिन लोक कल्याण, विकास तथा सुरक्षा का यह आदर्श कार्य जनता द्वारा निर्वाचित जनप्रतिनिधियों द्वारा अकेले नहीं किया जा सकता। इसके लिए जनता द्वारा निर्वाचित जनप्रतिनिधियों (लोकतांत्रिक सरकारों) को वहाँ मौजूद 'लोक सेवा' जिसे 'नौकरशाही' तथा 'अधिकारी तंत्र' भी कहा जाता है का; सहयोग तथा परामर्श लेना ही पड़ता है।

लोकतांत्रिक शासन प्रणाली से पूर्व भारत सहित दुनियां के विभिन्न देशों में जहां प्रशासन तंत्र अर्थात्

नौकरशाही से आम जनता विभिन्न जनकल्याणकारी, विकासात्मक, जन सुरक्षा इत्यादि कार्यों की आस करना तो दूर; केवल यह सोचती थी कि; उस समय का शासन एवं प्रशासन तंत्र; आम जनता पर किसी प्रकार का कोई भी अत्याचार नहीं करे तथा प्राकृतिक आपदा (अकाल, बाढ़, सूखा, महामारी) इत्यादि के समय तो 'लगान' इत्यादि विभिन्न प्रकार के कर वसूल नहीं करें।

वस्तुतः सरकारी कार्मिकों की असैनिक सेवा जो कि स्थाई संगठन है; उसे ही लोक सेवा कहा जाता है। लेकिन जब इस स्थाई लोक सेवा की कार्यप्रणाली में कुछ दोष तथा बुराइयाँ जैसे-: भ्रष्टाचार, कार्यों में अनावश्यक देरी (लालफीताशाही) कार्यों एवं प्रक्रियाओं में जटिलता, पक्षपात, भाई-भतीजावाद, संवेदनशीलता का अभाव, अमानवीय दृष्टिकोण, अनैतिक आचरण इत्यादि बुराइयाँ आ जाती है तो; फिर उसे 'नौकरशाही' [Bureaucracy] कहा जाने लगता है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। दुनियां के लगभग सभी देशों में समयानुसार परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की जाती रहती है। अतः उस देश की नौकरशाही; वहाँ की राजनीतिक कार्यपालिका की सहमति से समाज में विभिन्न प्रकार के विकासात्मक एवं सकारात्मक परिवर्तन लाने का कार्य करती रहती है।

वस्तुतः आज की 'नौकरशाही' को विभिन्न नामों से भी जाना जाता है। जैसे:- स्थाई लोक सेवा, अधिकारी तंत्र, सरकारी उच्च कार्मिक वर्ग इत्यादि।

इस 'ब्यूरोक्रेसी' अर्थात् 'नौकरशाही' का अनेक अर्थों में प्रयोग किया जाता है। विस्तृत अर्थ में इसका प्रयोग सरकारी सेवा में कार्यरत सभी कार्मिकों - जिनमें किसी भी सरकारी विभाग में कार्यरत 'सर्वोच्च पदाधिकारी' से लेकर 'सहायक (चतुर्थ श्रेणी) कर्मचारी' वर्ग के समूह से लिया जाता है। वहीं; इसके विपरीत 'नौकरशाही' अर्थात् अधिकारी तंत्र का एक सीमित अर्थ में भी प्रयोग किया जाता है। जिसमें किसी भी सरकारी विभाग में कार्यरत 'उच्च अधिकारी' वर्ग से होता है। लेकिन वास्तव में यदि आधुनिक लोकतंत्र के संदर्भ में देखा जाए तो इसका अर्थ 'स्थायी नागरिक (असैनिक) सेवा' के अधिकारियों एवं कर्मचारियों से लिया जाता है।

भारत में आधुनिक कार्मिक व्यवस्था (नौकरशाही) की स्थापना ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत की आजादी से पूर्व

ही कर दी गई थी। जिसमें भारत की आजादी 15 अगस्त, 1947 से लेकर वर्ष 2024 तक अनेक प्रकार के परिवर्तन तथा नवाचार देखने को मिलते हैं। जो कि वर्तमान वर्ष 2025 में भी देखने को मिल रहे हैं।

लेकिन, चूंकि; वर्तमान विश्व के अधिकांश देशों में लोकतांत्रिक सरकारें विद्यमान हैं। ऐसी स्थिति में वहाँ की 'लोक सेवा' अर्थात् 'नौकरशाही' पर भी लोकतांत्रिक शासन प्रणाली का प्रभाव; प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों ही दृष्टि से देखने को मिलता है। लोकतांत्रिक नौकरशाही में मौजूद कार्मिक वर्ग का चयन यद्यपि भर्ती विज्ञापन एवं योग्यता प्रणाली के आधार पर निष्पक्ष रूप से किया जाता है तथा इससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह लोकतंत्र एवं संविधान का सम्मान करते हुए तथा नियमों एवं नैतिकता की मान-मर्यादा में रहकर निष्पक्ष रूप से जनता की सेवा, कल्याण तथा सुरक्षा के महत्वपूर्ण दायित्वों का निर्वाह करती रहे।

'नौकरशाही' के स्वंय के कुछ महत्वपूर्ण लक्षण अर्थात् विशेषताएँ होती हैं; जो उसके चरित्र का निर्धारण करती हैं। यद्यपि विभिन्न विचारकों ने नौकरशाही की भिन्न-भिन्न विशेषताएँ बताई हैं। जिनमें मैक्स वेबर द्वारा बताई गई विशेषताएँ यद्यपि ज्यादा महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

वहीं; अलग-अलग विद्वानों ने नौकरशाही के महत्व, भूमिका तथा स्थिति के बारे में भी अलग-अलग विचार व्यक्त किए हैं।

जनसंख्या की दृष्टि से दुनियां के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश भारत में तो नौकरशाही की कार्यप्रणाली पर स्पष्ट रूप से संविधान तथा लोकतांत्रिक व्यवस्था का प्रभाव देखने को मिलता है। चूंकि भारतवर्ष में केन्द्र सरकार, विभिन्न राज्यों की सरकारें तथा दिल्ली, पाण्डिचेरी (पुडुचेरी), जम्मू-कश्मीर जैसे केन्द्र शासित प्रदेशों; जिन्हें अर्द्ध राज्य का दर्जा प्राप्त है कि सरकारें; लोकतांत्रिक प्रणाली से निर्वाचित होकर आती हैं। अर्थात् जनता अपने 'मताधिकार' (वोट) के माध्यम से अपनी पसंद की सरकार चुनती है और इस लोकतांत्रिक तरीके से चुनी हुई सरकार से आम जनता यह अपेक्षा करती है कि वह नौकरशाही को निरंकुश होने से रोके तथा उसे जनता के कल्याण, विकास तथा सुरक्षा के लिए अधिक से अधिक कार्य करने के लिए यथा समय दिशा-निर्देश

देती रहे। साथ ही इन लोकतांत्रिक सरकारों से जनता यह भी अपेक्षा करती है कि वह इस लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में मौजूद नौकरशाही के माध्यम से केन्द्र सरकार, विभिन्न राज्यों की सरकारें तथा उपरोक्त तीनों केन्द्र शासित प्रदेशों की सरकारों की जनकल्याणकारी योजनाओं, नीतियों, कार्यक्रमों इत्यादि को जन-जन तक पहुंचाकर उसे लाभान्वित करती रहे।

भारत जैसे लोकतांत्रिक शासन प्रणाली वाले देश में राजनीतिक कार्यपालिका का नौकरशाही के साथ प्रायः सौहार्द्रपूर्ण संबंध पाया जाता है। यद्यपि कभी-कभार मीडिया के माध्यम से राजनीतिक कार्यपालिका तथा कुछ नौकरशाहों में किसी सरकारी कामकाज को लेकर प्रशासनिक टकराव (मंत्री-लोक सेवक विवाद) देखने, सुनने तथा पढ़ने को भी मिलते हैं। लेकिन, चूंकि; नियमानुसार नौकरशाही को राजनीतिक कार्यपालिका के यथोचित आदेशों एवं निर्देशों का पालन करना अनिवार्य होता ही है।

लोकतांत्रिक शासन प्रणाली वाले दुनियां के देशों में चूंकि; विभिन्न राजनीतिक दलों के उम्मीदवार तथा निर्दलीय उम्मीदवार चुनावों के दौरान आम जनता से अनेक प्रकार के वादे एवं लोक कल्याणकारी घोषणाएँ करके आते हैं और चुनाव जीतने के पश्चात् वे आम जनता से किए गए उन चुनावी वादों तथा घोषणाओं को पूरा करने के लिए नौकरशाही को आवश्यक दिशा-निर्देश देते रहते हैं।

आज के अत्याधुनिक टेक्नोलॉजी [Artificial Intelligence = A.I., Robot, 3D] के युग में भारत सहित दुनियां के लगभग तमाम देशों की नौकरशाही के दायित्वों और भूमिका में लगातार नवाचार एवं वृद्धि हो रही है। वहीं; दूसरी तरफ अनेक देशों में इसके (नौकरशाही के) बढ़ते प्रभाव और इसकी संख्या में कटौती भी की जा रही है।

वहीं; भारत सहित दुनियां के लगभग सभी देशों की नौकरशाही अपने बढ़ते हुए कामकाज, बढ़ते दायित्वों, जनता से अधिक जुड़ाव इत्यादि को देखते हुए अब अत्याधुनिक टेक्नोलॉजी का सहारा ले रही है। अब नौकरशाही अपने कामकाज में फोन/मोबाइल फोन, कंप्यूटर, लैपटॉप, इंटरनेट, वायरलैस फोन (सैटेलाइट फोन), वाट्सअप, सीसीटीवी कैमरे, फेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर [एक्स-X] विभागीय वेबसाइट, टेल फ्री नम्बर/हैल्प लाइन नम्बर, ई-मेल, टेलीविजन,

रेडियो, समाचार-पत्रों, जन शिकायत निवारण कैंपों, (जन सुनवाई केन्द्रों), ई-मित्र (लोक-मित्र) केन्द्रों इत्यादि का सहारा ले रही है, ताकि वह जनता के अधिक निकट तथा निरंतर संपर्क में रह कर जनता की विभिन्न समस्याओं को तीव्र गति से दूर कर सके।

वहीं; दूसरी तरफ अब दुनियां के अनेक देशों में नौकरशाही में मौजूद कुछ लोगों के भ्रष्टाचार एवं अनैतिक कार्यों में लिप्त रहने, नौकरशाही के कामकाज में पारदर्शिता का अभाव, नौकरशाही का लोकशाही (राजनीतिक कार्यपालिका) पर हावी होने का प्रयास, नौकरशाही द्वारा लोकशाही को गुमराह करने की कोशिश, नौकरशाही द्वारा आम जनता की समस्याओं से लोकशाही को यथासमय अवगत नहीं कराना इत्यादि कारणों से अब नौकरशाही के प्रभाव को कम करने तथा नौकरशाही के विभिन्न पदों में कटौती करने के लिए अनेक उपाय अपनाए जा रहे हैं।

‘संयुक्त राज्य अमेरिका’ [U.S.A.] जैसे ‘सुपर पावर’ वाले लोकतांत्रिक देश में राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के दूसरे कार्यकाल (वर्ष 2025) की शुरुआत में ही ‘डिपार्टमेंट ऑफ गवर्नमेंट एफिशिएंसी’ (डीओजीई अर्थात् डोजे) के प्रमुख तथा दिग्गज अमेरिकन कंपनी ‘टेस्ला’ के फाउण्डर ‘एलन मस्क’ [Elon Musk] ने दिनांक 11 फरवरी, 2025 को ‘व्हाइट हाउस’ में प्रेस कॉन्फ्रेंस के दौरान राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप की मौजूदगी में सरकार पर हावी नौकरशाही पर आरोप लगाते हुए कहा कि, “लोकतांत्रिक तरीके से चुनी हुई सरकार के स्थान पर वास्तव में ब्यूरोक्रेसी ही सरकार चला रही है।”²

यह इस बात का संकेत है कि अब संयुक्त राज्य अमेरिका जैसा दुनियां का शक्तिशाली राष्ट्र ब्यूरोक्रेसी से मुक्ति की ओर बढ़ चला है।

‘संयुक्त राज्य अमेरिका’ में ‘डीओजीई’ के प्रमुख ‘एलन मस्क’ के अनुसार, “लोकतंत्र पर नौकरशाही हावी है जो निर्वाचित नहीं हैं। इस नौकरशाही के पास कई मायनों में वर्तमान में किसी भी निर्वाचित प्रतिनिधि की तुलना में अधिक शक्ति है। यह ऐसी चीज नहीं है, जो लोग चाहते हैं। हम इसमें भारी कटौती करेंगे।”³

दुनियां में ‘सुपर पावर’ के नाम से मशहूर ‘संयुक्त राज्य अमेरिका’ भी वर्तमान दौर में भ्रष्टाचार, लोकतंत्र पर हावी नौकरशाही, घाटे का बजट, सरकारी कामकाज में ट्रांसपेरेंसी की कमी जैसी समस्याओं से जूझ रहा है।

अमेरिका में सत्ता के एक और केन्द्र के रूप में उभर रहे ‘एलन मस्क’ ने राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप की मौजूदगी में ‘ओवल ऑफिस’ में प्रेस कॉन्फ्रेंस में यह खुलासा किया।

‘एलन मस्क’ ने दावा किया कि, “अमरीका की नौकरशाही में ऐसे बहुत से लोग हैं, जिनका वेतन तो कुछ सौ हजार डालर है, लेकिन वह किसी तरह से उस पद पर रहते हुए करोड़ों रुपए की संपत्ति अर्जित करने में कामयाब हो जाते हैं। मस्क ने यह भी दावा किया कि इस एजेंसी में किए गए भुगतानों का कोई विवरण ही उपलब्ध नहीं हैं। भुगतान पाने वालों में ‘डू नाट पे’ सूची में शामिल आतंकी प्रतिबंधित संगठन भी है।”⁴ ट्रंप भी मस्क के दावों का समर्थन करते रहे।

संयुक्त राज्य अमेरिका में भ्रष्टाचार के निम्नलिखित तीन उदाहरण हैं—

(अ) 150 साल (आयु) के लोग देश में नहीं हैं, पर उठा रहे सोशल सिक्वोरिटी का पैसा।

(ब) 3 महीने की ठेके की नौकरी पर आए लोग 20 साल तक लेते रहे भुगतान।

(स) अवैध प्रवासियों को रखने के लिए दोगुने दामों पर होटल को 59 मिलियन डॉलर का भुगतान।

‘संयुक्त राज्य अमेरिका’ में ‘डीओजीई’ के प्रमुख ‘एलन मस्क’ के अनुसार, “अमेरिका की ‘अन्तरराष्ट्रीय विकास एजेंसी’ (यूएसएआईडी) मदद के बहाने से दुनियां भर के देशों के लोकतंत्र में दखल दे रही थी।”⁵

वहीं; ‘संयुक्त राज्य अमेरिका’ के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने अपने दूसरे कार्यकाल की शुरुआत में ही भारतीय मूल के ‘कश्यप काश पटेल’ को अमेरिका की प्रमुख जांच एजेंसी ‘संघीय जांच ब्यूरो’ [Federal Bureau of Investigation = F.B.I.] का प्रमुख नियुक्त किया है। अमेरिका की यह F.B.I. एजेंसी 55 फील्ड अफसरों तथा 37 हजार कर्मचारियों वाली दुनियां की प्रमुख जांच एजेंसी है।

यद्यपि; भारतवर्ष में भी लोकतांत्रिक सरकार पर ब्यूरोक्रेसी के हावी होने के आरोप यदा-कदा लगते रहते हैं। लेकिन फिर भी भारतवर्ष में लोकतांत्रिक सरकार द्वारा प्रायः नौकरशाही को कमजोर या इसके पदों में कटौती नहीं की जाती है। बल्कि इसे जनता के प्रति अधिक संवेदनशील तथा अधिक जवाबदेह बनाया जाता रहा है। भारत में तो वर्तमान में ‘केन्द्र सरकार’

(केन्द्रीय मंत्रिपरिषद्) में विदेश मंत्री (माननीय एस. जयशंकर), रेलवे, इलेक्ट्रॉनिक्स, सूचना और प्रौद्योगिकी मंत्री (माननीय अश्विनी वैष्णव), पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस मंत्री (माननीय हरदीप सिंह पुरी) इत्यादि पूर्व में उच्च लोक सेवक (नौकरशाह) रह चुके हैं। जो कि वर्तमान में महत्वपूर्ण मंत्रालयों की जिम्मेदारी बखूबी से संभाल रहे हैं।

‘यूरोपीय यूनियन’ की अध्यक्ष ‘उर्सुला वॉन डेर लेयेन’ के अनुसार, यूरोप और भारत समान इस साझा विश्वास से बंधे हैं कि लोकतंत्र लोगों की सबसे बड़ी सेवा करता है। हम एक साझा तकनीकी एजेंडें, मजबूत सुरक्षा के साथ – साथ व्यापार, आर्थिक सुरक्षा और लचीली आपूर्ति श्रृंखलाओं में सहयोग को आगे बढ़ाते हुए अपनी स्ट्रेटजिक पार्टनरशिप मजबूत करेंगे।”⁶

“28 राज्यों वाला भारत कैसे एक संघीय सरकार के साथ सफलतापूर्वक आर्थिक प्रगति के पथ पर आगे बढ़ रहा है, इसको देखने के लिए यूरोपीय यूनियन के सभी 27 कमिश्नर और यूनियन की अध्यक्ष उर्सुला वॉन डेर लेयेन आगामी 27 फरवरी दिल्ली पहुंच रही हैं। इस दो दिवसीय यात्रा के दौरान यह आयोग प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी से भेंट करने के साथ भारत की आर्थिक प्रगति के विभिन्न पक्षों को समझने और उनसे सीखने की कोशिश करेगा।

भारत से यहां सीखेगा यूरोप

- कई भाषाओं और धर्म वाले लोग कैसे एक देश और एक सेना के साथ बढ़ रहे आगे।
- कैसे विविधता से भरे देश में लागू की गई जीएसटी जैसी एक प्रणाली।
- पूरे देश में आधार के जरिए कायम की गई एक देश एक पहचान प्रणाली।
- यूपीआई के जरिए पूरे देश में एक भुगतान प्रणाली।”⁷

विगत 27 फरवरी, 2025 को ‘यूरोपीय यूनियन’ के लगभग सभी कमिश्नर और यूनियन की अध्यक्ष ‘उर्सुला वॉन डेर लेयेन’ भारत (नई दिल्ली) आए थे। इस 27 एवं 28 फरवरी, 2025 की दो दिवसीय यात्रा के दौरान उन्होंने भारत की अर्थिक प्रगति को समझने, सीखने और भारत के साथ ‘मुक्त व्यापार समझौते’ की संभावनाओं की कोशिश के अलावा भारत की उपरोक्त विशेषताओं तथा उपलब्धियों को भी जानने का प्रयास किया है।

चूँकि; ‘संयुक्त राज्य अमेरिका’ तथा ‘यूरोपीयन यूनियन’ के लगभग सभी देश अमीर, विकसित तथा प्राकृतिक संसाधनों से भरे हुए लोकतांत्रिक देश हैं। साथ ही वहाँ की भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, प्रशासनिक, समाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक इत्यादि परिस्थितियाँ भारत जैसे विविधताओं से भरे विशाल जनसंख्या वाले लोकतांत्रिक देश से भिन्न हैं।

भारत जैसे भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक, आर्थिक, भाषा इत्यादि की विविधता में एकता वाले लोकतांत्रिक देश में जहाँ बढ़ती जनसंख्या, संसाधनों का अभाव, बढ़ती हुई शिक्षित तथा अशिक्षित बेरोजगारी, सामाजिक-आर्थिक असमानताएँ, विभिन्न समुदायों की अलग-अलग संस्कृति इत्यादि परिस्थितियों में नौकरशाही को बहुत अधिक जिम्मेदारी तथा पर्याप्त सावधानीपूर्वक अपने दायित्वों का निर्वहन करना होता है।

हालांकि; अब भारत जैसे विकासशील एवं बहुदलीय राजनीतिक दल प्रणाली वाले लोकतांत्रिक राष्ट्र में नौकरशाही के प्रभाव को कम करने, भ्रष्टाचार पर और अधिक अंकुश लगाने तथा आम जनता तक विभिन्न सरकारी योजनाओं का लाभ शीघ्रता से पहुँचाने और आम जनता से जुड़े हुए विभिन्न कल्याणकारी नियमों एवं कानूनों को सरल बनाने का कार्य तीव्र गति से किया जा रहा है।

भारतीय लोकतंत्र में स्थित सभी नियम एवं कानून प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही दृष्टि से देश की जनता के कल्याण, विकास और सुरक्षा के लिए हैं। ऐसी स्थिति में भारतवर्ष की नौकरशाही की यह जिम्मेदारी और भी अधिक बढ़ जाती है कि वह भारत के प्रत्येक व्यक्ति की सुरक्षा सुनिश्चित करते हुए इसके अधिकतम कल्याण और विकास के लिए निरन्तर कोशिश करती रहे।

निष्कर्ष

कहने का तात्पर्य यह है कि; अब भारत सहित दुनिया के लगभग सभी लोकतांत्रिक एवं अन्य देशों की ‘राजनीतिक कार्यपालिका’ तथा ‘नौकरशाही’ जनता के कल्याणकारी, विकासात्मक, सुरक्षात्मक इत्यादि कार्यों में कम से कम हस्तक्षेप करके; जनता को अधिकतम सुविधाएँ एवं राहत देने के सिद्धांत पर कार्य कर रही हैं। इसके लिए अब दुनिया के लगभग सभी देशों की नौकरशाही अत्याधुनिक टेक्नोलॉजी का उपयोग कर ही

हैं ताकि; वह जनता के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अधिक निकट रहकर उसकी विभिन्न समस्याओं एवं कठिनाइयों का तीव्र गति से समाधान करके, जनता के जीवन स्तर को ऊँचा कर सके। यद्यपि लोकतंत्र में जनता ही जनार्दन होती है। इसलिए अब भारत सहित दुनिया के विभिन्न लोकतांत्रिक देशों के साथ - साथ गैर - लोकतांत्रिक देशों में भी नौकरशाही के प्रभाव को कम करके इसे अधिक से अधिक जवाबदेही [Accountability] बनाया जा रहा है। ताकि लोकतंत्र के सच्चे आदर्शों को प्राप्त किया जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वेबर, मैक्स - 'द प्रोटेस्टेंट एथिक एण्ड द स्पिरिट ऑफ़ केपिटलिज्म' (1904-05) [The Protestant Ethic and the spirit of Capitalism 1904-05] (इस पुस्तक का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद सन् 1930 इस्वी में टालकॉट पार्सन्स द्वारा किया गया था)
2. क्रोजियर, माइकल - 'द ब्यूरोक्रेटिक फिनोमिनन' (1964)
3. कटारिया, सुरेन्द्र - 'भारत में लोक प्रशासन' - (प्रकाशक : दीपक परनामी, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, 340, एस.एम.एस. हाइवे, जयपुर - 302003) (राजस्थान) (द्वितीय संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण : 2003)
4. राणावत, डॉ. जोरावर सिंह - 'भारत में प्रशासनिक संस्थाएँ' (प्रथम संस्करण : वर्ष 2019), पृष्ठ संख्या 142; प्रकाशक - मलिक एण्ड कंपनी, 337, चौड़ा रास्ता, जयपुर 302003 [इस लेख का पैरा संख्या 1]
5. राजस्थान पत्रिका (जयपुर संस्करण), दिनांक 13 फरवरी, 2025 [इस लेख का पैरा संख्या 2,3,4 तथा 5]
6. राजस्थान पत्रिका (जयपुर संस्करण), दिनांक 22 फरवरी, 2025 [इस लेख का पैरा संख्या 6.]
7. राजस्थान पत्रिका (जयपुर संस्करण), दिनांक 22 फरवरी, 2025 [इस लेख का पैरा संख्या 7]
8. दैनिक भास्कर (जयपुर संस्करण), दिनांक 23 फरवरी, 2025
10. दैनिक भास्कर (जयपुर संस्करण), दिनांक 28 फरवरी, 2025
11. राजस्थान पत्रिका (जयपुर संस्करण), दिनांक 01 मार्च, 2025
12. राजस्थान सरकार : जन शिकायत निवारण (हेल्पलाईन) नं. 181
13. राजस्थान राज्य अन्वेषण ब्यूरो [A.C.B.] (हेल्पलाईन नं. 1064) तथा वाट्सअप हेल्पलाइन नं. 9413502834
14. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो [C.B.I.], नई दिल्ली
15. केन्द्रीय सतर्कता आयोग [c.v.c.], नई दिल्ली
16. भारत निर्वाचन आयोग [E.C.I.], नई दिल्ली

शिक्षण के साथ-साथ विद्यालय प्रबंधन में अध्यापक की सहभागिता : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. बसन्त कुमार
चरखी दादरी, हरियाणा



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

यह शोध अध्ययन विद्यालय प्रबंधन में अध्यापक की भूमिका की समीक्षा करता है, जिसमें उसे मात्र शिक्षण तक सीमित न रखकर संस्था के समग्र संचालन में एक सृजनशील सहभागी के रूप में देखा गया है। वर्तमान समय में शिक्षा की गुणवत्ता, उत्तरदायित्वबोध तथा सहभागिता-प्रधान प्रशासन पर निर्भर है, और इस दिशा में अध्यापक की भूमिका निर्णायक बनती जा रही है। एक कुशल शिक्षक न केवल ज्ञान का संप्रेषक है, अपितु विद्यालय की योजनाओं, शैक्षणिक एवं सहशैक्षणिक गतिविधियों, अनुशासन व्यवस्था और पालक-संवाद में भी उसकी सक्रिय सहभागिता आवश्यक है। शोध इस बात को रेखांकित करता है कि जब शिक्षकों को प्रशासनिक निर्णयों में सहभागी बनाया जाता है, तब विद्यालय की कार्यकुशलता, शैक्षणिक स्तर तथा नैतिक वातावरण में उल्लेखनीय सुधार होता है। नई शिक्षा नीति 2020 द्वारा शिक्षक नेतृत्व को केंद्र में लाया गया है, जो इस अवधारणा को और भी अधिक प्रासंगिक बना देता है। अतः यह आवश्यक है कि अध्यापकों को प्रशासनिक दक्षता, नेतृत्व कौशल एवं तकनीकी समझ से समृद्ध किया जाए, ताकि वे विद्यालय प्रबंधन में न केवल सहभागी हों, बल्कि प्रभावशाली नेतृत्व प्रदान कर सकें।

संकेताक्षर : शिक्षण, विद्यालय प्रबंधन, शिक्षक, सृजनशीलता, प्रशासनिक दक्षता, नेतृत्व कौशल, प्रासंगिकता, प्रभावशीलता।

शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान का हस्तांतरण नहीं, बल्कि व्यक्तित्व निर्माण की एक समग्र प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में विद्यालय एक केंद्रीय संस्था के रूप में कार्य करता है, और विद्यालय के केंद्र में होता है - अध्यापक। अध्यापक का दायित्व केवल ज्ञान देना नहीं है, बल्कि वह सामाजिक परिवर्तन, नैतिक मूल्यों की स्थापना और एक जिम्मेदार नागरिक का निर्माण करने में सहायक होता है। परंतु वर्तमान शैक्षणिक परिप्रेक्ष्य में अध्यापक की भूमिका और अधिक विस्तृत होती जा रही है। वह अब केवल शिक्षक नहीं, बल्कि एक मार्गदर्शक, व्यवस्थापक, समन्वयक और विद्यालयीय संरचना का नेतृत्वकर्ता भी बन चुका है।

शिक्षा का गुणवत्ता-आधारित विकास आज की आवश्यकता है, और यह तभी संभव है जब विद्यालयों का प्रबंधन कुशल, उत्तरदायी और सहभागी हो। यह भी मान्यता प्राप्त तथ्य है कि किसी भी संस्था का संचालन तभी प्रभावी हो सकता है जब उसमें कार्यरत सदस्य स्वेच्छा से, समर्पण और उत्तरदायित्व के साथ सहभागिता करें। विद्यालयों में यह भूमिका अध्यापकों द्वारा ही निभाई जाती है। विद्यालय प्रबंधन केवल प्रधानाचार्य या प्रबंधन समिति का कार्य नहीं रह गया है, बल्कि यह एक साझेदारी पर आधारित प्रक्रिया बन चुकी है, जिसमें अध्यापक एक मुख्य कड़ी के रूप में उभरते हैं।¹

शिक्षकों का विद्यालय प्रबंधन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ना कई प्रकार से लाभकारी सिद्ध होता है। वे विद्यार्थियों की जरूरतों, विद्यालय की समस्याओं और सामुदायिक संदर्भों से भली-भाँति परिचित होते हैं। अतः उनकी भागीदारी से निर्णय अधिक व्यावहारिक, संवेदनशील और कारगर होते हैं। अध्यापक समय-सारणी बनाने, पाठ्यक्रम नियोजन, परीक्षा संचालन, सह-शैक्षणिक गतिविधियों का आयोजन, रिपोर्ट तैयार करने, स्कूल निरीक्षण की तैयारी,

सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन, और माता पिता-अध्यापक संवाद जैसी अनेक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभाते हैं।²

शिक्षा मंत्रालय द्वारा समय-समय पर प्रकाशित रिपोर्टें यह संकेत करती हैं कि जिन विद्यालयों में शिक्षक सक्रिय रूप से विद्यालय संचालन में भाग लेते हैं, वहाँ शैक्षिक उपलब्धियों के साथ-साथ अनुशासन, उपस्थिति, माता-पिता की सहभागिता और संसाधनों के प्रभावी उपयोग में भी उल्लेखनीय सुधार देखा गया है।³ यही कारण है कि भारत की नई शिक्षा नीति 2020 में भी विद्यालय नेतृत्व और शिक्षक सहभागिता को विशेष रूप से महत्व दिया गया है। नीति स्पष्ट रूप से कहती है कि शिक्षकों को केवल शिक्षण तक सीमित न रखकर उन्हें विद्यालय स्तर पर निर्णय प्रक्रिया में भागीदार बनाना चाहिए।⁴

शोध का उद्देश्य

इस शोध का उद्देश्य भी यही है - यह जानना कि अध्यापक वर्तमान समय में विद्यालय प्रबंधन की प्रक्रिया में किस सीमा तक सहभागी हैं, उनकी भूमिका किन रूपों में सामने आती है, और इस सहभागिता से विद्यालय के संचालन की गुणवत्ता में क्या प्रभाव पड़ता है। इसके साथ-साथ शोध का एक अन्य उद्देश्य यह भी है कि अध्यापक की इस भूमिका को और अधिक प्रभावी बनाने हेतु किन उपायों और सुझावों को लागू किया जा सकता है।

इस अध्ययन के अंतर्गत विद्यालय प्रबंधन की परिभाषा, संरचना और घटकों की संक्षिप्त विवेचना की गई है, तथा अध्यापक की भूमिका को विभिन्न स्तरों पर समझने का प्रयास किया गया है - जैसे प्रशासनिक, शैक्षिक, सह-शैक्षिक, तकनीकी, और नेतृत्व संबंधी भूमिकाओं में। साथ ही, अध्यापक की इस बहुआयामी सहभागिता से उत्पन्न लाभों और चुनौतियों का भी गहन विश्लेषण किया गया है। शोध इस तथ्य पर बल देता है कि यदि अध्यापक को केवल अध्यापन नहीं, बल्कि व्यवस्थापन और नेतृत्व की प्रक्रिया में भी सक्रिय रूप से सम्मिलित किया जाए, तो न केवल विद्यालय की गुणवत्ता में सुधार होगा, बल्कि शिक्षा व्यवस्था में स्थायित्व, पारदर्शिता और उत्तरदायित्व की भावना भी विकसित होगी। यह शोधालेख उस वैचारिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करता है, जिस पर पूरे शोध का आधार निर्मित होता है। यह अध्यापक को विद्यालय का “सिर्फ शिक्षक” नहीं, बल्कि “निर्माता”, “संचालक” और

“दृष्टा” मानने की दिशा में एक विचारशील पहल है।

विद्यालय प्रबंधन की अवधारणा और संरचना

विद्यालय एक जटिल सामाजिक संस्था है जहाँ केवल पाठ्यक्रम का शिक्षण ही नहीं, बल्कि छात्रों के समग्र विकास, मूल्य-निर्माण, चरित्र निर्माण और नेतृत्व क्षमता को विकसित करने की प्रक्रिया भी चलती है। इस पूरी प्रणाली को सुचारु और प्रभावी बनाने के लिए जिस तत्व की आवश्यकता होती है, वह है “प्रबंधन”। विद्यालय प्रबंधन उस संगठनात्मक ढांचे का नाम है जिसके माध्यम से विद्यालय की शैक्षिक, प्रशासनिक और सह-शैक्षिक गतिविधियों को दिशा, नियंत्रण और निगरानी प्रदान की जाती है।

विद्यालय प्रबंधन की परिभाषा अनेक शिक्षाविदों ने विभिन्न रूपों में दी है, किंतु सामान्य रूप से इसे विद्यालय में उपलब्ध संसाधनों (भौतिक, मानवीय, वित्तीय) के कुशल उपयोग द्वारा निर्धारित शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति की प्रक्रिया कहा जा सकता है। यह प्रबंधन केवल प्रधानाचार्य या प्रशासक का कार्य न होकर, समस्त शिक्षकों के सहयोग से संभव होता है। अध्यापक न केवल शैक्षिक कार्यक्रमों का संचालन करते हैं, बल्कि विद्यालय की योजनाओं, समय-सारणी, परीक्षा व्यवस्था, छात्र अनुशासन, पालक-संवाद, और उत्सवों के आयोजन में भी बराबर की भूमिका निभाते हैं।⁵

भारतीय शिक्षा व्यवस्था में ‘विद्यालय’ का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है और इसके संचालन में ‘प्रबंधन’ की भूमिका समय के साथ और अधिक व्यापक होती गई है। 21वीं शताब्दी की चुनौतियों और डिजिटल शिक्षा की ओर बढ़ते कदमों ने इस भूमिका को और अधिक जटिल बना दिया है। आज एक विद्यालय को न केवल शैक्षिक संस्थान के रूप में देखा जाता है, बल्कि उसे नेतृत्व केंद्र, सामुदायिक विकास केंद्र और तकनीकी प्रयोगशाला की तरह भी देखा जा रहा है। ऐसे में विद्यालय प्रबंधन एक बहुस्तरीय प्रक्रिया बन गई है जिसमें निर्णय-निर्माण, मानव संसाधन का नियोजन, वित्तीय प्रबंधन, गुणवत्ता नियंत्रण और मूल्यांकन शामिल हैं।⁶

अधिकारों और दायित्वों के समुचित संतुलन के बिना कोई भी संस्था सफल नहीं हो सकती। विद्यालय प्रबंधन इसी सिद्धांत पर आधारित होता है जहाँ शिक्षक, प्रधानाध्यापक और प्रबंध समिति मिलकर संस्था की

रूपरेखा तैयार करते हैं। इसमें शैक्षिक निर्णयों में अध्यापकों की भागीदारी अत्यंत आवश्यक है क्योंकि वही कक्षा के वास्तविक वातावरण से सीधे जुड़ाव रखते हैं। यदि अध्यापकों को केवल आदेश पालन तक सीमित रखा जाए, तो विद्यालय की नीतियाँ केवल कागज़ पर ही रह जाती हैं। लेकिन यदि अध्यापक योजनाकार और कार्यान्वयनकर्ता दोनों की भूमिका निभाएं, तो प्रबंधन अधिक प्रभावशाली और व्यावहारिक बनता है।⁷

अतः विद्यालय प्रबंधन की अवधारणा आज एक समेकित दृष्टिकोण की मांग करती है जिसमें अध्यापक की भूमिका केवल "पालनकर्ता" नहीं, बल्कि एक सक्रिय "निर्माता" की होती है। जिस विद्यालय में अध्यापक को केवल शिक्षण कार्य तक सीमित कर दिया जाता है, वहाँ प्रबंधन की गुणवत्ता सीमित हो जाती है। इसके विपरीत, जहाँ अध्यापक को विद्यालय की नीतियों और योजनाओं में निर्णायक भागीदारी दी जाती है, वहाँ संपूर्ण संस्था अधिक प्रगतिशील, उत्तरदायी और नवाचारी बनती है।

विद्यालय प्रबंधन में अध्यापक की बहुआयामी भूमिका

अध्यापक का कार्य सदैव से ही समाज में अत्यंत गरिमायुक्त रहा है, परंतु बदलते शैक्षिक परिदृश्य में उसकी भूमिका केवल अध्यापन तक सीमित नहीं रही। आज का अध्यापक शैक्षणिक संस्था का एक अभिन्न स्तंभ है जो विद्यालय के समग्र प्रबंधन में सक्रिय भूमिका निभाता है। विद्यालय की कार्यप्रणाली, अनुशासन, विकास और सामाजिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति अध्यापक के सहयोग के बिना असंभव है।

विद्यालय के भीतर सबसे महत्वपूर्ण कार्य होता है – शैक्षिक गतिविधियों का संचालन। इसमें पाठ्यक्रम योजना बनाना, समय-सारणी तैयार करना, शिक्षण सामग्री का चयन, छात्रों की मूल्यांकन पद्धति पर कार्य करना आदि शामिल हैं। इन सभी कार्यों के लिए प्रधानाचार्य या प्रबंध समिति अकेले जिम्मेदार नहीं हो सकती। यहाँ अध्यापक अपनी विषयगत विशेषज्ञता, अनुभव और कक्षा-केंद्रित दृष्टिकोण के साथ इन योजनाओं को व्यावहारिक रूप देने में योगदान करता है।⁸

शिक्षकों की भागीदारी समय-सारणी निर्धारण, परीक्षा संचालन, मूल्यांकन की उत्तरपुस्तिकाओं की समीक्षा तथा परिणाम निर्माण जैसे कार्यों में नियमित रूप से

होती है। उदाहरण के लिए, एक माध्यमिक विद्यालय में परीक्षा सत्र के दौरान अध्यापक प्रश्न-पत्र निर्माण से लेकर परीक्षा की निगरानी और उत्तर पुस्तिकाओं की जाँच तक हर चरण में केंद्रीय भूमिका निभाता है। यही नहीं, वह छात्रों के कमजोर पक्षों की पहचान कर उनके लिए अतिरिक्त कक्षाओं की योजना भी बनाता है।⁹

विद्यालय प्रबंधन में अध्यापक का एक और अहम पक्ष है – सह-शैक्षिक गतिविधियों का संचालन। विद्यालय केवल किताबी ज्ञान देने का केंद्र नहीं है, बल्कि यहाँ विद्यार्थियों के व्यक्तित्व को बहुआयामी रूप से विकसित किया जाता है। खेलकूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम, वाद-विवाद, चित्रकला, विज्ञान प्रदर्शनियाँ, भाषण प्रतियोगिताएँ – इन सबके संचालन में अध्यापक आयोजनकर्ता, मार्गदर्शक, और मूल्यांकनकर्ता की भूमिका निभाता है। यह कार्य न केवल विद्यालय के वातावरण को समृद्ध करता है, बल्कि छात्रों में नेतृत्व और सहभागिता की भावना भी विकसित करता है।¹⁰

प्रशासनिक स्तर पर भी अध्यापक की जिम्मेदारियाँ कम नहीं होतीं। विद्यालय के अभिलेख संधारण, छात्र नामांकन, पालक-अध्यापक बैठकें, विद्यालय की निरीक्षण संबंधी तैयारियाँ, सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन (जैसे मध्याह्न भोजन, छात्रवृत्ति योजना आदि) – इन सभी में अध्यापक की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है। कई विद्यालयों में वरिष्ठ अध्यापक को विभागाध्यक्ष, पर्यवेक्षक, अथवा समन्वयक के रूप में नियुक्त किया जाता है, जहाँ वह अन्य अध्यापकों का नेतृत्व करता है और विद्यालय के लक्ष्यों की दिशा में समन्वित प्रयास करता है।¹¹

आज की शिक्षा प्रणाली में अध्यापक को सूचना प्रौद्योगिकी का ज्ञान भी आवश्यक हो गया है। विद्यालय प्रबंधन सॉफ्टवेयर, डिजिटल उपस्थिति प्रणाली, ऑनलाइन परीक्षा, ई-कंटेंट निर्माण आदि में अध्यापक को प्रशिक्षित होना पड़ता है। यह तकनीकी दक्षता विद्यालय के प्रशासन को अधिक पारदर्शी और प्रभावी बनाती है। अध्यापक आज "डिजिटल लीडर" के रूप में उभर रहे हैं जो छात्रों को तकनीक के सही उपयोग की शिक्षा भी देते हैं।¹²

विद्यालय और समाज के बीच एक सेतु के रूप में भी अध्यापक की भूमिका महत्वपूर्ण होती जा रही है। अध्यापक न केवल पालकों से संवाद स्थापित करता है, बल्कि स्थानीय समुदाय के साथ विद्यालय की गतिविधियों को जोड़ने का प्रयास भी करता है। यह

सहभागिता विद्यालय को सामाजिक चेतना का केंद्र बनाती है। पालक-अध्यापक संघ की बैठकों में अध्यापक छात्र के सर्वांगीण विकास पर चर्चा करता है और आवश्यक सुधारों हेतु सुझाव देता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अध्यापक केवल एक "पाठ्य सामग्री प्रस्तुत करने वाला" नहीं, बल्कि "विद्यालय निर्माता" की भूमिका में है। उसकी भागीदारी नीति निर्माण, कार्यान्वयन, पर्यवेक्षण, मूल्यांकन और जनसंपर्क तक फैली हुई है। यह भूमिका जितनी व्यापक है, उतनी ही उत्तरदायित्वपूर्ण भी। इसके लिए अध्यापक को समय प्रबंधन, नेतृत्व क्षमता, संवेदनशीलता, और प्रशासनिक कौशल की भी आवश्यकता होती है।

प्रशासकीय नेतृत्व में अध्यापक की भूमिका

शिक्षा केवल ज्ञान का हस्तांतरण नहीं है, यह एक संगठनात्मक प्रक्रिया है जिसमें संस्था, संरचना और संचालन की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। विद्यालय प्रशासन की सफलता इस पर निर्भर करती है कि उसमें कार्यरत लोग कितनी समझदारी, निष्ठा और दक्षता से मिलकर कार्य करते हैं। इस संदर्भ में अध्यापक की भूमिका केवल कक्षा-शिक्षण तक सीमित नहीं रह जाती, बल्कि वह विद्यालय के प्रशासकीय नेतृत्व का भी एक अभिन्न और प्रभावशाली हिस्सा बन जाता है।

प्रशासकीय नेतृत्व का आशय केवल प्रशासनिक आदेश देना या दिशा-निर्देश जारी करना नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए योजना बनाना, निर्णय लेना, संचालन करना और संसाधनों का समुचित प्रबंधन करना सुनिश्चित करती है।¹³ इस संपूर्ण प्रक्रिया में अध्यापक की सहभागिता आवश्यक है क्योंकि वह संस्था की सबसे मूल इकाई से जुड़ा होता है। कृविद्यार्थी से। उसकी समझ, अनुभव और व्यावहारिक ज्ञान उसे प्रशासकीय निर्णयों के लिए एक सशक्त आधार प्रदान करता है। आज के विद्यालयों में अनेक प्रकार की प्रशासकीय चुनौतियाँ हैं: समय-सारणी निर्माण, शिक्षकों की ड्यूटी विभाजन, विद्यालय निरीक्षण की तैयारी, प्रशासनिक रिपोर्ट तैयार करना, शासकीय योजनाओं का क्रियान्वयन, बजट का सदुपयोग, बुनियादी ढांचे का रखरखाव आदि। इन सभी कार्यों में विद्यालय के प्रधानाचार्य के साथ-साथ अनुभवी अध्यापक भी निर्णायक भूमिका निभाते हैं। कई विद्यालयों में 'प्रभारी शिक्षक', 'विभाग प्रमुख', 'सहायक समन्वयक' जैसे

पद इन्हीं कार्यों के लिए बनाए गए हैं।¹⁴

जब कोई अध्यापक प्रशासकीय कार्यों में सक्रिय होता है, तो वह केवल एक निष्पादक नहीं, बल्कि योजना-निर्माता भी होता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी विद्यालय में वार्षिक खेलकूद कार्यक्रम आयोजित करना है, तो उसकी योजना बनाना, बजट निर्धारण, विद्यार्थियों की भागीदारी सुनिश्चित करना, अतिथियों का आमंत्रण, प्रमाण-पत्र तैयार करना कृइन सब कार्यों की जिम्मेदारी अध्यापक निभाते हैं। यह एक प्रशासकीय गतिविधि है जिसमें समय-प्रबंधन, संसाधन नियोजन और समन्वयन की दक्षता की आवश्यकता होती है।

अध्यापक की यह नेतृत्वकारी भूमिका विशेष रूप से स्पष्ट होती है जब वह अन्य अध्यापकों को मार्गदर्शन देता है या नव नियुक्त शिक्षकों का प्रशिक्षण करता है। वरिष्ठ शिक्षक अनुभव के आधार पर केवल विषय-वस्तु की जानकारी नहीं देते, बल्कि प्रशासनिक प्रणाली को समझने, रिपोर्ट बनाने, रिकॉर्ड संधारण, और शिक्षा विभाग से संवाद स्थापित करने के गुर भी सिखाते हैं। इससे संस्था में नेतृत्व की निरंतरता बनी रहती है और गुणवत्ता का स्तर सुरक्षित रहता है।

प्रशासकीय नेतृत्व में अध्यापक की भूमिका विशेष रूप से प्रभावशाली तब होती है जब वह संस्था को बाहरी तंत्रों से जोड़ने में भी सहयोग करता है। सरकारी योजनाओं (जैसे आरटीई, सर्व शिक्षा अभियान, डिजिटल इंडिया), स्थानीय निकायों, पालक-अध्यापक संघ, एवं शिक्षा विभाग से संवाद स्थापित करने की प्रक्रिया में कई बार अध्यापक को प्रतिनिधित्व करना होता है। इस भूमिका में उसे संवाद कौशल, व्यावहारिक विवेक और समस्या समाधान की क्षमता दिखानी पड़ती है।

डिजिटल युग में विद्यालय प्रशासन में तकनीकी साधनों की भूमिका बढ़ी है। विद्यालय प्रबंधन सॉफ्टवेयर, डै रिपोर्ट, ऑनलाइन छात्रवृत्ति प्रणाली, डिजिटल उपस्थिति आदि कार्यों में अध्यापक की तकनीकी दक्षता से प्रशासन अधिक पारदर्शी, शीघ्र और उत्तरदायी बनता है। कई स्कूलों में पञ्च प्रभारी, परीक्षा प्रभारी, डेटा एंट्री समन्वयक जैसे प्रशासनिक पदों पर अध्यापक ही कार्यरत होते हैं।

इन सब पहलुओं से स्पष्ट है कि अध्यापक न केवल शैक्षिक नेतृत्वकर्ता हैं, बल्कि प्रशासकीय नेतृत्व में भी

अत्यंत आवश्यक और प्रभावी भूमिका निभाते हैं। यदि उन्हें निर्णय लेने, योजना बनाने, संसाधनों के उपयोग और संस्था के संचालन में निर्णायक भूमिका दी जाए, तो विद्यालय अधिक उत्तरदायी और प्रभावी बन सकता है। अध्यापक की यह बहुपरतीय भूमिका उसे केवल एक “पाठशाला कर्मी” नहीं, बल्कि “शैक्षणिक प्रशासक” बनाती है। कृजो आने वाली पीढ़ियों के मार्गदर्शक निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

विद्यालय प्रबंधन में शिक्षक सहभागिता के लाभ और चुनौतियाँ

विद्यालय प्रबंधन एक सामूहिक उत्तरदायित्व है, जिसमें शिक्षक की भागीदारी केवल आवश्यक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य है। जब शिक्षक को केवल एक निष्पादक के रूप में देखा जाता है, तब विद्यालय की योजनाएँ केवल प्रशासनिक आदेशों तक सीमित रह जाती हैं। इसके विपरीत, जब शिक्षक को निर्णय प्रक्रिया में सम्मिलित किया जाता है, तो वह न केवल योजनाओं को अधिक यथार्थवादी बनाता है, बल्कि उनका कार्यान्वयन भी अधिक प्रभावी ढंग से करता है।⁵

शिक्षक की सहभागिता से विद्यालय में एक लोकतांत्रिक वातावरण निर्मित होता है, जहाँ संवाद, सहयोग और विचार-विनिमय को स्थान मिलता है। इससे संस्था में पारदर्शिता और उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न होती है। अध्यापक, जो कि प्रतिदिन छात्रों के साथ संवाद करते हैं, विद्यालय की नीतियों और योजनाओं के व्यावहारिक पक्ष को भली-भाँति समझते हैं। जब ऐसे शिक्षकों को विद्यालय प्रबंधन में सक्रिय रूप से जोड़ा जाता है, तो नीतियाँ अधिक व्यावहारिक, उपयोगी और छात्र-केंद्रित बनती हैं।⁶

अतः यह कहा जा सकता है कि विद्यालय प्रबंधन में शिक्षक सहभागिता एक ऐसी प्रक्रिया है जो संस्था की कार्यक्षमता, उत्तरदायित्व, नवाचार और गुणवत्ता को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाने में सक्षम है यदि इसे नीति और व्यवहार, दोनों स्तरों पर गंभीरता से अपनाया जाए।

निष्कर्ष

विद्यालय किसी राष्ट्र की नींव होता है और शिक्षक उस नींव का निर्माणकर्ता। शिक्षा की गुणवत्ता और विद्यालय की सफलता, दोनों ही इस पर निर्भर करती हैं कि वहाँ कार्यरत अध्यापक किस सीमा तक केवल एक “शिक्षक” न रहकर “सह-प्रशासक”, “नेता” और

“निर्माता” की भूमिका निभा रहे हैं। बीते अध्यायों में हमने देखा कि अध्यापक न केवल कक्षा के भीतर ज्ञान देने वाले व्यक्ति हैं, बल्कि वे विद्यालय प्रबंधन के प्रत्येक स्तर पर एक प्रभावशाली शक्ति हैं। आज का युग केवल अकादमिक दक्षता का नहीं, बल्कि समन्वय, नेतृत्व और व्यवस्थापन का भी है। विद्यालयों में बढ़ती जटिलताएँ, विविध सरकारी योजनाओं का कार्यान्वयन, छात्रों की बहुआयामी आवश्यकताएँ और पालकों की अपेक्षाएँ कृजो सभी का उत्तरदायित्व अब केवल प्रधानाचार्य या प्रबंधन समिति का नहीं रह गया है। अध्यापक की सहभागिता के बिना विद्यालय प्रबंधन एक अधूरी प्रक्रिया बन जाती है।

इस शोध के माध्यम से यह स्पष्ट हुआ कि विद्यालय प्रबंधन में अध्यापक की सक्रिय भागीदारी से अनेक सकारात्मक परिवर्तन संभव हैं: संस्था की कार्यप्रणाली अधिक पारदर्शी होती है, निर्णय प्रक्रिया व्यावहारिक होती है, शिक्षकों में उत्तरदायित्व की भावना प्रबल होती है, और छात्र-केंद्रित दृष्टिकोण अधिक मजबूती से उभरता है। जब अध्यापक योजना निर्माण, क्रियान्वयन, मूल्यांकन और संस्थागत प्रतिनिधित्व में भाग लेते हैं, तो विद्यालय एक जीवंत संस्था में परिवर्तित हो जाता है।⁷ किन्तु, इस प्रक्रिया में अनेक बाधाएँ भी देखी गईं: जैसे शिक्षकों पर बढ़ता कार्यभार, प्रशिक्षण की कमी, प्रशासनिक स्वायत्तता का अभाव, संवादहीनता, और कभी-कभी नेतृत्व की असंवेदनशीलता। इन सभी चुनौतियों से निपटने के लिए आवश्यक है कि हम एक समेकित और समावेशी दृष्टिकोण अपनाएँ।

अंत में, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यदि विद्यालय को एक जीवंत, जागरूक और उत्तरदायी संस्था के रूप में विकसित करना है, तो अध्यापक को केवल अध्यापक नहीं, बल्कि एक शैक्षिक प्रशासक, नेता, और परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में देखना और सशक्त करना होगा। अध्यापक की सहभागिता एक विकल्प नहीं, बल्कि शिक्षा की गुणवत्ता के लिए एक शर्त है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Bush, Tony. *Educational Leadership and Management*. Sage Publications, 2011, p. 14.
2. भारत सरकार, विद्यालय नेतृत्व प्रशिक्षण पुस्तिका, शिक्षा मंत्रालय, 2018, पृष्ठ 10
3. NCERT. *Transforming Schools through Teacher Participation*, 2019, p. 22

4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ 48 NCERT, School Leadership and Management, नई दिल्ली, 2019, पृष्ठ 22
8. Bush, Tony. Theories of Educational Leadership and Management, Sage Publications, 2011, p. 13.
9. भारत सरकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, शिक्षा मंत्रालय, पृष्ठ 37
10. भारत सरकार, शिक्षक नेतृत्व और प्रबंधन गाइडलाइन, शिक्षा मंत्रालय, 2019, पृष्ठ 15
11. NCERT, Continuous and Comprehensive Evaluation, 2018, p. 22
12. UNESCO, Role of Teachers in School Co-Curricular Development, 2017, p. 31.
13. Bush, Tony. Educational Leadership and Management, Sage Publications, 2011, p. 48.
14. भारत सरकार ICT in School Education Framework, 2020, P. 1
15. Bush, Tony. Educational Leadership and Management, Sage Publications, 2011, p. 26.
16. भारत सरकार, विद्यालय नेतृत्व प्रशिक्षण पुस्तिका, शिक्षा मंत्रालय, 2018, पृष्ठ 14
17. Fullan, Michael. The New Meaning of Educational Change, Routledge, 2016, p. 56.

जल-संरक्षण की मिसाल हैं बनेड़ा में राजसी महिलाओं द्वारा निर्मित स्रोत

रामकरण गुर्जर

शोधार्थी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

अरावली की शांत-सुरम्य पहाड़ियों से घिरा हुआ एक छोटा सा कस्बा है बनेड़ा, जहाँ ऐतिहासिक महत्व का दुर्ग है साथ ही एक आकर्षक सरोवर भी, और इनके बीच में बसी है बस्ती। ऊँची-नीची, चौड़ी-संकरी गलियाँ, बाजार और चौक-चौराहे। यहाँ प्राचीन देवालय भी हैं तो कलात्मक कुण्ड-बावड़ियाँ भी। वर्तमान भीलवाड़ा जिला मुख्यालय से कोई 27 कि. मी. उत्तर-पूर्व में स्थित हैं। यह तत्कालीन मेवाड़ राज्य के प्रमुख एवं विशिष्ट सामंतों में विशेषाधिकार सम्पन्न राज्य का दर्जा प्राप्त किया हुआ एक उत्कृष्ट ठिकाना था। 1615 ई. में मेवाड़-मुगल संधि तक बनेड़ा मुगलों के आधिपत्य में रहा। मुगल साम्राज्य के पतन काल में इन्हें जब उनसे कोई सुरक्षा की आशा न रही तो बनेड़ा मेवाड़ राज्य के संरक्षण में आ गया। इसे प्रथम श्रेणी के सामंतों में उच्च स्थान दिया गया। विशिष्ट सामंत के रूप में बनेड़ा को प्रथम एवं शाहपुरा को द्वितीय स्थान दिया गया। महिलाओं द्वारा निर्मित स्रोत राजस्थान में बारिश का पानी पेयजल का एक महत्वपूर्ण स्रोत रहा है। इसी कड़ी में यहाँ की राजसी महिलाओं ने भी जल उपलब्ध कराने के मिशन में अपनी अहम भूमिका निभाई।

संकेताक्षर : बनेड़ा, विशेषाधिकार, पेयजल, कुण्ड, वापिका, संरक्षण, मिसाल, राजसी।

बनेड़ा तत्कालीन मेवाड़ राज्य के प्रमुख एवं विशिष्ट सामंतों में विशेषाधिकार सम्पन्न राज्य का दर्जा प्राप्त किया हुआ एक उत्कृष्ट ठिकाना था। वर्तमान भीलवाड़ा जिला मुख्यालय से कोई 27 कि. मी. उत्तर-पूर्व में स्थित हैं। यदि देखा जाये तो बनेड़ा मेर आदिवासी क्षेत्र का हिस्सा रहा था। महाराणा लाखा के समय में मेर जाति का दमन प्रारम्भ हुआ और बनेड़ा का भविष्य मेवाड़ के भाग्य के साथ जुड़ने लगा। महाराणा कुम्भा के समय में इस क्षेत्र का व्यवस्थित एकीकरण प्रारम्भ हुआ और बनेड़ा में दुर्ग निर्माण प्रारम्भ हुआ किन्तु यह दुर्ग जो संभवतया बनेड़ा गाँव के दक्षिण में था, पूर्णतया नष्ट हो चुका था। महाराणा साँगा के समय बनेड़ा श्रीनगर (अजमेर) के कर्मचन्द पंवार को सौंपा गया था। 1615 ई. में मेवाड़-मुगल संधि तक बनेड़ा मुगलों के आधिपत्य में रहा। इसके बाद यह क्षेत्र पुनः मेवाड़ के अधीन हो गया। 1652 ई. में महाराणा राजसिंह व मुगलों में कटुता प्रारम्भ हो जाने से बनेड़ा पुनः मुगल साम्राज्य में हस्तगत कर लिया गया परन्तु शीघ्र ही सम्राट शाहजहाँ के पुत्रों में हुए उत्तराधिकार युद्ध की विवशता के कारण बनेड़ा पुनः मेवाड़ के अधीन हो गया। बनेड़ा के शासक महाराणा राजसिंह के चौथे पुत्र भीमसिंह के वंशज हैं और 'राजा' उनकी उपाधि है।

मेवाड़ में सामंती-व्यवस्था में महाराणा सर्वोच्च पद पर होता था। वह राज्य की दैविक शक्ति का उपभोग करते हुए स्वयं को 'दीवाण' (प्रधान) तथा अपने आराध्य देव एकलिंगजी को मेवाड़ राज्य का स्वामी मानते थे। इस भांति राज्य शासन प्रणाली में धर्म निहित राजनीति प्रभावशाली थी। उसके आदेश 'श्रीमुख आदेश' थे। महाराणा की 'आण' (शपथ, सौगंध) को समाज में सर्वोपरि मानते थे। महाराणा को ईश्वर तुल्य माना जाता था। महाराणा के अधीन दो राजा, 16 उमराव, 32 सामंत और कई सौ तृतीय श्रेणी के सामंत होते थे। 'अमरशाही रेख' के अनुसार सामंत 'सोलह' या 'सोला', 'बत्तीसा', 'गोल', 'षट्दर्शन' और 'भोमिया' नाम से जाने जाते थे।¹ इस विभाजन के अंतर्गत दो राजा बनेड़ा व शाहपुरा के थे। यदि देखा जाय तो यह दोनों ही स्वतंत्र एवं स्वायत्तशासी थे किंतु मुगल साम्राज्य के पतन काल में इन्हें जब उनसे कोई सुरक्षा की आशा न रही तो ये राज्य मेवाड़ राज्य के संरक्षण में आ गये। इन्हें

प्रथम श्रेणी के सामंतों में उच्च स्थान दिया गया। विशिष्ट सामंत के रूप में बनेड़ा को प्रथम व शाहपुरा को द्वितीय स्थान दिया गया।¹

महिलाओं ने जल उपलब्ध कराने के मिशन में अपनी अहम भूमिका निभाई। संरक्षण की मिसाल हैं महिलाओं द्वारा निर्मित स्रोत राजस्थान में बारिश पीने के पानी का एक महत्वपूर्ण स्रोत रहा है। आसमान में काले बादलों की रंगत कुदरत का सबसे खूबसूरत रंग बन जाता है। गर्मियों में कंठ ही नहीं हमारे प्रदेश का हलक भी सूख जाता है। हम गर्मियों के महीनों के दौरान पानी की अपरिहार्य कमी के लिए खुद को तैयार करते हैं। पारा बढ़ता है तो प्रदेश में जल-तनाव भी बढ़ जाता है। राजस्थान में वर्षा जल को अलग-अलग तरीकों से और उद्देश्यों के लिए इकट्ठा करने की परंपरा रही है। सबसे खास बात यह है कि पानी के स्रोत के निर्माण व संरक्षण में यहां की महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

वस्तुतः ये जल स्रोत एक पूजा-स्थल की भांति पवित्र अध्यात्म लोक है, जहाँ मनुष्य के संपूर्ण अस्तित्व को ऊँचा उठाकर उसे मुक्तावस्था की ओर प्रेरित करता है, जिससे मनुष्य जीवन शोक और विषाद उत्पन्न करने वाले बंधनों से मुक्त हो जाता है। दक्ष सूत्रधारों ने इन बावड़ियों की निर्माण योजना कुछ इस तरह से बनायी कि जल का सदुपयोग भी हो और बाहरी घटकों से वह जल सुरक्षित भी रहे एवं उसकी पवित्रता के लिए कहीं संकरा कहीं चौड़ा सीढ़ीदार मार्ग बनाया जो बेहतरीन रूप से कलात्मक प्रस्तारों से आच्छादित रहता है। सोपानयुक्त बावड़ी के स्थापत्य में सामान्यतः कुण्ड या कुओं के अंगों का सन्निवेश रहता है।

बावड़ी का कुआंनुमा भाग मुख्यतः चार प्रकार का होता है—(1) वर्गाकार (2) आयताकार (3) वृत्ताकार (4) अष्टभुजाकार। इसी कुआंनुमा भाग के ऊपर कलात्मक मण्डप होता है और कूप तक पहुंचने के मार्ग पर अलंकृत मेहराब और स्तंभ द्वार (तोरण द्वार) बनाए जाते थे। जल स्तर भूमि के स्तर से काफी नीचे होता है। अतः सोपानों की योजना श्रृंखला में तथा अंतराल युक्त की जाती थी जिससे बावड़ी के घटते-बढ़ते जल स्तर का प्रभाव उसके उपयोग में बाधक न हो। बावड़ी का निर्माण जल स्रोत के चारों तरफ सीढ़ियां बनाकर ऊपर कक्षों का निर्माण किया जाता है इसमें अधिष्ठाता देव के रूप में किसी न किसी देवता की प्रतिष्ठा भी की जाती थी। इसमें जल देवता, कश्यप, मकर, वराह,

गंगा, भू-देवी, विष्णु एवं दशावतार प्रमुख हैं। कतिपय बावड़ियों पर सिंचाई हेतु रहट भी लगाए जाते थे। एक से अधिक मंजिलों में निर्मित बावड़ियों में दरवाजे, सीढ़ियों की दीवारें तथा आलिये (ताकें) बने होते हैं। बावड़ियों में प्रवेश हेतु बनी सीढ़ियां सीधे जल तक नहीं जाती हैं बल्कि बीच-बीच में अंतराल बनाए गए जिससे किसी भी प्रकार की अनहोनी से बचा जा सके। इस तरह जल तक पहुंचने के मार्ग को सहज, सुगम एवं सरल बनाया जाता था।

बनेड़ा की करनी भरनी बावड़ी

यह बावड़ी बनेड़ा से शाहपुरा जाने वाले मार्ग पर करीब 5 किलोमीटर की दूरी पर माइनिंग एरिया के समीप स्थित है। जनमानस में यह किंवदंती प्रचलित है कि करनी और भरनी नामक दो सहेलियां थी। वो जंगल में बकरियां चराने के लिए जाती थी और रोजाना थोड़ा थोड़ा बावड़ी को खोदती थी। ऐसे परिश्रम करते हुए उन्होंने पूरी बावड़ी बनाकर एक मिसाल कायम कर दी। वर्तमान में इस की हालत काफी खराब है और सिर्फ अवशेष मात्र ही देखे जा सकते हैं।

बनेड़ा बाईजी राज की बावड़ी

बनेड़ा राजा सरदार सिंह की दादी एवं राजा सूर्यमल की पटरानी धन कुंवर बाघेली (रीवा) ने एक वापिका बनेड़ा के दक्षिण-पश्चिम में करीब 3 किलोमीटर दूर बनवायी जिसकी नींव 1743 ई. में लगी और प्रतिष्ठा शुक्रवार, अप्रैल 5, 1745 ई. (चैत्र सुदि 15 वि.सं.1801) को हुई। बावड़ी का नाम बाईजी राज की बावड़ी है और इसके सामने एक शिखरबंद महादेव जी का मंदिर भी बनवाया।⁴ बावड़ी में सीढ़ियों की लंबाई 2.84 मीटर, चौड़ाई 0.35 मीटर तथा सीढ़ियों की ऊंचाई 0.22 मीटर है। प्रथम तीन सीढ़ियों के बाद 0.76 मीटर चौड़ा कूट है। फिर इसी क्रम को दोहराते हुए इसके दाहिनी ओर ताक में गणेश जी की प्रतिमा एवं बायीं तरफ जल देवता की मूर्ति लगी है। इस कूट के बाद पांच सीढ़ियों के बाद छटा कूट बना हुआ है। फिर पांच सीढ़ियों के पश्चात् 2.21 मीटर चौड़ा कूट बना हुआ है। वहीं बावड़ी पर बने मेहराबनुमा द्वार पर प्रशस्ति उत्कीर्ण है। इस द्वार के साथ दो सीढ़ियों के बाद बावड़ी का मुख्य कुण्ड 4.87 वर्ग मीटर का बना हुआ है। इस तरह कुल 25 सीढ़ियां एवं 5 कूट बने हुए हैं।⁵

शिवजी के मंदिर एवं बावड़ी के बीच 2.1 मीटर की दूरी है तथा 5 सीढ़ियों को पार करने पर शिवालय तक

पहुंचा जा सकता है। बावड़ी पर बने ढाणे (सिंचाई हेतु निर्मित साधन) से इस बात की स्पष्ट जानकारी मिलती है कि इस वापिका के जल का उपयोग मंदिर में जल चढ़ाने के साथ-साथ आसपास के खेतों में सिंचाई हेतु उपयोग में लाया जाता था।

करनी भरनी बावड़ी



बाईजी राज की बावड़ी



बनेड़ा की चंद्रबाव

इस वापिका का निर्माण बनेड़ा राजा हमीर सिंह की पुत्री चंद्र कुमारी ने 1784 ई. (वि. सं. 1841) में करवाया था। यह वापिका रामसरोवर तालाब के बांध पर नजर बाग में अक्षय भवन के सामने बनवाई गई थी। चंद्रकुमारी का विवाह सोपुर बड़ौदा हुआ था।¹ इस वापिका में पश्चिम से पूर्व की तरफ 6 मीटर लंबी सीढ़ियां 8 मीटर तक बनी हुई हैं। सीढ़ियों की चौड़ाई 0.50 मीटर तथा ऊंचाई 0.30 मीटर है। बावड़ी का मुख्य कुण्ड 6.9 मीटर लंबा तथा 8.7 मीटर चौड़ा है। इस वापिका का मीठा जल बनेड़ा गांव के सभी लोगों के पीने के काम में आता था। वर्तमान में इस बावड़ी को एक जाल द्वारा ढक रखा है।⁷

बनेड़ा की चौखी बावड़ी

बनेड़ा राजा सरदार सिंह की रानी अचल कुंवर नरुकी ने 1759 ई. में चारभुजा जी का मंदिर तथा 1773 ई. में श्याम बिहारी जी का मंदिर बनवाया। इसी मंदिर के पास रानी की दासी चौखी ने एक बावड़ी बनवायी।⁸ यह बड़ी ही साधारण बावड़ी थी जिसे वर्तमान में ढक दिया गया है और इसके ऊपर एक सार्वजनिक पुस्तकालय बना दिया गया है।

मान कुण्ड

बनेड़ा राजा सुरत्राण सिंह की पुत्री मानकुंवरी ने मान कुण्ड बनवाया था। मान कुंवर का विवाह नागौर के राजा बख्त सिंह के साथ हुआ था। इस कलात्मक कुण्ड का निर्माण मंगलवार, जुलाई 27, 1790 ई. में प्रारंभ किया गया जिसकी प्रतिष्ठा शनिवार, मई 7, 1803 ई. (ज्येष्ठ बुदि 3 वि.सं. 1859) को हुई।⁹ कुण्ड की लंबाई 30.48 मीटर तथा चौड़ाई 24.39 मीटर है। बहुत ही सुंदर बने इस कुण्ड में एक तरफ गवाक्ष युक्त बरामदा भी बना हुआ है। कुण्ड पर बने ढाणों से यह जानकारी मिलती है कि कुण्ड के जल का उपयोग सिंचाई कार्य के लिए भी उपयोग में लिया जाता था।¹⁰ कुओं या बावड़ी से जलोत्थान हेतु कई विधियां काम में ली जाती थी। इन सब में बैलों से जोते गए रहट का प्रचलन सबसे उत्तम था। कुओं या बावड़ी पर पत्थरों से बनाए गए मजबूत तीर पर रहट (घटी यंत्र, अरहट्टा) को स्थापित किया जाता था। रहट द्वारा निकाले गए जल के संग्रहण हेतु एक मजबूत ढाणा बनाया जाता था। ढाणे से जल को एक नाली या धोरा द्वारा अन्य स्थान पर सिंचाई हेतु खेतों तक पहुंचाया जाता था।

ये जल स्रोत प्राचीन काल से ही हमें परंपरागत रूप से शुद्ध एवं स्वच्छ जल प्रदान करते आ रहे हैं किन्तु वर्तमान में लगाए जा रहे आर.ओ. वॉटर प्लांट या फिल्टर प्लांट की आवश्यकता उस समय नहीं थी क्योंकि झीलों एवं तालाबों की भूमि से छन-छन कर (रिसता) मिनरल युक्त भूमिगत जल इनमें पहुंचता था।

कुण्ड एवं वापिका निर्माण के पीछे एक भावना यह भी रहती थी कि उसके आसपास के स्थान पर जल आवक के मार्ग भी प्रशस्त किए जाते थे जिससे बारिश के मौसम में वर्षा जल इधर-उधर व्यर्थ ना हो सके बल्कि इसमें एकत्र हो जाये। जल पुनर्भरण की यह सोच निःसंदेह प्रशंसनीय है। समयातीत आधुनिक साधनों के आगमन से इनका उपयोग धीरे-धीरे कम होता चला

गया और इन बावड़ियों का स्वरूप भी बिगड़ता चला गया। इतना ही नहीं इन वापिकाओं में जल आवक के मार्ग भी गाद एवं कूड़ा-कचरे के कारण एवं अतिक्रमण की वजह से अवरुद्ध होते चले गए। अतः इनके संरक्षण एवं संवर्द्धन की महती आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस, वोल्यूम-21, दृष्टव्य-आलेख प्रियदर्शी ओझा, 18वीं शताब्दी में निर्मित बनेड़ा का दुर्ग एक ऐतिहासिक विश्लेषण, पृ. 206, जोधपुर, वर्ष 2007
2. जेम्स टॉड एनाल्स एण्ड एनटीविचिटिज ऑफ राजस्थान, जि. 1, पृ. 116-117; श्यामलदास कृत वीर विनोद भाग 2, पृ. 789-790, दिल्ली वर्ष 1986
3. नारायण श्याम चिताम्बरे, बनेड़ा राज्य का इतिहास, पृ. 273, अजमेर, वर्ष 1964
4. नारायण श्याम राव चिदांबरे, बनेड़ा राज्य का इतिहास, पृ. 73; स्वयं द्वारा सर्वे के आधार पर
5. स्वयं द्वारा सर्वे के आधार पर
6. नारायण श्याम राव चिदांबरे, बनेड़ा राज्य का इतिहास, पृ. 110
7. स्वयं द्वारा सर्वे के आधार पर
8. नारायण श्याम राव चिदांबरे, बनेड़ा राज्य का इतिहास, पृ. 110
9. नारायण श्याम राव चिदांबरे, बनेड़ा राज्य का इतिहास, पृ. 110
10. स्वयं द्वारा सर्वे के आधार पर

बिहार में कृषक आंदोलन एवं उसका सांगठनिक प्रतिरूप : 20 वी. शताब्दी के पूर्वार्ध में

सुधीर कुमार
वैशाली (बिहार)



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

20 वीं शताब्दी का आरंभिक दशक बिहार में राष्ट्रीय चेतना के विकास का काल था। दूसरे दशक के आरंभ में ही एक पृथक प्रांत के रूप में बिहार का गठन होने से जहां एक ओर एक नवीन प्रांतीय अस्मिता के भाव का जागरण हुआ वहीं दूसरी ओर पहले से चली आ रही समस्याएं भी मुखर हो गयी। कृषक समस्या इन्हीं समस्याओं में से एक थी। इस समस्या के समाधान के लिए सबसे पहला संगठित प्रयास चंपारण सत्याग्रह था, जो 1917 में गांधी जी द्वारा चलाया गया। लेकिन कृषक समस्या का यह स्थायी निदान साबित नहीं हो पाया। अतः कालान्तर में इस दिशा में नवीन नेतृत्व में कई आंदोलनों का सूत्रपात हुआ, और बदलते समय के साथ इन कृषक आंदोलनों के सामाजिक आधार और सांगठनिक प्रतिरूप में भी कई परिवर्तन परिलक्षित हुये। स्वामी सहजानंद सरस्वती किसानों के अग्रणी नेता थे। किसान सभा के गठन के द्वारा उन्होंने कृषक आंदोलन को सांगठनिक रूप प्रदान किया। लेकिन विडम्बना यह थी उक्त किसान सभा पर भूमिहार-ब्राह्मण जाति के सुविधा-सम्पन्न रैयतों का वर्चस्व था एवं इसमें पिछड़ी जातियों की संख्या नगण्य थी। इस स्थिति ने पिछड़ी जातियों में सुरक्षात्मक चेतना को जन्म दिया। त्रिवेणी संघ की स्थापना इसी चेतना का परिणाम थी। 20वीं शताब्दी के पांचवें दशक में सम्पूर्ण प्रान्त में बकाशत संघर्ष सक्रिय रहा जिसे समाजवादियों ने नेतृत्व प्रदान किया। इस आंदोलन में दलित एवं पिछड़ी जातियों के किसानों की अच्छी-खासी सहभागिता रही। प्रस्तुत शोध आलेख में 20 वीं शताब्दी में बिहार में हुए कृषक आंदोलन एवं उसके सांगठनिक प्रतिरूप का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

संकेताक्षर : रैयत, जोत, किसान सभा, प्रजा मंडल, त्रिवेणी संघ, बकाशत संघर्ष।

20 वीं सदी का पूर्वार्ध आधुनिक भारतीय इतिहास का वह कालखंड है जिसमें भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष संगठित रूप ग्रहण कर जन आंदोलन में रूपांतरित हो गया। स्वतंत्रता आंदोलन के इस सांगठनिक रूप ने समाज के विभिन्न वर्गों में राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जागरूकता की नवीन लहर उत्पन्न कर दिया। विशेषकर कृषक वर्ग, जो बहुविध शोषण और अन्याय का प्रमुख शिकार था, धीरे-धीरे संगठित होकर अपने अधिकारों की मांग करने लगा। स्वतंत्रता आंदोलन के समानांतर सम्पूर्ण देश में कृषक आंदोलनों का भी सूत्रपात हुआ। वस्तुतः यह स्वतंत्रता आंदोलन से ही सम्बद्ध रहा और इसी का विस्तार माना जा सकता है, क्योंकि इन दो समानांतर आंदोलनों का समान उद्देश्य था—स्वतंत्रता विदेशी सत्ता के साथ—साथ देशी शोषकों से भी स्वतंत्रता। इसी कारण समानांतर चलने वाले इन दोनों आंदोलनों में उद्देश्य के स्तर पर प्रायः अंतर्विरोध दिखाई नहीं देता है। अतः कहा जा सकता है कि अपने व्यापक उद्देश्य के स्तर पर कृषक आंदोलन, राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन से ही व्युत्पन्न और इसी में अंतर्भुक्त था।

बिहार में भी किसानों ने सामंती और जमींदारी व्यवस्था के विरुद्ध सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर एक व्यापक संघर्ष छेड़ा। किसानों का यह संघर्ष लगभग अर्धशताब्दी तक चलता रहा। 20 वीं शताब्दी के आरंभिक दशक से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के दशक तक इस आंदोलन का विस्तार रहा। इस लंबे कालखंड में कृषक आंदोलनों का सामाजिक आधार और सांगठनिक प्रतिरूप भी बदलते रहे।

परिचर्चा

20 वीं सदी के पूर्वार्ध का सबसे पहला और महत्वपूर्ण कृषक आंदोलन चंपारण सत्याग्रह था। इस आंदोलन ने कृषकों के मनोबल को बढ़ाया एवं भावी कृषक आंदोलनों की पृष्ठभूमि का निर्माण किया। 20 वीं सदी के पूर्वार्ध में हुए कृषक आंदोलनों का विश्लेषण निम्नवत है—

चंपारण सत्याग्रह (1917)

बिहार के चंपारण जिले में नील के बागानों में यूरोपीय बागान मालिकों द्वारा किसानों पर तरह- तरह के अत्याचार किये जाते थे। किसानों को अपनी जमीन के 3/20 हिस्से पर नील उगाने और बागान मालिकों को निर्धारित कीमत पर नील बेचने के लिए मजबूर किया जाता था। इस प्रथा को 'तिनकठिया प्रथा' के नाम से जाना जाता है। यूरोपीय बागान मालिकों के शोषण के विरुद्ध चंपारण में नील किसान एवं मजदूरों ने स्थानीय नेता राजकुमार शुक्ल के नेतृत्व में 1916 में विद्रोह किया। “राजकुमार शुक्ल के आमंत्रण पर ही 1917 में गांधी जी चंपारण आए और यहां के किसानों को अपना हक दिलाने के लिए उन्होंने सत्याग्रह आंदोलन का सूत्रपात किया।”¹ यह बिहार के चंपारण जिला का प्रथम आंदोलन था। गांधीजी ने ब्रिटिश सरकार से बातचीत करके एक कानून (1918 में चंपारण कृषि अधिनियम) बनवाकर तिनकठिया प्रथा को समाप्त करके समस्त रैयतों का लगान भी कम करा दिया। इस सफलता ने गांधी जी के मनोबल को बढ़ाया। “गांधीजी के चंपारण सत्याग्रह को सफलीभूत करने में डॉ राजेन्द्र प्रसाद, ब्रजकिशोर प्रसाद, गौरव प्रसाद, धरनीधर, रामनौमी प्रसाद, जनकधारी प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिन्हा आदि ने अपने अपूर्व सहयोग से इस आंदोलन में सक्रिय भूमिका अदा की।”²

चंपारण सत्याग्रह का सांगठनिक प्रतिरूप

कृषक आंदोलनों में स्थानीय नेतृत्व के साथ-साथ “वाह्य हस्तक्षेप 20 वीं शताब्दी के किसान आंदोलनों की प्रमुख विशेषता रही, और यह विशेषता ठीक 1917 के चम्पारण सत्याग्रह के दिनों से ही परिलक्षित होती है, जब गांधीजी ने पहली बार किसानों के बीच अपना प्रयोग शुरू किया।”³ 1917 में चंपारण सत्याग्रह ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सविनय अवज्ञा और अहिंसक संगठनात्मक प्रारूप की नींव रखी। यह आंदोलन न केवल स्थानीय किसानों के

शोषण के खिलाफ था, बल्कि इसकी संरचना ने गांधीवादी प्रतिरोध के लिए एक व्यवस्थित ढाँचा प्रस्तुत किया। इस सांगठनिक ढाँचे की प्रमुख विशेषता एक ओर राजकुमार शुक्ल और संत राउत जैसे स्थानीय नेतृत्व का उभार था, तो दूसरी ओर समाज के अभिजन समूह जिसमें डॉ. राजेंद्र प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिन्हा, और जे० बी० कृपलानी जैसे कानूनविदों एवं शिक्षाविदों की भी सक्रिय सहभागिता थी। इस तरह इस सत्याग्रह को 20वीं शताब्दी में होने वाले जन-आंदोलनों की शुरुआत माना जा सकता है। इस आंदोलन के संगठनात्मक प्रतिरूप ने ही इसकी गतिविधियों को भी निर्धारित किया। गाँव-गाँव में ग्रामीणों के बयान दर्ज करने और सर्वेक्षण के माध्यम से शोषण के तथ्य एकत्र किए गए। इस क्रम में लगभग 800 पीड़ित किसानों के बयानों को आधार बनाकर ब्रिटिश सरकार के समक्ष शोषण के सबूत प्रस्तुत किए गए।

इस प्रकार, चंपारण सत्याग्रह का संगठनात्मक ढाँचा न केवल सामूहिक कार्यवाई की व्यवस्थित पद्धति थी, बल्कि इसने जन-आंदोलनों में नैतिक शक्ति और व्यावहारिक रणनीति के समन्वय का एक उदाहरण प्रस्तुत किया। इसी आंदोलन ने नागरिक अवज्ञा का नया मार्ग भी प्रशस्त किया, जिसने भावी आंदोलनों की दिशा निर्धारित की। इस आंदोलन में प्रयुक्त कानूनी प्रक्रियाओं और जनदबाव के संयोजन ने औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध एक प्रभावी उपकरण का काम किया। “देखते-ही-देखते गांधीजी पूरे भारत के मानस पटल पर छा गये। भारत में उनके सत्याग्रह एवं अहिंसा के अमोघ अस्त्र का पहला सफल परीक्षण हुआ था।”⁴ इसके साथ ही बिहार के किसान संघर्ष ने राष्ट्रीय रंगभूमि में पदार्पण किया। इसी आंदोलन से गांधी के नेतृत्व को राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता मिली फलस्वरूप बिहार सहित समूचे देश में कांग्रेस के जनाधार में भी वृद्धि हुई।

चंपारण सत्याग्रह की सीमा

चम्पारण सत्याग्रह में मूलतः धनी किसानों एवं जमींदारों की सहभागिता थी, इस स्थिति ने इस आंदोलन की व्यापकता को सीमित कर दिया था। अतः यह आंदोलन धनी किसानों एवं जमींदारों के हित साधन तक ही सीमित रहा। अपने वर्ग-संघर्ष विरोधी विचार एवं स्थानीय राजनीतिज्ञों के सुझाव पर गांधीजी ने जमींदारों और किसानों के बीच के जटिल आर्थिक

सम्बंधों को गहराई से छानबीन करने के स्थान पर इसे नजरअंदाज कर दिया क्योंकि उनका यह मानना था कि ऐसा कोई आंदोलन जो देश के विभिन्न वर्गों के बीच हो वर्ग-विरोध पैदाकर स्वतंत्रता आंदोलन को कमजोर बनायेगा।

इस प्रकार, इस आंदोलन के दौरान “गांधीजी का कृषक मजदूरों से सम्पर्क सतही रह गया और किसानों के प्रति उनका रवैया था जो राजनीतिज्ञ या फिर करुणामय ही रह गया।”⁵

दरभंगा किसान आंदोलन (1919)

चम्पारण सत्याग्रह के बाद बिहार में किसानों का सबसे बड़ा और संगठित संघर्ष दरभंगा के जमींदार के विरुद्ध स्वामी विद्यानंद के नेतृत्व में प्रारंभ हुआ। “गांधी जी के चम्पारण सत्याग्रह से प्रेरणा पाकर छपरा जिला के विशुभरण प्रसाद नामक एक किसान नेता ने किसानों की स्थिति को सुधारने के लिये जमींदारों के विरुद्ध आन्दोलन करने का बीड़ा उठाया। स्वभावतः सभी छोटे किसानों ने स्वामीजी का साथ दिया।”⁶ यह आंदोलन जमींदारी प्रथा और अत्यधिक लगान वसूली के खिलाफ था, जिसमें दरभंगा राज के महाराजा रामेश्वर सिंह के शासनकाल में किसानों पर लगाए गए अन्यायपूर्ण करों का विरोध शामिल था। वस्तुतः विशुभरण प्रसाद का सम्बंध कायस्थ परिवार के सम्पन्न किसान वर्ग से था। यही “विशुभरण प्रसाद स्वामी विद्यानन्द के नाम से विख्यात हुए।”⁷ उन्होंने मधुबनी सब-डिविजन के नरार गांव के किसानों को संगठित कर जून 1919 ई. वी में आन्दोलन की शुरुआत की। “इस अभियान की मुख्य मांगें थी- लगान के वृद्धि पर रोक, लगभग समस्त गाँवों में चारागाह की व्यवस्था, अपनी जोत के पेड़ों पर रैयतों का पूर्ण अधिकार, जमीन विक्रय पर जमीन के मूल्य का 25 प्रतिशत अग्रिम के तौर पर लेने का विरोध, बिना मजदूरी दिए किसी को मुफ्त में काम कराने का विरोध, रैयतों को अपनी कायमी भूमि पर जमींदारों को बिना किसी पूर्वानुमति के घर बनाने या कुआँ खोदने का अधिकार, अबवाबों का समापन आदि।”⁸ स्वामी विद्यानंद के अभियान को रैयतों का पूरजोर समर्थन मिला वही दूसरी ओर दरभंगा राज की तरफ से विरोध मिला। स्वामी विद्यानंद ने इस आंदोलन में कांग्रेस से सहयोग माँगा। शुरु में कांग्रेस ने कुछ सहानुभूति का प्रदर्शन किया। लेकिन शीघ्र ही दरभंगा के महाराजा के पक्ष में कांग्रेस ने इस आन्दोलन के प्रति उदासीनता का रुख अपनाया। कांग्रेस के बहुत

सारे नेता स्वामी विद्यानंद के आन्दोलन के खिलाफ थे। क्योंकि वे जमींदारी पृष्ठभूमि के थे और वे नहीं चाहते थे कि जमींदारी प्रथा के विरुद्ध कोई आंदोलन जोर पकड़े।”⁹

कांग्रेसियों का यह मानना था कि किसानों की समस्याओं को गांधीजी द्वारा चलाए गये सत्याग्रह आन्दोलनों के द्वारा ही उठाया जाए ताकि यह वर्ग-संघर्ष का स्वरूप ग्रहण नहीं कर सके। “बिहार के कांग्रेसी नेताओं ने दरभंगा महाराज के खिलाफ चल रहे आन्दोलन को समाप्त करने में दरभंगा महाराज की काफी मदद की।”¹⁰ स्वामी विद्यानंद द्वारा चलाये गये आंदोलन का विस्तार धीरे-धीरे पूर्णिया, सहरसा, भागलपुर और मुंगेर जिले तक हो गया। दूसरी ओर “दरभंगा राज ने किसानों के असंतोष को दूर करने के लिए कुछ रियायतों की घोषणा की और स्वामी विद्यानंद का किसान आन्दोलन धीरे-धीरे समाप्त हो गया।”¹¹

सांगठनिक प्रतिरूप

स्वामी विद्यानंद ने किसानों को संगठित करने के लिए गाँव-गाँव में जनसभाएँ आयोजित कीं और उन्हें जमींदारों के भू-राजस्व नीतियों के विरोध के लिए प्रेरित किया। चंपारण सत्याग्रह से प्रेरित होकर, उन्होंने आंदोलन के अहिंसक तरीकों को ही अपनाया। इसके साथ ही असहयोग आंदोलन (1920) के दौरान उन्होंने किसानों को कांग्रेस से जोड़कर राष्ट्रीय आंदोलन का हिस्सा बनाया। इस प्रकार इस आंदोलन की प्रमुख सांगठनिक विशेषता स्थानीय नेतृत्व और जनसंगठन था।

सीमाएँ और परिणाम

दरभंगा कृषक आंदोलन सांगठनिक रूप से आम रैयतों का आंदोलन था एवं चंपारण सत्याग्रह की तरह इसे न तो किसी राजनीतिक दल का समर्थन प्राप्त था और न ही बुद्धिजीवियों का सहयोग। ऐसी स्थिति में दरभंगा महाराज द्वारा किसानों के लिए कुछ रियायतों की घोषणा की गई। इन रियायतों ने आंदोलन की तीव्रता को कम कर दिया। दूसरी ओर कांग्रेस के सुधारवादी दृष्टिकोण और जमींदार-समर्थक रुख ने आंदोलन को पूर्ण सफलता से रोका। अतः कहा जा सकता है कि इस आंदोलन को आंशिक सफलता ही प्राप्त हो सकी। अपनी सांगठनिक संरचना के कारण यह आंदोलन पूर्णतः सफल नहीं हो पाया। लेकिन इस आंदोलन का सबसे बड़ा महत्व इस तथ्य में है कि इसने बिहार में

किसान सभा (1928) के उदय की पृष्ठभूमि तैयार की।

किसान सभा एवं स्वामी सहजानंद सरस्वती

बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में भारतीय ग्रामीण समाज गहरे शोषण, अन्याय और सामाजिक असमानता से जूझ रहा था। ऐसे समय में स्वामी सहजानंद सरस्वती ने किसानों को संगठित कर एक सशक्त आंदोलन खड़ा किया। उनकी किसान सभा न केवल एक संगठन थी, बल्कि यह भारतीय कृषक चेतना की क्रांतिकारी अभिव्यक्ति थी। बिहार में स्वामी सहजानंद सरस्वती किसानों के अग्रणी नेता थे। किसान सभा के गठन के द्वारा उन्होंने कृषक आंदोलन को सांगठनिक रूप प्रदान किया। इससे पूर्व स्वामी जी सन् 1920 ई.वी. में गाँधीजी के आह्वान पर राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़े थे। इन आंदोलनों के दौरान उन्हें कई बार वर्षों जेल की सजा भुगतनी पड़ी। इन आंदोलनों में सक्रियता के बीच ही जब उन्होंने यह देखा कि देश की 80 प्रतिशत जनता जो ग्रामीण किसान है—जमींदारी शिकंजे से उत्पीड़ित हो कराह रही है, यह स्थिति उनके लिए असह्य थी। उन्होंने इस स्थिति की ओर गाँधीजी और अन्य कांग्रेसी नेताओं का ध्यान आकृष्ट कराया। किंतु इस मुद्दे पर कांग्रेस की नीति टाल-मटोल वाली थी। जब स्वामीजी को कृषक मुद्दे पर कांग्रेस की भूमिका आशाप्रद प्रतीत नहीं हुई। तब उन्होंने कांग्रेस संगठन से पृथक होकर किसान आंदोलन का सूत्रपात किया। सन् 1927 ई. वी. में बिहटा नामक स्थान पर ‘पश्चिमी पटना जिला किसान सभा’ के रूप में किसान सभा की नींव पड़ी। इसी संगठन ने सन् 1929 में सोनपुर के मेले में ‘बिहार प्रांतीय किसान सभा’ का रूप धारण किया तथा सन् 1936 के लखनऊ कांग्रेस के अवसर पर ‘अखिल भारतीय किसान सभा’ के रूप में उसका संगठन किया गया। तत्पश्चात् देशभर में घूम-घूम कर स्वामी जी ने किसान आंदोलन को जगाया। इस दौरान रामगढ़ (बिहार), फैजपुर (महाराष्ट्र), कोमिल्ला (बंगाल), विजयवाड़ा (आंध्र) आदि में किसान सभा के सफल अधिवेशन हुए, जिनमें लाखों किसानों ने भाग लिया। स्वामी जी के इस अथक एवं निरन्तर प्रयास के फलस्वरूप किसान सभा का सांगठनिक आकार अब कांग्रेस के समानांतर दिखाई देने लगा। वस्तुतः किसान सभा का जन्म जमींदारी शोषण, बकाशत भूमि विवाद, और कृषि संकट के विरोध से हुआ। यह आंदोलन

वर्गीय चेतना को केन्द्र में रखते हुए संगठित हुआ, न कि केवल जातीय या क्षेत्रीय भावना पर। अपने आरंभिक चरण में ‘किसान आन्दोलन एक सुधारवादी ढाँचे के अन्तर्गत ही कार्य कर रहा था, क्योंकि किसान सभा जीवन यापन के लिए कृषि पर आधारित जमीन्दार एवं रैयत दोनों ही को किसान मानती थी तथा दोनों के बीच टकराव उत्पन्न करना नहीं चाहती थी।’¹²

स्वामीजी के नेतृत्व में किसान सभा की बढ़ती हुई शक्ति एवं युयुत्सा ने बहुतेरे समाजवादियों को अपनी ओर आकर्षित किया। किसान सभा में समाजवादियों के शामिल हो जाने से इसे सामाजिक विकास की एक वैज्ञानिक दृष्टि प्राप्त हुई। “1934 ई.वी. में भूकम्प के दौरान गाँधी एवं उनके अनुयायियों के व्यवहार से निराश स्वामीजी ने समाजवादियों का स्वागत खुले दिल से किया, धीरे-धीरे किसान सभा पर समाजवादी प्रभुत्व बढ़ने लगा।”¹³ 1935 ई.वी. के अंत तक किसान सभा राष्ट्रीय आन्दोलन को बल प्रदान करती हुई एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभर तो चुकी थी परन्तु कांग्रेस पार्टी के एक उपांग की तरह ही नजर आ रही थी, क्योंकि इसके बहुत से नेता कांग्रेस के भी सदस्य थे। किसान सभा के अध्यक्ष सहित कुछ चतुर कांग्रेसी राजनीतिज्ञों की यह मंसा थी कि किसान सभा को कांग्रेस के सहायक संगठन के रूप में कायम रखा जाए। इससे भिन्न सामाजिक विकास की एक नयी विचारधारा से अनुप्राणित किसान सभा के लिए किसानों के एक वर्ग संगठन के रूप में कांग्रेस का उपांग बने रहने में कठिनाई थी। नवीन वर्ग-चेतना से लैस होकर स्वामीजी एवं उनके सहयोगियों ने जमींदारों पर तीखा प्रहार करना शुरू कर दिया। कांग्रेस के जमीन्दार सदस्य भी बख्शे नहीं गए। प्रदेश कांग्रेस कार्य-समिति के दीप नारायण सिंह को स्वयं स्वामीजी ने एक दमनकारी जमींदार बताया। इसके परिणामस्वरूप वर्ग सहयोग में आस्था रखनेवाला प्रादेशिक कांग्रेस नेतृत्व अत्यधिक चिंतित हो उठा। किसान सभा को प्रभावहीन बनाने के उद्देश्य से प्रदेश कांग्रेस ने किसानों की शिकायतों की जाँच करने के लिए एक समिति गठित की, जिसमें एक भी किसान कार्यकर्ता शामिल नहीं किए गए। “वास्तव में यह समिति किसान सभा के विरुद्ध एक प्रचार-हथकंडा के रूप में काम करने लगी अन्यथा कांग्रेस जमींदार के विश्वास एवं समर्थन से हाथ धो बैठती। अपने भ्रमण के

क्रम में यह समिति जमीन्दारों को इस बात से अवगत कराती चल रही थी कि किसान सभा द्वारा उन पर किए जा रहे प्रहारों से कांग्रेस का कोई लेना-देना नहीं है। इस समिति की अप्रकाशित रपट में किसान-सभा एवं उसके नेताओं एवं कार्यक्रमों की भरपूर निंदा की गई थी।¹⁴

इस प्रकार, कांग्रेस एवं किसान सभा के मध्य वैचारिक दूरियां बढ़ने लगी, और किसान सभा पर समाजवादी विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा। स्वामी जी का कांग्रेस से पूरी तरह मोहभंग हो चुका था। 6 नवम्बर 1938 को सिवान में एक किसान रैली को सम्बोधित करते हुए स्वामीजी ने कांग्रेस के बारे में कहा था -“कांग्रेस के सभी संघर्ष जनता द्वारा लड़े गए, जब पूँजीपति एवं जमीन्दार साम्राज्यवादी शक्तियों का साथ दे रहे थे। साम्राज्यवादियों से जब कोई आशा न रह गई, तब जमीन्दार एवं पूँजीपति कांग्रेस में शामिल होने लगे तथा इस पर अपना एकाधिकार स्थापित करने लगे।”¹⁵

विचारधाराओं के संघर्ष में व्यावहारिकता का सहारा लेने के कारण ही 1935 में बिहार प्रदेश किसान सभा ने हाजीपुर में अपने प्रांतीय अधिवेशन में जमींदारी उन्मूलन का प्रस्ताव पारित कर दिया। इस अधिवेशन के बाद तो स्वामी सहजानन्द और बिहार प्रदेश किसान सभा की समानान्तर चलती हुई गतिशीलता और भी गतिमान हो गयी। इसी गतिशीलता और प्रगति ने स्वामीजी को कांग्रेस मंत्रीमंडल (1937-39) के काल में बिहार किसानों की सबसे बड़ी लड़ाई लड़ने पर मजबूर किया। स्वामीजी ने कांग्रेस द्वारा लगाए गए किसी भी पाबन्दी की परवाह नहीं की। प्रदेश कांग्रेस की कार्यकारिणी के द्वारा पूरे बिहार में उनकी सभाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिए गए और कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को उसमें किसी भी तरह से शरीक न होने की आज्ञा दी। किन्तु इस दौर में भी स्वामी सहजानन्द की निरंतर सांगठनिक सक्रियता के कारण किसान आन्दोलन इस बीच अपनी तीव्रतम बिन्दु पर पहुँच गया। “इस काल में हुए नवादा जिले में रेडड़ा, मझियावां और मुंगेर जिले के बड़हिया टाल के किसान सत्याग्रह अपना ऐतिहासिक महत्व रखते हैं।”¹⁶ बड़हिया टाल के किसानों, जिनमें दुसाध, धांगर, धानुक, मल्लाह, ढाढी जाति के लोग प्रमुख थे, की तीव्र बकाशत संघर्ष तथा धनी किसानों की किसान सभा से दुराव ने स्वामीजी को गरीब किसानों के करीब ला दिया। उन्हें यह विश्वास हो गया कि क्रान्ति की

अगुआई यही किसान कर सकते हैं। 1940 के बाद की जेल-यात्रा और जेल में मार्क्सवादी साहित्य के गहन अध्ययन ने स्वामीजी की स्थापनाओं को और भी बल दिया। जेल से निकलने के बाद 1942 में शेरघाटी में बिहार प्रांतीय किसान सभा के नवें अधिवेशन में सभापति के पद से भाषण करते हुए स्वामीजी ने कहा-- ‘किसान सभा के वास्तविक आधार छोटे किसान और खेत मजदूर ही है।’¹⁷ विजयवाड़ा सम्मेलन में अध्यक्ष पद से बोलते हुए उन्होंने कहा-- “मध्यम और बड़े किसान आज किसान सभा का इस्तेमाल अपने फायदे के लिए कर रहे हैं, जबकि हम उनका उपयोग सबसे गरीब और त्रस्त तबकों में वर्ग-चेतना जगाने के लिए करना चाहते हैं। हमारे विचार से किसान वही हैं जो या तो बिल्कुल भूमिहीन हैं या जिनके पास बहुत कम जमीन हैं। ऐसे ही सर्वहारा अर्ध-सर्वहारा का संगठन किसान सभा है।” स्वामीजी ने अपनी मृत्यु के कुछ ही दिनों पूर्ण 1949 में अपनी पुस्तक ‘महारुद्र के महातांडव’ में यह आशा व्यक्त की कि ग्रामीण सर्वहारा वर्ग अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रहा है। जब वह पूरी तरह से सचेत हो जाएगा तब महातांडव की शुरुआत होगी और वर्तमान ग्रामीण शोषक व्यवस्था का विध्वंस हो जाएगा।

इस प्रकार स्वामीजी के जीवन का इतिहास क्रांतिकारी परिवर्तनों की एक लम्बी कहानी है। जाति विशेष के वर्चस्व के विरोध में आवाज बुलन्द करने वाले संन्यासी से साम्राज्यवाद विरोधी घनघोर गांधीवादी और फिर समाजवादी समाज की स्थापना करने के लिये सतत संघर्षशील क्रान्तिकारी रूप में स्थापित होनेवाले स्वामी विचारों और कर्मों में लगातार प्रगति के उच्चतम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

किसान सभा का सांगठनिक प्रतिरूप

बिहार में जमींदारों का एक बड़ा भाग बाभन (भूमिहार, ब्राह्मण) जाति से सम्बद्ध था। टिकारी, हथुआ, बेतिया जैसे बड़े-बड़े रियासतों के मालिक इसी जाति से थे। पटना, मुंगेर, गया, मुजफ्फरपुर, चंपारण आदि जिलों में कायमी रैयतों का बड़ा भाग भी इसी जाति का था। प्रधान भूमिहार सभा को राजे-रजवाड़ों का सीधा संरक्षण मिला था। वाराणसी के महाराजा तो अध्यक्ष थे, हथुआ, शिवहर और अमावां के राजा इसके संयुक्त अध्यक्ष थे। जाति की इस अंदरूनी संरचना के कारण भूमिहारों का जातीय आन्दोलन धीरे-धीरे दो दिशाओं में आगे बढ़ने लगा। एक धारा शिक्षा और संवैधानिक

उपायों के द्वारा प्रांतीय उत्थान में लगी थी और इसका प्रतिनिधित्व गणेश दत्त जैसे नेता करते थे। दूसरी धारा आप भूमिहारों को उत्थान करने के क्रम में रैयतों के साथ अत्याधिक सम्बद्ध हुई और बिहार में रैयतों के संगठित आन्दोलन की संस्थापक धारा बन गई। इसका प्रतिनिधित्व स्वामी सहजानन्द जी करते थे। 1927 में स्वामी सहजानन्द सरस्वती का भूमिहार महासभा की राजनीति से मोहभंग हुआ और उन्होंने जमींदार भूमिहारों की राजनीति का विरोध करना शुरू किया। सहजानन्द जी 4 मार्च, 1928 ई. को किसान सभा का गठन किया। इसके बाद 'भूमिहार ब्राह्मण रैयतों' और 'भूमिहार ब्राह्मण जमींदारों' के मध्य मतभेद खुलकर सामने आया। तत्कालीन समय में किसान सभा अपने प्रचार में जमींदारों के सामाजिक-आर्थिक उत्पीड़न का उद्भेदन करती थी। लेकिन उसका आन्दोलन मुख्यतः 1929 ई. की महामंदी तक लगान कम करने, जमीन की क्रय-विक्रय में जमींदारों द्वारा लिए जाने वाले शुल्क को कम करने या समाप्त करने तथा प्रस्तावित काश्तकारी अधिनियम के विरुद्ध गोलबंदी पर केन्द्रित था। ये माँगे सवर्ण जाति के कायमी रैयतों के हक में थीं। अतः स्वाभाविक रूप से किसान सभा पर भूमिहार ब्राह्मण जाति के सुविधा सम्पन्न रैयतों का दबदबा था। नीचे से ऊपर तक लगभग सभी नेता भूमिहार जाति के थे। नेतृत्व में बहुत ही कम लोग दूसरी जातियों के थे। दूसरी जातियों से आने वाले प्रमुख नेताओं में पंडा यदुनंदन शर्मा, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, गुरु सहायलाल प्रमुख थे। नेतृत्व के अधिकांश लोग धनी किसान थे। इस संगठन में कोइरी, कुर्मी, यादव और धानुक समुदाय के लोगों का शायद ही कोई स्थान था।

8 मई, 1947 से 17 मई, 1947 ई.वी. तक बिहटा आश्रम में बिहार प्रांतीय किसान प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया गया था। इस शिविर में 101 किसान कैडर सम्मिलित हुए थे। इन कैडरों में पिछड़ी जाति की संख्या नगण्य थी। 1950 ई. में शाहाबाद यूनाइटेड किसान सभा की जिला कमिटी का यही रवैया था। वाल्टर हाउजर के शब्दों में- “सामाजिक दृष्टिकोण से किसान सभा के नेतृत्व में भूमिहार का वर्चस्व था।”¹⁸ परिणामतः पिछड़ी जातियों को अपनी सामाजिक-आर्थिक गतिमुक्ति का मार्ग अपनी-अपनी जाति सभाओं में दिखाई पड़ा।

किसान सभा की सीमाएँ

यद्यपि किसान सभा कृषि सम्बन्धी सवालों पर जमींदारों की खिलाफत कर रही थी लेकिन राजनीति में जातीय गुटबंदी और सामाजिक संबंध ज्यों का त्यों बरकरार था। उसमें किसी प्रकार की कमी अथवा दृढ़ परिलक्षित नहीं होती थी। इस स्थिति में दूसरी जातियों विशेषकर पिछड़ी जातियों के किसानों के मन में किसान सभा के प्रति गहरा अविश्वास पैदा हुआ जो आज भी बिहार के राजनीतिक जीवन को गहरे रूप से प्रभावित करता है। किसान सभा आन्दोलन के मुख्य मुद्दे लगान की कमी, काश्तकारी विधेयक आदि थे। निम्न जातियों के कायमी रैयतों से सवर्ण जमींदार सवर्ण रैयतों की तुलना में ज्यादा लगान वसूलते थे। भिन्न-भिन्न तरह के जाति अबवाब वसूलते थे एवं उन्हें प्रताड़ित भी करते थे। निम्न और पिछड़ी जातियों के रैयतों के मन में एक ओर सहजानन्द जी के प्रति श्रद्धा तो थी, लेकिन दूसरी ओर वे सवर्ण जमींदारों द्वारा शोषित भी हो रहे थे। तत्कालीन राजनीतिक पार्टी काँग्रेस और किसान सभा की नेतृत्वकारी समितियों में पिछड़ी जातियों की उपस्थिति शून्य थी। नगरपालिका जिला बोर्ड और कौंसिल में इन जातियों के कम ही लोग थे। इस परिस्थिति में निम्न व पिछड़ी जातियों के लोग को यह एहसास हो गया कि हमलोग लामबन्द होकर साझा संगठन बनाए ताकि इन उच्च जाति के जमींदारों से लोहा ले सकें। साथ ही सत्ता संगठन में अपनी शक्ति का एहसास करा सकें। दलित और पिछड़े वर्ग के जातियों ने 30 मई, 1933 ई.वी. को शाहाबाद जिले के करगहर में त्रिवेणी संघ की स्थापना की।

वस्तुतः किसान सभा की सबसे बड़ी सीमा यह थी की यह रैयतों के आर्थिक और सामाजिक संघर्ष का समन्वय नहीं कर पाई। भूमिहारों की सामाजिक स्थिति के प्रति उन्हें ब्राह्मण प्रमाणित करने को लेकर सहजानन्द जी ने जैसी तत्परता दिखाई थी। निम्न जातियों के सामाजिक स्थिति के प्रति सहजानन्द जी ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया। इसका अर्थ यह हुआ कि सहजानन्द जी ने उच्च जाति तथा पिछड़ी जाति के रैयतों के मध्य कोई सामंजस्य स्थापित नहीं कर सके। और किसान सभा एक शक्तिशाली वर्ग संगठन के रूप में बिहारी जीवन को प्रभावित करने में सफलता हासिल नहीं कर सकी।

बकाश आंदोलन

‘बकाश भूमि’ शब्द का अर्थ है ‘स्वयं काश्त करने

वाली भूमि”, अर्थात् जमींदारों के अधीन ऐसी भूमि जिस पर किरायेदार किसान खेती करते थे, लेकिन उस भूमि पर उनका अधिकार सीमित था। यह भूमि वह थी जिसे जमींदारों ने किसानों से लगान न चुकाने के बहाने छीन लिया था या जबर्न अपने नियंत्रण में ले लिया था। जमींदारों के इस कृत्य के विरुद्ध बिहार में स्वामी सहजानंद सरस्वती के नेतृत्व में बिहार प्रदेश किसान सभा द्वारा 1937-1938 में बकाशत आंदोलन चलाया गया था। यह आंदोलन किसानों की बेदखली और जमींदारों द्वारा बकाशत भूमि के दुरुपयोग के विरुद्ध था। 1946-47 ई. में जब एक ओर पूरे देश में स्वतंत्रता की लहर दौड़ रही थी तो वहीं दूसरी तरफ बिहार के ग्रामीण इलाकों में बकाशत जमीन को लेकर हिंसा छिड़ी थी। उस समय पूरे बिहार में 20 लाख एकड़ बकाशत जमीन थी। कई वर्षों से खेत जोत रहे निर्धन कायमी और दर रैयतों को विभिन्न बहाने बनाकर जमींदार उन्हें कायमी अधिकार से वंचित कर रहे थे। जिसके परिणामस्वरूप पूरे सूबे में बकाशत जमीन को केन्द्र कर किसानों का हिंसात्मक आन्दोलन प्रारंभ हो गया। किसानों ने पूरे बिहार में आन्दोलन को सक्रिय कर दिया। किसानों की मुख्य माँग थी जमींदारों की बकाशत जमीन की उनके नाम से बन्दोबस्ती और नजराना प्रथा की समाप्ति। शाहाबाद में माहुर से शुरू होकर राजपुर, करगहर, रामगढ़ आदि क्षेत्रों में रैयत गोलबन्द होने लगे। “आन्दोलनरत किसानों में 35 प्रतिशत अनुसूचित जाति और पिछड़ी व निम्न जाति के थे।”¹⁹

इस आंदोलन को अब किसान सभा से अलग निम्न जातियों से सम्बद्ध समाजवादी नेताओं ने नेतृत्व प्रदान किया। इस आंदोलन को डॉ. राम मनोहर लोहिया एवं कम्युनिस्ट पार्टी का समर्थन प्राप्त हुआ। तत्कालीन बिहार में बकाशत संघर्ष के क्रम में रैयतों को जमींदारों के हमलों तथा उस समय के प्रशासन की दमनात्मक कार्रवाइयों का सामना करना पड़ा। इस संघर्ष में अनेक रैयत मारे गए तथा अनेक घायल हुए। जमींदार निजी सेनाएँ गठित कर रहे थे। 18 अप्रैल, 1947 ई को जमींदारों के साथ गाँधीजी ने वार्तालाप शुरू किया, इन्होंने बिहार के जमींदारों को अगाह किया कि मौजूदा समय में जमींदार या पूँजीपति मजदूरों या श्रमिकों को दबाने की कोशिश करेंगे तो शांतिपूर्वक रह नहीं सकेंगे। इसलिए जमींदार और श्रमिक एक-दूसरे के पूरक हैं। इसलिए दोनों आपसी समन्वय बनाकर समाज में रहे।

बाद में चलकर देश में जमींदारी उन्मूलन कानून लागू हुआ। चूंकि किसान सभा की प्रमुख मांग जमींदारी उन्मूलन की थी। जैसे ही जमींदारी उन्मूलन हुआ इस संगठन की उपादेयता भी सीमित हो गई।

निष्कर्ष

बिहार में 20वीं शताब्दी के दौरान कृषक आंदोलनों का इतिहास सामाजिक परिवर्तन, राजनीतिक चेतना और वर्गीय संघर्षों का समग्र चित्र प्रस्तुत करता है। इस कालखंड की शुरुआत राष्ट्रीय चेतना के विकास एवं प्रांतीय अस्मिता के उभार के साथ हुई, जिसने सामाजिक समस्याओं को नए स्वरूप में उजागर किया। कृषक समस्या, जो अंग्रेजी शासन और जमींदारी व्यवस्था के शोषण से उत्पन्न हुई थी, इसका सबसे पहला संगठित प्रतिरोध चंपारण सत्याग्रह (1917) के रूप में सामने आया। यद्यपि यह आंदोलन प्रतीकात्मक रूप से प्रभावशाली रहा, परंतु स्थायी समाधान की दिशा में यह अपर्याप्त सिद्ध हुआ।

इस कमी की पूर्ति के लिए स्वामी सहजानंद सरस्वती के नेतृत्व में किसान सभा का गठन हुआ जिसने कृषक आंदोलनों को संगठित मंच और दिशा प्रदान की। हालांकि, किसान सभा में जातीय असमानता और भूमिहार-ब्राह्मण रैयतों का वर्चस्व बना रहा, जिससे पिछड़ी जातियों के बीच असंतोष जन्मा। यही असंतोष सामाजिक न्याय की आकांक्षा में परिणत हुआ और त्रिवेणी संघ जैसे संगठनों की नींव पड़ी, जो पिछड़ी जातियों की राजनीतिक एवं सामाजिक हिस्सेदारी की मांग का प्रतीक था।

कालांतर में, विशेषतः 1940 के दशक में, बकाशत संघर्ष ने सामाजिक रूप से उपेक्षित दलित एवं पिछड़ी जातियों को प्रतिरोध का माध्यम दिया। इस संघर्ष का नेतृत्व समाजवादी विचारधारा से प्रेरित नेताओं ने किया, जिससे यह आंदोलन न केवल भूमि-संबंधी अधिकारों की लड़ाई बना, बल्कि सामाजिक न्याय की दिशा में भी एक सशक्त कदम सिद्ध हुआ।

इस प्रकार, बिहार के कृषक आंदोलनों का सांगठनिक प्रतिरूप समय के साथ बदला और उसमें सामाजिक न्याय, जातीय चेतना तथा वर्गीय संघर्ष के तत्व प्रमुख होते गए। ये आंदोलन बिहार की सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना को नई दिशा देने वाले प्रमाणित हुए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, डॉ. राधा कृष्ण एवं मिश्र, गुलाब; बिहार का इतिहास (2008), जेनरल बुक एजेंसी, पटना, पृ. -265
2. वही, पृ.-265.
3. मिश्र, विनोद; आधुनिक इतिहास में बिहार के किसान, अभिनव कदम-26, वर्ष-16, अंक-26, दिसम्बर 2011-मई-2012, मऊ उत्तर प्रदेश, पृ 421.
4. दास, प्रमोदानन्द एवं कुमार अमरेन्द्र; समकालीन विश्व एवं भारत, भाग-2, पटना, 2010, पृ0 97.
5. गवर्नमेंट ऑफ बिहार एंड उड़ीसा, पुलिस एक्सप्रेक्ट, बिहार स्पेशल ब्रांच, 1920.
6. पीजेंट्स प्रोटेस्ट एन्ड दरभंगा राज (1919-20), पृ0-69.
7. दास, प्रमोदानन्द एवं कुमार अमरेन्द्र; समकालीन विश्व एवं भारत, भाग-2, पटना, 2010, पृ0 99.
8. शर्मा, डॉ. राधा कृष्ण एवं मिश्र, गुलाब; बिहार का इतिहास (2008), जेनरल बुक एजेंसी, पटना, पृ. -266.
9. हेनिंगम, स्टीफन; पीजेन्ट मूवमेंट इन कोलोनियल इंडिया, पृ - 197.
10. कुमारी, सरिता; 'बिहार में किसान आंदोलन के बदलते आयाम विमर्श, भॉलूम नं 1. पटना, जून, 2005, पृ -98.
11. दास, प्रमोदानन्द/कुमार अमरेन्द्र, बिहार : इतिहास एवं संस्कृति, पटना, 2008, पृ 224.
12. द सर्चलाइट, 12.05.1933
13. गवर्नमेंट ऑफ बिहार एन्ड उड़ीसा, होम स्पेशल, फाइल नं.-10 ऑफ 1934.
14. टॉमलिंग्सन, बी. आर; इंडियन नेशनल कांग्रेस एन्ड द राज, लंदन, पृ -77-78.
15. अमृत बाजार पत्रिका, 12.01.1938.
16. शर्मा, कौशल किशोर; अग्रेगोरिअन मूवमेंट एन्ड कांग्रेस पॉलिटिक्स इन बिहार, दिल्ली, 1989.
17. सरस्वती, सहजानंद; अध्यक्षीय भाषण, नवां बिहार प्रांतीय किसान सम्मेलन, शेरघाटी (गया), 1942.
18. शर्मा, डॉ. राधा कृष्ण एवं मिश्र, गुलाब; बिहार का इतिहास (2008), जेनरल बुक एजेंसी, पटना, पृ. -269.
19. वही, पृ.-270.

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और चंद्रशेखर आजाद

डॉ. ईश्वरचन्द्र शर्मा

सह आचार्य, राजकीय कन्या महाविद्यालय, मगरापुंजला, जोधपुर



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

ब्रिटिश साम्राज्य के दासता की बेड़ियों से मुक्ति हेतु भारत में 1857 की क्रांति के बाद से राष्ट्रीय आन्दोलन ने गति पकड़ी। इस राष्ट्रीय आन्दोलन में भारत के विभिन्न महापुरुषों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। इन महापुरुषों में चंद्रशेखर आजाद का नाम प्रमुख है। प्रारम्भ में महात्मा गांधी से प्रभावित होकर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने वाले अमर शहीद चंद्रशेखर आजाद आगे चलकर क्रांतिकारी आन्दोलन के प्रमुख नेता बने। उन्होंने ब्रिटिश शासन में भय उत्पन्न कर उसकी जड़ों को हिलाने का काम किया, जिसका परिणाम 15 अगस्त 1947 को प्राप्त स्वतंत्रता के रूप में हमारे सामने आया। बचपन से ही राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधियों में सक्रिय भाग लेने वाले चंद्रशेखर आजाद निर्भीक एवं साहसी व्यक्तित्व के धनी थे। अंग्रेज उनसे डरते थे। वे अन्तिम समय तक अंग्रेजों की गिरफ्त में नहीं आए। जब उन्हें लगा कि वे अंग्रेजों की पकड़ से बच नहीं पाएंगे तो स्वयं ने अपनी पिस्तौल की गोली से अपनी इहलीला समाप्त कर दी। मैं ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन पद्धति के माध्यम से किए गए शोध के आधार पर अपने इस शोध पत्र में चंद्रशेखर आजाद के जीवन के विभिन्न पक्षों को बताते हुए यह बताने की कोशिश करूंगा कि चंद्रशेखर आजाद का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की विभिन्न गतिविधियों में क्या योगदान रहा, जिसके कारण वे आज भी हम सभी के लिए प्रेरणा स्रोत तथा प्रातः स्मरणीय व्यक्तित्व के धनी बने हुए हैं।

संकेताक्षर : दासता, क्रांतिकारी आंदोलन, इहलीला, प्रेरणा स्रोत, प्रातः स्मरणीय।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन विभिन्न वर्गों, विचारों, व्यक्तियों एवं सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक संगठनों का समन्वित प्रयास था। 1857 की क्रांति ने अंग्रेजों के मन में भय पैदा कर दिया था कि यदि उन्होंने भारतीयों को सन्तुष्ट नहीं किया, दमनात्मक व्यवहार जारी रखा तो आगे चलकर उन्हें भारत में अपना राज कायम रखना मुश्किल होगा। इसीलिए उन्होंने 1858 का भारत शासन अधिनियम पारित किया, जिसके द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन, ब्रिटिश ताज ने अपने हाथ में ले लिया। भारतीय असन्तोष को नियन्त्रित करने के उद्देश्य से ही सेनानिवृत्त अंग्रेज अधिकारी ए. ओ. रूम के द्वारा 28 दिसम्बर 1885 को कांग्रेस की स्थापना की गई। धीरे-धीरे कांग्रेस के साथ देश के सभी वर्गों व विचारधाराओं के वे लोग जुड़ते गये जो राष्ट्रीय आन्दोलन में अपना योगदान देना चाहते थे।

जनवरी 1886 में दि 'इंडियन मिरर' नामक अखबार ने लिखा “बम्बई में आयोजित प्रथम राष्ट्रीय कांग्रेस हमारे देश की भावी संसद का केन्द्रक है और यह हमारे देशवासियों के लिए अकल्पनीय रूप से लाभकारी परिणामों को जन्म देगी।”

बदरुद्दीन तैयबजी ने 1887 में अध्यक्ष की हैसियत से कांग्रेस को सम्बोधित करते हुए कहा था, “यह कांग्रेस भारत के किसी एक वर्ग या समुदाय के प्रतिनिधियों से मिलकर नहीं बनी है बल्कि यह भारत के सभी समुदायों की संस्था है।”

इस प्रकार शुरुआत में कांग्रेस एक ऐसा मंच बना जिसमें राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान देने के इच्छुक भिन्न-भिन्न

विचारों एवं क्रिया पद्धतियों में विश्वास रखने वाले लोगों ने एक साथ मिलकर कार्य करना शुरू किया। किन्तु धीरे-धीरे वैचारिक भिन्नताओं साधनों के प्रति मतभेदों एवं लक्ष्यों के सन्दर्भ में अलग-अलग धारणाओं के चलते कांग्रेस में मतभेद उभरे और 1907 में कांग्रेस टुट गई। मध्यमार्गी धड़ा बहिष्कार की राजनीति के विरुद्ध था। इन लोगों का मानना था कि इसके लिए बल प्रयोग की आवश्यकता होती है, जो कि सही नहीं है। संगठन टूटने के बाद कांग्रेस पर मध्यमार्गीयों का दब-दबा बन गया। जबकि तिलक के अनुयायी बाहर से काम करने लगे। दिसम्बर 1915 में दोनों खेमों में एक बार फिर एकता स्थापित हुई।

1919 के बाद अंग्रेजों के खिलाफ चल रहा संघर्ष धीरे-धीरे एक जनान्दोलन में तब्दील होने लगा। किसान, आदिवासी, विद्यार्थी और महिलाएँ बड़ी संख्या में इस आन्दोलन से जुड़ते गए। कई बार औद्योगिक मजदूरों ने भी आन्दोलन में योगदान दिया।²

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के महानायक चन्द्रशेखर आजाद भी लगभग इस दौर में महात्मा गांधी से प्रभावित हुए और उनके द्वारा चलाए जा रहे असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने लगे। “दिसम्बर 1921 में जब गांधीजी के असहयोग आन्दोलन का आरम्भिक दौर था, उस समय महज 14 वर्ष की आयु में चन्द्रशेखर आजाद इस आन्दोलन का हिस्सा बन गए। इसमें अंग्रेजों ने उन्हें गिरफ्तार भी किया और फिर मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया गया। यहाँ पर उन्होंने मजिस्ट्रेट के सवालों के जो जवाब दिए उसको सुनकर मजिस्ट्रेट भी हिल गया था। दरअसल जब आजाद को मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया तो उसने पहले उनका नाम पूछा। जवाब में उन्होंने कहा ‘आजाद’ मजिस्ट्रेट का दूसरा सवाल था पिता का नाम, आजाद, बोले ‘स्वतन्त्रता’। जब मजिस्ट्रेट ने तीसरे सवाल में उनके घर का पता पूछा, तो उनका जवाब था ‘जेलखाना’। उनके इन जवाबों से मजिस्ट्रेट बुरी तरह से तिलमिला गया और उन्हें 15 कोड़े मारने की सजा सुनाई। हर कोड़े की मार पर वह ‘वंदे मारतम्’ और ‘महात्मा गांधी की जय’ बोलते रहे। इसके बाद ही उनके नाम के आगे ‘आजाद’ जोड़ दिया गया।”³

“चन्द्रशेखर आजाद का जन्म 23 जुलाई, 1906 को मध्यप्रदेश के झाबुआ जिले के भाबरा नामक स्थान पर हुआ था। उनके पिता का नाम पंडित सीताराम तिवारी एवं माता का नाम जगरानी देवी था। उनके पिता

ईमानदार, स्वाभिमानी, साहसी और वचन के पक्के थे, यही गुण चन्द्रशेखर को अपने पिता से विरासत में मिले थे।”⁴

“बचपन में बालक चन्द्रशेखर ने खूब धनुष बाण चलाए। जिससे उन्होंने निशाने बाजी बचपन में ही सीख ली थी। बालक चन्द्रशेखर आजाद का मन देश को आजाद कराने के अहिंसात्मक उपायों से हटकर सशस्त्र क्रांति की ओर मुड़ गया था।”⁵

“जब गांधीजी ने 1922 में असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया तो आजाद काफी खफा हुए। इसके बाद उन्होंने देश को आजाद कराने की ठान ली थी। इसके बाद एक युवा क्रांतिकारी ने उन्हें हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन क्रांतिकारी दल के संस्थापक रामप्रसाद बिस्मिल से परिचित करवाया। 1925 में हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन की स्थापना की गई थी। आजाद बिस्मिल से बहुत प्रभावित हुए। उनके समर्पण और निष्ठा को देखते हुए बिस्मिल ने आजाद को अपनी संस्था का सक्रिय सदस्य बना लिया था। आजाद अपने साथियों के साथ संस्था के लिए धन एकत्रित करते थे। अधिकतर धन अंग्रेजी सरकार से लूटकर एकत्रित किया जाता था।”⁶

“भारत के गौरव और आत्मविश्वास को जागृत करने की राष्ट्र आन्दोलन की इस यात्रा में ईमानदार और अधीर युवाओं ने असाधारण क्रम की व्यक्तिगत बहादुरी का प्रदर्शन करके जलियांवाला बाग (1919) और पहले गांधीवादी आन्दोलन (1922) की असफलता को चुनौती दी। इस अवधि के दौरान सबसे महत्वपूर्ण घटना अक्टूबर 1924 में कानपुर में कई प्रतिभाशाली और बहादुर क्रांतिकारियों का एक संगठनात्मक छत्र हिन्दुस्तान सोशलिस्ट-रिपब्लिकन एसोसिएशन के तहत एक साथ आना था। इस नये संगठन में रामप्रसाद बिस्मिल, जोगेश चटर्जी, चन्द्रशेखर आजाद, योगेन्द्र शुक्ल, सचिन्द्रनाथ सान्याल, अशफाकउल्ला खान, रोशनसिंह, राजेन्द्र लाहिड़ी, भगतसिंह, भगवतीचरण वोहरा और सुखदेव जैसे महान क्रांतिकारियों का साथ मिला। क्रांतिकारियों के इस गौरवशाली समूह में भी चन्द्रशेखर आजाद का नाम चमकता है। कुछ अर्थों में भारत के हृदय में से मूँछ घुमाते युवाओं की छवि ने लोगों को प्रभावित किया। यहाँ बीस साल का एक युवा लड़का था जिसमें शक्तिशाली औपनिवेशिक पुलिस को घुटनों पर लाने की हिम्मत और क्षमता थी। बीस के दशक में क्रांतिकारी कृत्यों की एक श्रृंखला में,

चन्द्रशेखर आजाद और उनके दोस्तों ने खुद को खबरों में बनाए रखा। ऐसे समय में जब उच्चतम स्तर के पुलिस दमन के कारण खुले सविनय अवज्ञा कार्यक्रम संभव नहीं थे, इन क्रांतिकारियों ने लाखों भारतीयों के लिए अन्तिम जीत की उम्मीदों को जीवित रखा।

आजाद के काम के तीन महत्वपूर्ण पहलू उन्हें अद्वितीय बनाते हैं। पकड़ से बचने और अपनी मृत्यु तक एक स्वतन्त्र व्यक्ति बने रहने की उनकी क्षमता शायद सबसे महत्वपूर्ण है। आजाद के व्यक्तित्व का दूसरा पहलू यह था कि वह एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, जो अपनी जाति या धार्मिक पहचान से उपर उठे हुए थे। अपना उपनाम बदलकर आजाद करना उस प्रक्रिया का शुरुआती बिन्दु था। उनसे जुड़े तमाम तथ्यों, किवदंतियों और लोककथाओं में कहीं भी उनका धर्म या जाति सामने नहीं आती। वह पहले और आखिरी में एक भारतीय थे। यह उनके व्यक्तित्व का बहुत अनोखा पहलू था और है।

आजाद के व्यक्तित्व का तीसरा पहलू जो हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन (एच आर ए) में उनके दोस्तों द्वारा साझा किया गया था, वह यह था कि उनमें इस बात की स्पष्ट दृष्टि थी कि वे जो कर रहे थे वह क्यों कर रहे थे और वे एक स्वतन्त्र भारत कैसा चाहते थे ? उदाहरण के लिए जब आजाद और उनके दोस्तों ने धन इकट्ठा करने के लिए सरकारी सम्पत्ति को लूटा, तो विचार हमेशा दो तरफा था। एक ब्रिटिश पुलिस के अधिकार को कम करना और दूसरा, एक ऐसा संगठन बनाना जो औपनिवेशिक शासन के खिलाफ खड़ा हो सके। एक न्यायपूर्ण और समान भारत बनाने के उनके महान और निःस्वार्थ आदर्शों के अनुरूप, इन इकैतियों को लोगों ने रॉबिन हुड के समान दृष्टि से देखा, आपराधिक कृत्य के रूप में नहीं, बल्कि अन्याय के खिलाफ विद्रोह के रूप में।

लम्बे समय तक जब आजाद गुप्त रूप से रहते थे, ज्यादातर झांसी के पास, उन्होंने शिक्षक की भूमिका निभाई और आस-पास के गांवों में गरीबों के बच्चों को पढ़ाया।⁷

“1925 में आजाद ने बिस्मिल एवं अन्य साथियों के साथ – मिलकर शाहजहाँपुर से लखनऊ सरकारी पैसे ले जाने वाली एक ट्रेन को लूटने की योजना बनाई। उन्होंने इस रेलगाड़ी को लखनऊ के पास काकोरी में अपना निशाना बनाया लेकिन इस घटना के इस संस्था पर कई दूरगामी प्रभाव पड़े। बिस्मिल समेत कई

क्रांतिकारी गिरफ्तार कर लिए गए। हालांकि आजाद भाग निकलने में सफल हुए।

1925 से 1928 के बीच आजाद ऐसी कई घटनाओं में भागीदार रहे थे। चाहे वह भारत के वाइसराय को बम से उड़ाने की कोशिश हो या अंग्रेज पुलिस अफसर जे पी सौंडर्स की हत्या।”⁸

“17 दिसम्बर 1928 को चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह और राजगुरु ने शाम के समय लाहोर में पुलिस अधीक्षक के दफ्तर को घेर लिया और ज्यों ही जे.पी. सौण्डर्स अपने अंगरक्षक के साथ मोटर साइकिल पर बैठकर निकले तो राजगुरु ने पहली गोली दाग दी, जो सौण्डर्स के माथे पर लग गई, वह मोटर साइकिल से नीचे गिर पड़ा। फिर भगतसिंह ने आगे बढ़कर 4-6 गोलियाँ दागकर उसे बिल्कुल ढंका कर दिया। जब सौण्डर्स के अंगरक्षक ने उनका पीछा किया, तो चन्द्रशेखर आजाद ने अपनी गोली से उसे भी समाप्त कर दिया। लाहोर में जगह-जगह पर्चे चिपका दिए गए जिन पर लिखा था – “लाला लाजपत राय की मृत्यु का बदला ले लिया गया है।”⁹

“अंग्रेज कभी मुझे जिंदा नहीं पकड़ सकेंगे। यह कहना था शहीद चंद्रशेखर आजाद का। वो आजाद जिसने अंग्रेजों के दिलों में खौफ का वो बीज बो दिया था जिससे वह कभी नहीं निकल सके थे। यही वजह थी कि जब 27 फरवरी 1931 को अंग्रेजों की एक पूरी टुकड़ी ने उन्हें एल्फ्रेड पार्क में चारों तरफ से घेर लिया था तो किसी ने उनके पास जाने तक की हिम्मत नहीं दिखाई थी। इतना ही नहीं अपनी आखिरी बची हुई गोली से उन्होंने खुद अपनी ही जान ले ली थी। इसके बाद भी किसी फिरंगी की इतनी हिम्मत नहीं हुई कि वह उनके मृत शरीर के पास जाकर उसको छूने की हिम्मत कर सके। उनके शव के पास जाने से पहले अंग्रेजों ने उनको गोली मारकर यह सुनिश्चित किया कि वह मर चुके हैं। इलाहाबाद का यह पार्क आज भी उनकी वीरता की दास्तां को सुनाता दिखाई देता है। यहां ऐसा लगता है जैसे सब कुछ आपकी आंखों के सामने हो रहा हो। ऐसा था भारत माता का वो वीर सिपाही जिसने कभी अपनी जान की परवाह नहीं की। आखिरी समय पर भी उसने सुखदेव को वहां से सकुशल निकाल दिया और अंग्रेजों से अकेले लोहा लिया था।”¹⁰

“27 फरवरी 1931 को इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में भारतीय क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद ने अंग्रेजों के

हाथों गिरफ्तार होने की जगह खुद को गोली मारने का विकल्प चुना और इलाहबाद के अल्फ्रेड पार्क को ऐतिहासिक बना दिया जो आज चंद्रशेखर आजाद पार्क के नाम से जाना जाता है। उनके जीवन में गांधी जी, लाला लाजपत राय जैसे लोगों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, लेकिन बाद में चंद्रशेखर आजाद खुद एक सोच बन गए थे जिसने अंग्रेजों की नाक में दम करके रख दिया था।

आजाद ऐसे क्रांतिकारी की तरह थे जिनका बलिदान अभूतपूर्व रहा, उनकी सोच और विचारधारा ने उन्हें एक प्रभावी नेतृत्व क्षमता प्रदान की जिसकी वजह से सरदार भगतसिंह भी उनके प्रशंसक थे।¹¹

**“महायज्ञ का नायक शेखर, गौरव भारत भू का है।
जिस का भारत की जनता से, रिश्ता आज लहू
का है।**

जिसके जीवन के दर्शन ने, इंकलाब को भाषा दी।
जिसके पिस्टल की गोली ने, हिम्मत को परिभाषा दी।

जिसने धरा गुलामी वाली, क्रांति निकेतन कर
डाली।

आजादी के हवन कुंड में, अग्नि चेतन कर डाली।

जिसकी यश गाथा भारत के, घर - घर में
नभचुम्बी हैं।

जिसकी थोड़ी सी आयु भी, कई युगों से लम्बी है।

जिसको खूनी - मेहन्दी से भी, देह स्वाना आता था।

आजादी का योद्धा केवल, चने चबेना खाता था।

उनका नाम जुंभा पर लो तो, पलकों को झपका देना।

उनकी यादों में आँखों से, दो आंसू टपका
देना।¹²

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. राष्ट्रीय आन्दोलन का संघटन - 1870-1947, हमारे अतीत III, पेज 111, NCERT
2. राष्ट्रीय आन्दोलन का संघटन - 1870-1949 पेज 114, NCERT
3. क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद का नाम बहादुरी, राष्ट्रभक्ति और बलिदान का पर्याय, जागरण, संजय तिवारी, 23 जुलाई 2020।
4. स्वतन्त्रता संग्राम के महानायक चन्द्रशेखर आजाद की जयन्ती, वेबदुनिया, हिन्दी एम. हिन्दी वेबदुनिया. कॉम।
5. क्रांतिकारी चन्द्रशेखर का स्वाधीनता आन्दोलन में महत्वपूर्ण योगदान, अमर उजाला, मेरठ ब्यूरो, 24 जुलाई 2022, रविवार पृ.1
6. क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद का नाम बहादुरी, राष्ट्रभक्ति और बलिदान का पर्याय, जागरण, संजय तिवारी, 23 जुलाई 2020।
7. चन्द्रशेखर आजाद और स्वतन्त्रता आन्दोलन की आत्मा, अभिषेक दयाल, प्रेस सूचना ब्यूरो, भारत सरकार।
8. चन्द्रशेखर आजाद - महात्मा गांधी से भिन्न चलने वाले, क्रांतिकारी की कहानी, सोनिया अग्रवाल, द प्रिन्ट, 23 जुलाई 2018
9. स्वतन्त्रता संग्राम के महानायक चन्द्रशेखर आजाद की जयन्ती, वेब दुनिया।
10. क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद का नाम बहादुरी, राष्ट्रभक्ति और बलिदान का पर्याय, जागरण, संजय तिवारी, 23 जुलाई 2020।
11. भारत में आज - चंद्रशेखर आजाद ने गिरफ्तार होने की जगह मारी थी खुद को गोली, न्यूज 18 हिन्दी, 27 फरवरी 2021, पृष्ठ 1
12. अग्निसागर, हरिओम पंवार।

भारत में सूफी साहित्य का विकास एवं महत्त्व

फातिमा बानो

शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत में सूफी साहित्य का विकास मुस्लिम सूफियों के आगमन से प्रारंभ हुआ। इन्होंने प्रेम काव्य की रचना कर अपने मत को जनता में फैलाया। इनके आचार विचार हिन्दू धर्म से बहुत कुछ मिलते जुलते थे। इन्होंने हिन्दू और मुसलमानों के बीच मेल जोल बढ़ाने का प्रयत्न किया। इनकी प्रमुख विशेषता यह है कि यह हिन्दू कथानकों के माध्यम से निर्गुण ईश्वर का प्रचार करते थे। इनकी रचनाओं में फारसी और मसनवी शैली का प्रयोग है। भाषा अवधी है और प्रबंध काव्य की रचना होती है। प्रेम के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का वर्णन करते थे। मुसलमान होते हुए भी इन्होंने भारतीय वेदान्त के प्रभावों को स्वीकारा और हिन्दू-मुस्लिम को एकता का संदेश दिया। जायसी कृत पद्मावत, कुतुबन कृत मृगावती, मंझन कृत मधुमालती, उस्मान कृत चित्रावली, नूर मोहम्मद कृत इन्द्रावती इस साहित्य की प्रमुख रचनाएं हैं।

संकेताक्षर : प्रवर्तन, प्रेमकाव्य, आयत, तुकांत गद्य, विशद प्रतिपादन, गजल, रुबाई, मसनवी, सूफी मलफूजात, मजलिस।

सूफी काव्य परम्परा का प्रवर्तन भारत में, मुसलमानों के आगमन के पश्चात् हुआ। भारत और अरब का व्यापारिक सम्बन्ध बहुत प्राचीन काल से ही चला आ रहा था। वह ईसवी सन् से ही आरम्भ हो गया था और नवीं-दसवीं शताब्दी से मुस्लिम संतों ने भारत में इस्लाम मत का प्रचार भी प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी से इस्लाम का भारत में विशेष रूप से प्रचार प्रारम्भ हो गया। सन् 1005 ई. में शेख इस्लाम नामक सूफी दरवेश बुखारा से भारत आया और उसने सैकड़ों लोगों को मुसलमान बनाया। इसके बाद तो बाहर से भारत में आकर इस्लाम मत का प्रचार करने वाले मुस्लिम साधकों की संख्या दिनों-दिन बढ़ती ही गयी। इन साधकों में अधिकांश सूफीमत के मानने वाले थे। इन सूफी साधकों ने अनेक सम्प्रदायों की स्थापना की, जिनमें चार - चिश्तिया, सुहरावर्दिया, कादरिया और नक्शबन्दिया विशेष प्रसिद्ध हुए।

सूफी संतों के अतिरिक्त, सूफीमत के प्रचार में उन सूफी कवियों का भी कम महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं, जिन्होंने प्रेम काव्य की रचना करके अपने मत को जनता में फैलाया। ये कवि लोक कथाओं को आधार बनाकर लोक भाषा में प्रेमकाव्यों की रचना करते थे और उन्हीं के द्वारा जनता में सूफीमत का प्रचार किया करते थे। हिन्दी में ऐसे सूफी कवियों और उनके काव्य-निर्माण की एक सुदीर्घ परम्परा है।

सूफी - निबन्ध

सूफीमत के साहित्य की रचना वस्तुतः उसके द्वितीय युग में आरम्भ हुई और तृतीय युग में पूर्णता को प्राप्त हो गई। सूफी साहित्य की प्रारम्भिक रचनाएँ सर्वप्रथम अरबी भाषा में लिखी जाती रही और कोई सूफी चाहे वह किसी भी देश का हो, पहले पहल अपनी पुस्तक एवं निबन्ध का लिखना 'कुरान शरीफ' की आयतों (पाठ) से ही आरम्भ करता था। द्वितीय युग के लेखकों ने अधिकतर निबन्धों की ही रचना की। वह सूफीमत की कतिपय बातों को अधिक स्पष्ट करने के उद्देश्य से अथवा दूसरों के विचारों से अपने मत को कुछ पृथक् दिखलाने के लिये निबन्ध लिखे गए। इसमें सबसे प्रमुख उदाहरण के रूप में मंसूर अल हल्लाज की पुस्तक 'किताब अल-तवाशीन' का नाम लिया जा सकता है। जो

अरबी भाषा के तुकांत गद्य में 11 प्रकरणों में लिखी गई है। इसी प्रकार तृतीय युग के अन्तर्गत इब्न अरबी ने 'फुतूहात-ए-मविकया' एवं 'फुसूस अल-हिकम' की रचना कर अपने मत का विशद प्रतिपादन किया। शेख शहाबुद्दीन सुहरावर्दी ने अपनी रचना 'अवारिफुल मुआरिफ' द्वारा आगे के सूफियों के लिए एक प्रमाणिक ग्रंथ प्रस्तुत कर दिया।

शेख महमूद शबिस्तारी का प्रसिद्ध फारसी ग्रंथ 'गुलशने राज' भी वस्तुतः इसी प्रकार की रचनाओं की श्रेणी में आता है। उसी के भिन्न-भिन्न पन्द्रह प्रकरणों में विविध प्रश्नों को उठाकर उनके उत्तर पूरी व्याख्या और दृष्टान्तों के साथ दिये गए हैं और उनके द्वारा 'रहस्य' बताया गया है।¹

सूफी जीवन-वृत्त

सूफी साहित्य का एक दूसरा अंग सूफियों के परिचय एवं जीवन वृत्तों से सम्बन्ध रखता है। इनमें अरबी अथवा फारसी भाषा के द्वारा प्रसिद्ध सूफियों का प्रशंसात्मक परिचय देकर उनके चमत्कारों को भी लिखा गया है। इस प्रकार की रचनाओं में स्वभावतः बहुत सी पौराणिक बातों का ही समावेश रहा करता है। फिर भी इनमें दिये गए विविध प्रसंगों द्वारा कई ऐतिहासिक प्रश्नों पर भी प्रकाश पड़े बिना नहीं रह पाता और उनमें परिचित कराए गए सूफियों के आचरण आदि के संकेतों द्वारा सूफीमत की विचारधारा के विकास का रूप निखर आता है। अली हुजविरी ने अपनी रचना 'कश्फुल महजूब' के अन्तर्गत प्रसिद्ध सूफियों के संक्षिप्त परिचय देकर उनकी विशेषताओं को स्पष्ट किया। फरीदुद्दीन अत्तार की पुस्तक 'तजकिरातुल औलिया' इसके लिए एक बहुत सुन्दर उदाहरण है। जिसमें काव्यमय गद्य के द्वारा उनकी जीवनियों का सार तत्त्व संगृहित कर दिया है।

जामी की प्रसिद्ध रचना 'नफहातुल उंस' भी कदाचित् उसी आदर्श को लेकर प्रस्तुत की गई है। सूफियों की जीवनी लिखने की यह परम्परा बहुत समय तक उसी रूप में चलती रही और आधुनिक युग के आने पर ही उसमें बदलाव आया।²

सूफी काव्य रचनाएँ

ग़ज़ल, रुबाई, मसनवियों के द्वारा सूफियों ने प्रेम के गूढ़ भाव का व्यक्तिकरण, व्यक्तिगत उद्गारों के रूप में किया। उनके संग्रहों को दीवान अथवा 'कुल्लियात' कहने की प्रथा है। कर्मकाण्ड की अलोचना को सूफियों

ने अपनी ग़ज़लों का भी विषय बनाया है। जलालुद्दीन रूमी ने अपनी ग़ज़लों के दीवान को शम्स तबरेज़ के नाम समर्पित किया था जो उनके गुरु थे। वह दीवान 'कुल्लियात शम्स तबरेज़' के नाम से प्रकाशित पाया जाता है। रूमी के इस दीवान की भाँति रचे गये सनाई, सादी एवं हाफिज आदि के 'दीवान' मिलते हैं। हाफिज की रचनाओं का संग्रह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है और ग़ज़लों के विचार से यह सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं।

उमर ख्याम जिस प्रकार अपनी रुबाईयात के कारण प्रसिद्ध हैं और हाफिज की ख्याति, जिस प्रकार उनकी ग़ज़लों पर आश्रित है, उसी प्रकार मौलाना रूमी अपनी मनसवियों द्वारा सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। रूमी को उनकी इन रुबाईयों के कारण लोगों ने उन्हें 'आचार्य' की पदवी दी और हाफिज को 'प्रेमी' तथा ख्याम को एक मौजी कवि कहकर उनकी पृथक-पृथक विशेषताओं का निर्देशन किया।³

प्रारम्भिक उर्दू-काव्य

भारत के उर्दू साहित्य ने अपने प्रारम्भिक काल से ही फारसी साहित्य को अपना आदर्श बनाया। जिस कारण उनके कवियों ने जो रचनाएँ की, उन पर फारसी भाषा के अतिरिक्त उसके पिंगल, वर्णन-शैली तथा अलंकार आदि का प्रभाव पड़ा। मुहम्मद कुली कुतुबशाह जो गोलकुण्डा का सुल्तान था जिसे उर्दू का प्रथम कवि होने का श्रेय दिया जाता है। उनकी रचनाओं का संग्रह हैदराबाद में सुरक्षित है। जिससे पता चलता है कि उन्होंने भी ग़ज़लें, रुबाईयाँ और मसनवियाँ लिखी थी। बीजापुर के अली आदिल शाह द्वितीय के दरबारी कवि मुहम्मद नुसरत ने 'गुलशने इश्क' नाम की एक मसनवी सन् 1714 में लिख कर उसमें सूरजभान के पुत्र कुँवर मनोहर एवं मधुमालती की प्रेमकथा दी थी। दिल्ली में सर्वप्रथम उर्दू काव्य की परम्परा चलाने वाले शम्स वली उल्लाह अर्थात् 'वली' नामक उर्दू कवि थे। उनके दक्षिण से दिल्ली आने पर, वहाँ के सूफी फारसी कवि शाह गुलशन ने उनसे फारसी में दीवान लिखने का विशेष आग्रह किया था। दिल्ली के उर्दू कवियों में ख्वाजा मीर दर्द, मीर हसन, मीर तकी मीर, मौलाना अल्ताफ हुसैन हाली और मिर्ज़ा ग़ालिब का नाम विशेष उल्लेखनीय है।⁴

हिन्दी की सूफी रचनाएँ

अब तक उपलब्ध ग्रन्थों के आधार पर मुल्ला दाऊद हिन्दी की सूफी काव्य-परम्परा के प्रथम कवि माने जाते हैं। डॉ. जोगेन्द्र प्रकाश ठकराल ने हिन्दी सूफी

काव्य परम्परा की विकास यात्रा को 1379 ई. में मुल्ला दाऊद रचित 'चंदायन' से आरम्भ होकर नसीर कृत 'प्रेम दर्पण' तक चलती हुई बतलाया है। लगभग साढ़े पाँच सौ वर्षों की इस दीर्घ परम्परा में निम्नलिखित काव्यों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

सर्वप्रथम मुल्ला दाऊद कृत चंदायन; राजन की प्रेमबन जोत; निरजंन शेख कुतुबन कृत मृगावती; मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम, चित्ररेखा रचनाएँ; मंझन की मधुमालती, शेख उस्मान कृत चित्रावली; कवि जान ने दो दर्जन से अधिक प्रेमाख्यान लिखे। शेख नबी कृत ज्ञानदीप; सूरदास कृत नलदमन; हुसैन अली कृत पुहुपावती; कासिम शाह कृत हंस जवाहिर; नूर मोहम्मद कृत इन्द्रावती एवं अनुराग बांसुरी; शेख निसार कृत युसुफ जुलेखा; शाहनफज अली की अखरावती एवं प्रेम चिन्गारी; शेख रहीम की भाषा प्रेमरस; ख्वाजा अहमद कृत नूरजहाँ और नसीर कृत प्रेमदर्पण आदि रचनाएँ की गई। इन मुस्लिम कवियों ने हिन्दी साहित्य के विकास में अमूल्य योगदान दिया है।⁶

मध्यकाल में भक्ति पद्धति को जाग्रत करने की महत्ता समझ लेने में इस्लाम की उपस्थिति प्रेरक साबित हुई। रुढ़ियों के जंजाल से भक्ति पद्धति को मुक्त करने का परिश्रम भी इस्लाम के प्रभाव का परिणाम है। ईश्वर के वचनों का संग्रह मानकर कुरान को महत्त्व देने की प्रथा ने वेदों, उपनिषदों तथा पुराणों के प्रति भक्तों की आस्था बढ़ाने और उन ग्रन्थों की नयी-नयी व्याख्याएँ प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध हुआ। इस प्रकार भक्ति आन्दोलन के विकास के लिए आवश्यक साहित्यिक वातावरण बन गया। भक्ति आन्दोलन में भावुकता की आत्मा डालने एवं उसे सुन्दर एवं आकर्षक बनाने में सूफी कवियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।⁷

संत नामदेव, कबीर, धर्मदास, रैदास, दादू, गुरुनानक, बाबा फरीदुद्दीन शकरगंज, संत बुल्लेशाह आदि अनेक संतों ने अपनी वाणियों के द्वारा हिन्दी साहित्य को अपूर्व देन दी है। संत वाणियों के अध्ययन से हमें हिन्दी प्रदेश के नैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक सुधार एवं तत्कालीन विभिन्न धाराओं के समन्वय की प्रवृत्तियों का पूर्ण परिचय मिलता है।⁸

सूफी मलफूजात

सूफी संतों के कथनों या वार्तालापों को मलफूजात कहते हैं। इनका उर्दू में मतलब होता है “प्रवचन या बोले गए शब्द।” मलफूजात को विभिन्न सूफी

सिलसिलों द्वारा शेखों की अनुमति से संकलित किया जाता है। मलफूजात का इस्तेमाल सामाजिक जीवन के अक्सर उपेक्षित मुद्दों पर अध्ययन के लिए किया जाता है। चिशितया शाखा के सूफियों के मलफूजात का साहित्य में बड़ा योगदान है। यह सूफी संत शासक वर्ग से दूर रहते थे और आम लोगों के बीच रहना पसन्द करते थे। इनमें ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती का 'दलील-उल-आरफीन' जो ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी ने लिखा। इसका उर्दू तर्जुमा हाकिम मुतीउर रहमान कुरेशी नवशब्दी ने किया। इस किताब में ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के बारह मजलिसों के मलफूजात (प्रवचन संग्रह) है। यह 56 पेज की लघु पत्रिका है।⁹

ख्वाजा फरीदुद्दीन मसऊद गंज-ए-शकर का राहतुल कुलुब, ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी का फवाएदुल सालेकिन; ख्वाजा हमीदुद्दीन नागौरी का सुरूर-उस-सुदूर एवं नूर-उल-बुदुर; शेख निजामुद्दीन औलिया का फवायद-अल-फवाद; शेख अब्दुल कुदुस गंगोही का लताएफे कुदुसी; शाह गुलाम अली देहलवी का दुरूल मआरिफ इत्यादि ग्रन्थों से हमें धार्मिक ही नहीं ऐतिहासिक ज्ञान भी प्राप्त होता है।¹⁰

भारत में सूफीमत ने ऐसे महत्त्वपूर्ण काव्य तथा साहित्य को जन्म दिया है, जिसके माध्यम से वह उदार विचारों को स्वतंत्र रूप से जनता तक पहुँचाने में समर्थ हुआ। यही कारण है कि उर्दू तथा हिन्दी का सूफी साहित्य आध्यात्मिक-रहस्यमय भावनाओं के साथ ही मानवता की भावनाओं से ओत-प्रोत है। यह सूफीमत का ही प्रभाव था कि उर्दू काव्य में प्रायः मन्दिर-मस्जिद, हिन्दू-मुसलमान आदि का भेदभाव नहीं होता है क्योंकि सूफी साहित्य इस्लामी शरीयत का नहीं अपितु मनुष्य मात्र की एकता का प्रतिपादक रहा है। परिणाम यह हुआ कि उदार उर्दू कवियों ने जैसे जफर, मीर, दर्द, गालिब आदि ने अपनी कविता में खुदा और मनुष्य की वास्तविकता को गहराई से पहचाना है।¹¹

सारांश यह है कि इन सूफी कवियों ने हिन्दी साहित्य को अमूल्य निधि प्रदान की है। इनसे हमें उस समय के समाज, रीति-रिवाज, धार्मिक आदर्श एवं आम लोगों के जीवन के रहन-सहन, वातावरण एवं प्रथाओं का ज्ञान प्राप्त होता है। सूफी कवियों के ग्रंथों से साहित्य लेखन में सहयोग प्राप्त होता है। इन सूफी कवियों ने हमारे समाज के आडम्बरों को दूर कर

हिन्दू-मुस्लिम एकता का संदेश दिया है। इनके काव्य ने हिन्दी साहित्य के भण्डार को विस्तृत कर दिया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रो. रामखेलावन राय, सन्त परम्परा और साहित्य, पटना सिटी, पृ. 165
2. परशुराम चतुर्वेदी, सूफी काव्य संग्रह, प्रयाग, प्रथम संस्करण, 1951 ई., पृ. 49-50
3. वही, पृ. 50
4. सूफी काव्य संग्रह, पृ. 51-52, 53
5. वही, पृ. 54-55
6. प्रो. रामखेलावन राय, सन्त परम्परा और साहित्य, पृ. 166-186
7. डॉ. एम. जॉर्ज, भक्ति आन्दोलन और साहित्य, आगरा, प्रथम संस्करण 1978, पृ. 128
8. डॉ. गोविन्द बिगुणायत, हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, 1961, पृ. 4-9
9. सय्यद शिवाहुद्दीन अब्दुल रहमान, बज्म-ए-सूफिया, आजमगढ़, 2014, पृ. 97
10. प्रो. मोहम्मद असलम, मलफूजाते अदब की तारीखी अहमियत, प्रथम संस्करण 1995, लाहोर, पृ. 9-10
11. हरीशचन्द्र वर्मा, मध्यकालीन भारत, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993, पृ. 460

डेनियल बेल : विचारधारा का अंत और उत्तर औद्योगिक समाज का उदय



shodhshree@gmail.com

डॉ. मोहम्मद कामरान खान

सह-आचार्य, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

शोध सारांश

विचारधारा राजनीतिक अवधारणा मानी जाती है। हालांकि इसका इतिहास ज्यादा पुराना नहीं है। इसका जन्म फ्रांसीसी क्रांति के पश्चात् हुआ और यह आधुनिकता का आवश्यक आयाम है। विचारधारा शब्द का जन्म विचारों के विश्लेषण करने वाले विज्ञान के रूप में हुआ था मगर बहुत जल्द ही इसका प्रयोग वास्तविकता के विकृतिकरण के रूप में होने लगा। यही कारण है कि मार्क्स ने इसको मिथ्या चेतना माना था। 20वीं शताब्दी में विचारधारा राष्ट्रीय परियोजना का आवश्यक तत्व बन गयी। शीतयुद्ध के दौरान विचारधारा ने एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। शीतयुद्ध के दौरान प्रसिद्ध अमेरिकी विद्वान डेनियल बेल ने अपनी पुस्तक विचारधारा का अंत, पचास के दशक में राजनीतिक विचारों का अवसान नामक पुस्तक लिखी जिसमें इस बात पर जोर दिया कि लोक कल्याणकारी राज्य, मिश्रित अर्थव्यवस्था, आर्थिक विकास पर सभी समाजों के एक समान जोर देने से विचारधारा का महत्व कम होता जा रहा है। यह वह प्रवृत्तियां हैं जो सार्वभौमिक रूप से सभी समाज स्वीकार कर चुके हैं। 19वीं शताब्दी की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों से उभरी परम्परागत विचारधाराएं आधुनिक समाज में महत्व खो चुकी हैं। समाज का एक नया स्वरूप सामने आया है जिसे डेनियल बेल उत्तर औद्योगिक समाज कहते हैं। मगर आज 50 वर्ष बीत जाने के बाद भी हम यह देखते हैं कि विचारधारा कही ना कही समाज की वैचारिक पृष्ठभूमि में विद्यमान है।

संकेताक्षर : औद्योगिक समाज , डेनियल बेल, अर्थव्यवस्था, शीत युद्ध, कल्याणकारी राज्य।

आधुनिक विश्व की बहुत सी अन्य अवधारणाओं की तरह विचारधारा की अवधारणा भी ज्ञानोदय की संतान है। आजकल ज्यादातर लोगो के लिए विचारधारा एक अपमानजनक शब्द है क्योंकि यह मिथ्या चेतना से मतांधता, मानसिक अवरोध से लेकर रहस्यवाद तक की नकारात्मक अवधारणाओं की एक पूरी शृंखला को जन्म देती है। 'विचारधारा' शब्द अनेकार्थी है और परिभाषाओं की बहुलता का शिकार है जो आसानी से समझ नहीं आती है। विचारवान होना मनुष्य होने की निशानी मानी जाती है मगर हम यह बात विचारधारा के संदर्भ में नहीं कह सकते हैं अर्थात् हम यह नहीं कह सकते हैं कि हर मनुष्य की मनुष्यता इस बात से प्रमाणित होगी की वह विचारधारा रखता है अथवा नहीं। विचारधारा विमर्श का विषय है मगर यह बल और सहमति दोनों को सम्मिलित करती है। हालिया वर्षों में विचारधारा को राजनीति सिद्धांत के अध्ययन में आवश्यक रूप से शामिल कर लिया गया है। जहां राजनीतिक सिद्धांत घटनाओं और प्रतिभासों का वर्णन और उनके कारणों का अध्ययन करता है जबकि विचारधारा कर्म प्रधान होने के कारण यथास्थिति में परिवर्तन करने पर बल देती है। इस रूप में विचारधारा सिद्धांत के बिल्कुल उलट है। विचारधारा को सर्वाधिकारवादी शासन प्रणालियों का आवश्यक तत्व माना जाता है। इसलिए विचारधारा की संगति लोकतंत्र से कम बैठती है हालांकि लोकतांत्रिकता होना, उदारवादी होना विचारधारा का ही रूप माना जाता है। विचारधारा में भावनात्मक प्रतिबद्धता और भविष्य के आदर्श लोक के सम्मिलित होने के कारण इसका वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ अध्ययन अत्यंत दुष्कर कार्य है। अगर हम विचारधारा की सबसे सरल परिभाषा देना चाहे तो यह विचारों का एक समूह है जो व्यक्तियों को कर्म करने के लिए प्रेरित करता है। यह एक ऐसा आदर्श लोक बनाने के लिए मनुष्यों को प्रेरित करता है जिसमें मनुष्य के जीवन की

दशाओं में सुधार होगा। इस रूप में विचारधारा एक लौकिक धर्म बन जाता है जो मनुष्य की दशाओं में मृत्यु के पश्चात् नहीं वरन् इस जीवन के दौरान ही उसकी स्थिति में सुधार करेगा। विचारधारा का इस रूप में आधुनिकता का एक आवश्यक आयाम माना जा सकता है। राजनीतिक क्षेत्र में विचारधारा का प्रयोग किसी विशेष राजनीतिक व्यवस्था और उसकी मूल्य प्रणाली को वैधता प्रदान करने से लेकर उसके विरोध में सशक्त राजनीतिक कारवाइ को विकसित करने तक से है।

विचारधारा शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 'विचारों के विज्ञान' के रूप में फ्रांसीसी दार्शनिक और अर्थशास्त्री एंटोनी लुइस क्लाड देस्टू द ट्रेसी द्वारा 1796 में किया गया था। टिमोथी द टेरेल ने ट्रेसी की पुस्तक ए ट्रीटीज ऑफ पॉलिटिकल इकोनॉमी के प्राक्कथन में लिखा है कि विचारधारा ट्रेसी द्वारा गढ़ा गया शब्द है जो विचारों के निर्माण का विज्ञान है। मानव क्रिया का एक व्यापक अध्ययन है जो लाक के सारभूतवाद विरोध और अनुभववाद से शुरू हुआ। ट्रेसी ने विचारधारा को एक उच्चतर विज्ञान के रूप में देखा जो राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक मुद्दों को एक साथ जोड़ता है।¹ ट्रेसी विचारधारा के माध्यम से सत्य के अन्वेषण का तरीका ढूँढ रहे थे जो विचारों के अन्वेषण से प्राप्त होना था। यह अन्वेषण राजसत्ता और धर्म के प्रभावों से मुक्त था। विचारधारा के माध्यम से विचारों की उत्पत्ति को वस्तुनिष्ठ ढंग से समझा जा सकता था और उन्हें सार्वभौमिक और अमूर्त श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता था। आगे चलकर इसी उद्देश्य के लिए आगस्ट कास्टे ने SOCIOLOGY (समाजशास्त्र) शब्द गढ़ा। बाद में विचारधारा और समाजशास्त्र दोनों शब्द एक दूसरे के विपरीत हो गये।

विचारधारा शब्द के इतिहास में अगला चरण तब आया जब फ्रांसीसी सम्राट नेपोलियन बोनापार्ट ने विचारधारा शब्द को नकारात्मक अर्थ प्रदान किया। उसने इस्टीट्यूट नेशनल में नैतिक और राजनीतिक विज्ञान के शिक्षण पर रोक लगा दी और विचारकों को गैर जिम्मेदार सट्टेबाज के रूप में निंदा की जो नैतिकता और देश भक्ति को नष्ट कर रहे थे।² इस काल में विचारधारा आत्मघोषे और भ्रम का पर्याय बन गई और यह विश्लेषण आज भी विचारधारा पर जस के तस लागू है।

कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स ने विचारधारा पर एक

अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। अपनी पुस्तक जर्मनी आइडियोलॉजी (1845/46) जो वस्तुतः निबंधों का समूह है, में युवा हेगेलवादियों की आलोचना की है तथा विचारधारा को मिथ्या चेतना मानते हुए इसका अलग विश्लेषण प्रस्तुत किया है। हीगल की मान्यता थी कि विचार स्वायत्त है और उन विचारों में संप्रभु रूप से सत्य और चेतना को प्रकट करने की शक्ति है। मार्क्स के भौतिकवादी दृष्टिकोण से यह गलत था क्योंकि अस्तित्व ने चेतना को निर्धारित किया था न की उसके विपरीत। केवल विचारों से वास्तविकता की तस्वीर चित्रित करने का कोई भी प्रयास केवल झूठी चेतना पैदा कर सकता है।³ मार्क्स ने एक प्रसिद्ध रूपक के माध्यम से विचारधारा और वास्तविकता की तुलना कैमरा ऑब्स्क्यूरा या आँख के रेटिना पर उल्टा चित्रण के माध्यम से की है। उन्होंने तर्क दिया कि युवा हेगेलियन एक भ्रम के अधीन थे कि कल्पनाएँ, विचार और अवधारणाएँ मानवता के जीवन और इतिहास को निर्धारित करती हैं जबकि मनुष्य का संपूर्ण बौद्धिक उत्पादन उसके भौतिक उत्पादन से पूर्व निर्धारित है। मार्क्स के अनुसार विचारधारा सत्य होने का दावा करती है परन्तु वह न केवल झूठे विचार है बल्कि विशिष्ट हितों को छुपाती है। विचारधारा मूलतः शासक वर्गों का साधन है जो मौजूदा सत्ता संबंधों को वैध बनाती है इस रूप में विचारधारा अधिसंरचना का आवश्यक तत्व है जो वर्ग चेतना को विकृत करती है तथा आधार के वास्तविक भौतिक हितों को आवरण प्रदान करती है।

मार्क्स के अनुसार विचारधारा केवल सिर्फ पूंजीवादी समाजों की विशेषता नहीं है बल्कि सभी वर्ग विभाजित समाजों की विशेषता है। वर्ग विभाजित समाज अस्थिर होगा और ऐसे समाजों में स्थिरता के लिए विचारधारा जैसे गैर दमनकारी साधनों की आवश्यकता होगी। यह सम्भव है कि विचारधारा की आवश्यकता एक वर्ग विभाजित समाज की तुलना में दूसरे वर्ग विभाजित समाज में ज्यादा हो जैसे पूंजीवादी समाज में विचारधारा की आवश्यकता अन्य सभी समाजों से ज्यादा है क्योंकि यहाँ दमनकारी साधनों का अधिकतम उपयोग सम्भव नहीं होता है। विचारधारा अक्सर सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्थाओं को जो आकस्मिक, ऐतिहासिक या कृत्रिम है आवश्यक, सार्वभौमिक और प्राकृतिक रूप से चित्रित करती है।⁴ मार्क्स के अनुसार धर्म और बुर्जुआ राज्य विचारधारा की अभिव्यक्ति है। मार्क्स के अनुसार जब सभी वर्ग

विरोध समाप्त हो जाएगे। सामाजिक संबंधों की पुर्नस्थापना होगी, विचारधारा की आवश्यकता समाप्त हो जाएगी। भविष्य के साम्यवादी समाजों में विचारधारा की कोई आवश्यकता नहीं होगी। मार्क्स और हेगल के लिए इतिहास एक प्रगतिशील प्रकट होने वाली तर्कबुद्धि है जिसमें समाज मनुष्य द्वारा प्रकृति पर विजय और सभी मिथकों और अंधविश्वासों के विनाश के माध्यम से उच्चतर चरणों की ओर बढ़ता है। इसलिए किसी भी सिद्धांत की सत्यता का निर्धारण इतिहास के विकास के साथ उसके सामंजस्य के आधार पर किया जाना चाहिए और व्यवहार में इसका अर्थ है कि सत्य का निर्धारण इस आधार पर किया जाना चाहिए कि उसका क्रांति की उत्पत्ति में कोई योगदान है या नहीं।⁶

विचारधारा को मिथ्या चेतना का रूप मानने के बावजूद विचारधारा आगे चलकर मार्क्सवादी विमर्श का प्रमुख तत्व बन गया। लेनिन ने अपनी पुस्तक *What is to be done* (1902) में विचारधारा को वर्णनात्मक रूप से राजनीतिक विचारों के समूह के रूप में संदर्भित किया है जो विशिष्ट वर्गों के हितों को आगे बढ़ाते हैं। लेनिन तत्कालीन समाज में विचारों के संघर्ष को बुर्जुआ और साम्यवादी विचारधारा में वर्गीकृत करते हैं। लेनिन के अनुसार बुर्जुआ विचारधारा सर्वहारा वर्ग पर हावी रहती है क्योंकि वह अपने समाजवादी विकल्प की तुलना में अधिक स्थायी, विस्तृत और व्यापक रूप में प्रसारित होती है।⁷ लेनिन साम्यवादी विचारधारा को मजबूत करने पर बल देते हैं और यह मानते हैं कि जैसे-जैसे सर्वहारा विचारधारा मजबूत और व्यापक होगी बुर्जुआ विचारधारा समाप्त हो जाएगी।

मार्क्सवादी परम्परा में आगे चलकर एंटोनियो ग्राम्स्की ने विचारधारा की संकल्पना पर अपने विचार प्रस्तुत किए। ग्राम्स्की ने तर्क दिया पूंजीवादी वर्ग व्यवस्था को केवल असमान आर्थिक और राजनीतिक शक्ति द्वारा ही नहीं वरन् बुर्जुआ विचारों और सिद्धांतों के प्रभुत्व द्वारा भी कायम रखा जाता है। प्रभुत्व का अर्थ है नेतृत्व और प्राधान्य। वैचारिक प्राधान्य के अर्थ ने यह बुर्जुआ विचारों द्वारा प्रतिद्वन्दी विचारों को विस्थापित करने और वास्तव में युग की सामान्य समझ बनाने की क्षमता को संदर्भित करता है। ग्राम्स्की ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि समाज के हर स्तर पर विचारधारा किस हद तक कला साहित्य, शिक्षा प्रणाली, जनसंचार के माध्यमों तथा लोकप्रिय संस्कृति व

रोजमर्रा की भाषा में अंतर्निहित है। ग्राम्स्की का मानना था कि बुर्जुआ प्रभुत्व को राजनीतिक और बौद्धिक स्तर पर समाजवादी सिद्धांत व मूल्यों के आधार पर एक प्रतिद्वन्दी सर्वहारा प्राधान्य बनाकर ही दी जा सकती है।⁸

विचारों की स्वयं को विचारधारा के रूप में मान्यता अपनी एक ऐतिहासिक विरासत का दावा तथा 19 वीं शताब्दी में विभिन्न सामाजिक आर्थिक मुद्दों पर विभिन्न वैचारिक दृष्टिकोण के कारण 20वीं शताब्दी में विचारधारा राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संबंधों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगी। अब विचारधारा केवल अकादमिक अध्ययन का विषय नहीं रही बल्कि उनको व्यवहार में मूर्त रूप प्रदान करने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। विचारधाराएं अब अपने अमूर्त रूप को खोकर मूर्त रूप में ढलने लगीं और साथ ही राष्ट्रीय परियोजनाओं का हिस्सा बनने लगीं। इस दिशा में 1917 की सोवियत रूस की साम्यवादी क्रांति महत्वपूर्ण थी और इस क्रांति के बाद नाजीवाद जर्मनी और इटली में दो नई अधिनायकवादी विचारधाराओं नाजीवाद तथा फासीवाद को मूर्त रूप प्राप्त हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान दुनिया दो वैचारिक खेमों में बटी जिसमें फासीवादी और नाजीवाद विचारधारा को साम्यवादी तथा उदार लोकतांत्रिक देशों ने परास्त किया। धुरी राष्ट्रों के हारने के बाद दुनिया में फासीवाद और नाजीवाद का अंत हुआ। मगर अब दुनिया उदार लोकतंत्र और साम्यवादी विचारधारा वाले देशों में विभक्त हो गई। अब शीत युद्ध का एक नया दौर शुरू हुआ जिसमें विचारधारा के महत्व को बरकरार रखा। ऐसे समय में जब दुनिया दो वैचारिक ध्रुवों में बटी थी उसी दौरान प्रसिद्ध विचारक डेनियल बेल ने अपनी पुस्तक *The End of Ideology : In The Exhaustion of Political Ideas in Fifties* (विचारधारा का अंत: पचास के दशक में राजनीतिक विचारों का अवसान (1960) नामक पुस्तक लिखी जिसमें यह तर्क दिया गया कि पश्चिमी समाजों में विचारधारा का महत्व कम होता जा रहा है। 'विचारधारा के अंत' की अवधारणा की ऐतिहासिक विरासत को ढूँढ पाना कठिन है। हालांकि अमेरिकन विद्वान फ्रांसिस फुकुयामा डेनियल बेल और उनसे जुड़े कई विद्वानों को नवउदारवादी विचारों का मूल मानते हैं। जिसमें से ज्यादातर न्यूयार्क के सिटी कॉलेज से जुड़े थे। इस समूह की मूल विशेषता इसका साम्यवाद विरोधी होना था साथ ही यह समूह उन

उदारवादियों से भी पर्याप्त दूरी रखता था जो मार्क्सवाद के खतरे से अनजान होकर उसके प्रति प्रशंसा का भाव रखते थे।⁹ यह समूह अपनी शुरुआत में ट्राट्स्कीवादी था जो स्टालिन के शासन का विरोधी थे।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात अल्बर्ट कामू पहले ऐसे विचारक हैं जिन्होंने विचारधारा के अंत वाक्यांश का प्रयोग किया। उन्होंने 1946 में लिखा कि अगर फ्रांसीसी समाजवादियों ने मार्क्सवाद को एक निरपेक्ष दर्शन के रूप में त्याग दिया और खुद को इसके आलोचनात्मक प्रश्न तक ही सीमित कर लिया तो वे हमारे समय में विचारधाराओं में अंत का उदाहरण बनेंगे यानि निरपेक्ष यूरोपिया जो इतिहास में खुद नष्ट कर लेते हैं जिसकी कीमत वह अतः चुकाते हैं।¹⁰ आगे चलकर पूर्व साम्यवादी आर्थर कोस्टलर द्वारा कांग्रेस फार कल्चरल फ्रीडम की बर्लिन बैठक में Outgrown Dilemma (1955) शीर्षक से दिए गये भाषण में कोस्टलर ने कहा समाजवाद और पूंजीवाद दक्षिण और वाम आज वास्तविक रूप में अर्थहीन हो गये हैं।¹¹ हालांकि उन्होंने विचारधारा का अंत शब्द वाक्यांश का प्रयोग नहीं किया। इसी क्रम में रेमण्ड ऐरॉ ने 1955 में अपनी पुस्तक Opium of the intellectuals (बुद्धिजीवियों की अफीम) लिखी जिसका एक अध्याय The End of Ideological। हम (विचारधारागत युग का अंत) शीर्षक से था। उन्होंने लिखा कि बाजार और योजना अपने आप में शुद्ध प्रकार से हैं। वास्तविकता में कही मौजूद नहीं है। मिश्रित प्रणालिया सामान्य बात हैं। ऐरॉ ने साम्यवाद की आलोचना करते हुए लिखा है कि साम्यवाद पश्चिमी संदेश का पतित संस्करण है। यह प्रकृति पर विजय प्राप्त करने दीनहीन लोगों की स्थिति सुधारने की अपनी महत्वकांक्षां बरकरार रखता है लेकिन उन चीजों का त्याग करता है जो अतंत मानवीय साहसिकता का हृदय और आत्मा थी और बनी रहनी चाहिए। जैसे अनुसंधान की स्वतंत्रता, वाद विवाद की स्वतंत्रता, आलोचना की स्वतंत्रता तथा मत की स्वतंत्रता।¹²

डेनियल बेल की पुस्तक The End of Ideology on the Exhaustion of Political Ideas in Fifties पुस्तक मूल रूप में निबंधों का संग्रह है। इस पुस्तक को तीन भागों में विभक्त किया गया है। पहले के दो खंड अमेरिकन समाज संरचनात्मक परिवर्तनों की चर्चा करते हैं। साथ ही इस बात पर चर्चा करते हैं कि क्यों अमेरीका में साम्यवादी विचार लोकप्रिय नहीं हो पाये। तीसरे

अध्याय जेम Exhaustion of Utopia (कल्पना लोक की थकावट) के उपसंहार में विचारधारा के अंत की चर्चा करते हैं। बेल लिखते हैं कि विचारधारा जो कभी कार्यवाही का मार्ग के रूप में जानी जाती थी अब मृत अंत की ओर है।¹³

डेनियल बेल लिखते हैं कि धार्मिक आस्थाओं के पतन ने विचारधारा को मनुष्य के जीवन में महत्वपूर्ण बना दिया है। कष्टरता, हिंसा और क्रूरता निश्चित रूप में मानव इतिहास में अद्वितीय नहीं हैं। लेकिन एक समय था जब इस तरह के उन्माद और सामूहिक भावनाओं को धार्मिक भक्ति और अभ्यास के माध्यम से विस्थापित किया जाता था और उसे प्रतीक बना कर दूर तक फैलाया जाता था। अब यह कार्य विचारधारा के माध्यम से किया जाता है। धर्म की तरह विचारधारा भी राजनीति को संस्थागत स्वरूप प्रदान कर वर्चस्व का रास्ता प्रशस्त करती है। पश्चिमी दुनिया के बुद्धिजीवियों में कुछ राजनीतिक मुद्दों पर एकमतता है वह है कल्याणकारी राज्य की स्वीकार्यता, शक्ति का विकेंद्रीकरण, मिश्रित अर्थव्यवस्था की व्यवस्था तथा राजनीतिक बहुलवाद। संक्षेप में, विचारधारात्मक युग का अंत हो चुका है। और मानवता के विकास को किसी और संदर्भ में समझना असंभव है।

डेनियल बेल लिखते हैं सभी विचारधाराएँ आत्मविनाश के लिए बाध्य हैं। विचारधारा एक रूपक है। वास्तविकता की एक जमी हुई नकल, शब्दों का अमूर्त पदार्थीकरण जो श्रेणियों को झूठा जीवन देता है और यही इसका घातक दोष भी है। इसकी कमजोरी जो इसे अंत में ज्ञान और विश्वास में अन्य रूपों के लिए कमजोर बना देती है।

डेनियल बेल विचारधाराओं के निर्माण में बुद्धिजीवियों की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हैं। वह लिखते हैं कि उन्नीसवीं शताब्दी की विचारधाराओं के पीछे बुद्धिजीवियों की शक्ति थी। आज यह विचारधाराएं समाप्त हो चुकी हैं। इन महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन की पृष्ठभूमि के पीछे की घटनाएँ जटिल और विविध हैं। मार्को ट्रायल नाजी सोवियत संधि, यातना शिविरो, हंगरी के श्रमिकों का दमन, एक ओर है जबकि पूंजीवाद में बदलाव तथा लोक कल्याणकारी राज्य का उदय दूसरी ओर। बेल के शब्दों में अतिवादी बुद्धिजीवियों के लिए पुरानी विचारधारा अपना सत्य और प्रभावित करने की शक्ति खो चुकी है अठारहवीं शताब्दी की पुरानी विचारधाराएं और बौद्धिक विमर्श

अब समाप्त हो गये हैं। वहीं एशिया और अफ्रीका के उभरते हुए राज्य अपने लोगो के लिए अलग अपील वाली नई विचारधाराएं गढ़ रहे हैं। ये नई विचारधाराएं औद्योगिकीकरण, आधुनिकीकरण, अखिल अरबवाद, रंग और राष्ट्रवाद की विचारधारा है। उन्नीसवीं शताब्दी की विचारधाराएं सार्वभौमिक, मानवतावादी और बुद्धिजीवियों द्वारा गढ़ी गई थी। वहीं एशिया अफ्रीका की जन विचारधाराएं संकीर्ण, प्रयोजनमूलक और राजनीतिक नेताओं द्वारा गढ़ी गई हैं। पुरानी विचारधाराओं की प्रेरक शक्ति सामाजिक समानता और अधिक स्पष्ट शब्दों में स्वतंत्रता थी जबकि नई विचारधारा की प्रेरणाएं आर्थिक विकास और राष्ट्रीय शक्ति हैं। बेल लिखते हैं कि रूस और चीन नए आदर्श के रूप में सामने आए हैं। इन देशों में मुक्त समाज के पुराने विचार के प्रति आकर्षण नहीं बल्कि आर्थिक विकास के नए विचार के प्रति आकर्षण है। इतना ही नहीं पश्चिम के कुछ बुद्धिजीवियों के लिए आर्थिक विकास स्वयं एक विचारधारा बन गई है।

आधुनिक औद्योगिक समाज का अध्ययन करने के बाद डेनियल बेल यह निष्कर्ष निकालते हैं कि श्रमिकों की समस्याएं जो सामाजिक परिवर्तन की प्रेरक शक्ति थी। आज अप्रसांगिक हो गयी हैं क्योंकि आज के औद्योगिक समाज में श्रमिक वर्ग बुद्धिजीवी वर्ग से अधिक सतृप्त है यद्यपि श्रमिक वर्ग ने अपना आदर्श लोक प्राप्त नहीं किया है। परंतु उसके सामाजिक लाभ उसकी अपेक्षाओं से कहीं अधिक हैं। युवा बुद्धिजीवियों के लिए अब कोई मार्ग नहीं बचा है। हालांकि बेल लिखते हैं कि विचारधारा का अंत आदर्श लोक का अंत नहीं है। आदर्श लोक की आवश्यकता आज पहले की तुलना में कहीं ज्यादा है लेकिन आवश्यकता है जुनून को बौद्धिकता से मिलाने की। स्वर्ग के शहर की सीढ़ी विश्वास की सीढ़ी नहीं हो सकती है उसे अनुभव जन्य होना चाहिए।¹⁴

अगर विचारधाराओं का अंत हो चुका है और उन्नीसवीं शताब्दी की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न वैचारिक विमर्श अब अप्रसांगिक हो चुके हैं तो अब यह प्रश्न उठता है कि समाज अब किस दिशा की ओर उन्मुख है और उसकी धुरी क्या है। विचारधारा की समाधि पर बने इस समाज का स्वरूप क्या है। इसका जवाब डेनियल बेल ने अपनी अगली पुस्तक *The Coming of post industrial society: Venture in Social Forecasting* (उत्तर औद्योगिक समाज का

आगमन: सामाजिक भविष्यवाणी का उद्यम 1973) में दिया है। इस पुस्तक की प्रस्तावना में डेनियल बेल लिखते हैं उत्तर औद्योगिक समाज 21वीं सदी का परिदृश्य है। यह एक नए वैचारिक विश्लेषण का उपयोग करने का प्रयास है जो अक्षीय सिद्धान्तों और अक्षीय संरचनाओं पर आधारित है जो एक वृहत ऐतिहासिक परिवर्तन के बारे में संभावित दृष्टिकोणों की भयावह संख्या को क्रमबद्ध करने का तरीका है। ये अर्थव्यवस्था की बदलती हुई प्रकृति और सामाजिक नवाचार और परिवर्तन की दिशा निर्धारित करने में सैद्धान्तिक ज्ञान की नई और निर्णायक भूमिका से उत्पन्न होता है यह भविष्य के लिए एक उद्यम है।¹⁵

डेनियल बेल अपनी पुस्तक की शुरुआत मूलतः मार्क्सवाद द्वारा किए गए पूर्वानुमान के विश्लेषण से करते हैं। मार्क्स सामाजिक विकास के चरण को सामंतवाद, पूंजीवाद और साम्यवाद के उत्तरोत्तर परिवर्तन में विभक्त करते हैं। मार्क्स का मानना था कि साम्यवादी क्रांति की शुरुआत उन्नत पूंजीवादी देशों से होगी। जहाँ उत्पादन के साधन पूर्णतया विकसित हो चुके होंगे। इस दृष्टिकोण से मार्क्स का मानना था कि साम्यवादी क्रांति ब्रिटेन से प्रारम्भ होगी जहाँ औद्योगिक क्रांति के कारण उत्पादन के साधन पूर्णतया विकसित हो चुके हैं। परन्तु मार्क्स की यह भविष्यवाणी गलत सिद्ध हुई। 20वीं शताब्दी में साम्यवादी क्रांति ब्रिटेन की जगह सोवियत संघ और चीन जैसे देशों में हुई जहाँ की अर्थव्यवस्था पिछड़ी हुई थी तथा पर्याप्त औद्योगिकीकरण का अभाव था। यह देश मूलतः कृषक समाज थे। बेल लिखते हैं कि दुनिया में आज जो भी साम्यवादी राज्य है उसमें से कोई भी पूंजीवादी समाज को हराकर या उसका उत्तराधिकारी बन अस्तित्व में नहीं आया है।¹⁶ इन देशों में साम्यवादी शासनों में वह कार्य किया जो पूंजीवाद को करना था अर्थात् उत्पादन के साधनों का विकास और यह कार्य बाजार पूंजीवाद की तुलना में राज्य पूंजीवाद ने किया है। इस तरह साम्यवाद पूंजीवाद का अगला चरण नहीं बल्कि औद्योगिकीकरण का एक वैकल्पिक तरीका है। मार्क्स की दूसरी भविष्यवाणी थी कि पूंजीवादी शोषण समाज को दो वर्गों में बर्जुआ और सर्वहारा वर्ग में विभक्त कर देता है। श्रमिकों का निरन्तर शोषण उन्हें क्रांति की ओर धकेलता है। जिससे साम्यवादी क्रांति एक अपिहार्य घटना बन जाती है। मगर मार्क्स की यह भविष्यवाणी भी गलत साबित हुई। पश्चिम के उन्नत पूंजीवादी देशों

में लोकतंत्र और उदारवादी राजनीति के कारण श्रमिकों की स्थिति में सुधार हुआ। उदार लोककल्याणकारी राज्य ने एक नए वर्ग वेतनभोगी वर्ग को उत्पन्न किया जो अपने बौद्धिक श्रम में उद्यम का संचालन करता है साथ ही श्रमिक वर्ग की तुलना में अच्छा वेतन और सामाजिक हैसियत प्राप्त करता है। इसी वेतनभोगी वर्ग ने तीव्र वर्ग विभाजन को निष्फल कर दिया है तथा मध्यम वर्ग के आकार को विस्तृत किया। श्रम ने अपना समाजशास्त्रीय महत्व खो दिया है तथा तकनीकी और पेशेवर वर्ग अस्तित्व में आया है।

डेनियल बेल लिखते हैं कि पाश्चात्य औद्योगिक समाजों के विकास में पिछले चालीस वर्षों में तीन प्रमुख परिवर्तन हुए हैं 1. संगठन के नियंत्रक के रूप में प्रबंधकों के उदय से औद्योगिक उद्यम का रूपान्तरण 2. औद्योगिक सर्वहारा वर्ग का सकुंचन तथा एक तकनीकी और व्यवसायिक वर्ग द्वारा उसके प्रतिस्थापन से व्यवसायिक संरचना में बदलाव 3. राज्य नौकरशाही के उदय के माध्यम से राजनीतिक प्रणाली का रूपान्तरण।¹⁷ ये प्रवृत्तियाँ पूंजीवादी और साम्यवादी दोनों समाज में देखने को मिल रही हैं। यह एक ऐसे उत्तर औद्योगिक समाज के आगमन के पूर्वानुमान की ओर इंगित करता है जहाँ सैद्धांतिक ज्ञान और तकनीक प्रमुख तत्व होंगे। उत्तर औद्योगिक समाज के विचार ने साम्यवाद और पूंजीवाद के वैचारिक विमर्श को पूर्णतया अप्रसंगिक बना दिया है।

1989 में सोवियत संघ के विघटन ने शीतयुद्ध का अंत कर दिया और साम्यवाद और पूंजीवाद के वैचारिक संघर्ष को विराम दे दिया। बदली परिस्थिति में साम्यवाद को एक व्यवहार्य विकल्प के रूप में अस्वीकार कर दिया गया और यह माना जाने लगा कि विचारधाराओं के पुराने झगड़े अप्रसंगिक हो गए हैं और विचारधारा के अंत को साम्यवाद के अंत का पर्याय बना दिया गया।

अब उदारवाद स्वयं एक विचारधारा न रहकर मानव समाज की सरल, सहज, एकमात्र विकासवादी दिशा के रूप में माना जाने लगा और साम्यवाद को एक विचलन माना जाने लगा। इसी क्रम में 1989 में अमेरिकी सामाजिक विश्लेषक और राजनीतिक व्याख्याकार फ्रांसिस फुकुयामा ने उदार लोकतंत्र के संदर्भ में नेशनल इंटरैस्ट जर्नल में एक लेख लिखा। अपने लेख में फुकुयामा ने यह तर्क दिया कि शासन की एक व्यवस्था के रूप में उदार लोकतंत्र के प्रति

सहमति बढ़ती जा रही है और इसने अपने विरोधी विचारधाराओं जैसे वशानुगत राजतंत्र, फासीवाद और साम्यवाद पर विजय प्राप्त कर ली है। उदार लोकतंत्र मानव जाति के विचारधारात्मक विकास का अंतिम बिंदु है। इससे पूर्व की शासन व्यवस्थाओं में अपनी कमियाँ और अबौद्धिक तत्व विद्यमान थे जबकि उदार लोकतंत्र अपने सभी अंतर्विरोधों से मुक्त है और इस रूप में यह इतिहास का अंत है।¹⁸ आगे चलकर फ्रांसिस फुकुयामा ने अपनी पुस्तक *The End of History and the last man* 1992 में अपने तर्कों का विस्तार से उल्लेख किया। इसे सोवियत संघ में विघटन के बाद उदार पूंजीवादी लोकतंत्र की विश्व विजय की घोषणा के रूप में देखा गया। अब विचारधारा के अंत का विमर्श का स्थान इतिहास के अंत विमर्श ने ले लिया। इसके प्रत्युत्तर में सैमुअल हंटिंगटन ने अपनी पुस्तक *The Clash of Civilization and the Remaking of world order* 1983 (सभ्यताओं का संघर्ष और नई विश्व व्यवस्था का निर्माण) पुस्तक प्रकाशित की। हंटिंगटन फुकुयामा के इतिहास के अंत की अवधारणा का विरोध करते हुए कहते हैं कि शीतयुद्ध के अंत के उल्लास ने समरसता के भ्रम की स्थिति उत्पन्न की जो जल्द ही बिल्कुल वैसा ही साबित हुआ। 1990 के दशक की शुरुआत में दुनिया अलग हो गयी। परिवर्तन अपिहार्य था मगर यह प्रगति नहीं थी। ऐसा ही समरसता का भ्रम प्रथम विश्व युद्ध पश्चात उत्पन्न हुआ जिसमें यह कहा गया कि यह युद्ध अब युद्धों का अंत है तथा दुनिया लोकतंत्र के लिए और सुरक्षित हो गयी है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भी यह कहा गया कि यह विशिष्ट गठबंधनों और एकतरफा कार्यवाहियों तथा शक्ति सतुलन का अंत थी। बल्कि अब हमारे पास एक शांतिप्रिय देशों का वैश्विक संगठन है जो स्थायी शांति के लिए बना है। जबकि हुआ इसके उलट प्रथम विश्व युद्ध के बाद साम्यवाद व फासीवाद का उदय हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद शीत युद्ध की शुरुआत हुई। ठीक उसी तरह शीत युद्ध के अंत के बाद जातीय संघर्षों में गुणात्मक वृद्धि, जातीय उन्मूलन तथा कानून व्यवस्था की टूटन साथ ही नव साम्यवाद और नव फासीवाद का पुनरोदय देखने को मिला। एक समरसतापूर्ण विश्व प्रतिमान वास्तविकता से बहुत दूर था जो उत्तर शीत युद्ध कालीन विश्व को एक नई दिशा दे सकता था। हंटिंगटन ने विश्व राजनीति का एक नया प्रतिमान विकसित किया है जिससे संघर्ष और सहयोग का निर्धारण मूलतः संस्कृति तथा अंतिम रूप से

सभ्यताओं द्वारा निर्धारित होता है। मानव इतिहास सभ्यताओं का इतिहास है।⁹ हंटिंगटन मानते हैं सभ्यता एवं सभ्यताओं का संघर्ष भविष्य की विश्व राजनीति को निर्धारित करेगा। हंटिंगटन विश्व का आठ प्रमुख सभ्यताओं में विभाजित करते हैं। सिनिक, जापानी, हिन्दु, इस्लामिक, आर्थोडोक्स, पश्चिमी, लैटिन अमेरिकन, अफ्रीकन। हंटिंगटन के अनुसार लोगो के मध्य प्रमुख मतभेद ना तो वैचारिक होते हैं ना राजनीतिक या आर्थिक बल्कि सांस्कृतिक होते हैं। विचारधारा के अंत की संकल्पना अब हंटिंगटन में शब्दों में सभ्यताओं के संघर्ष में बदल गयी है।

डेनियल बेल की विचारधारा का अंत और उसके फलस्वरूप उत्तर औद्योगिक के उदय की संकल्पना को आधी सदी में वैचारिक विमर्श और वास्तविक स्थितियों में काफी परिवर्तन आया है। इस आधी सदी में हमने साम्यवाद को एक व्यवहार्य विकल्प से एक विचलन में बदलते हुए देखा है। उदारवाद की संकल्पना में भी व्यापक परिवर्तन हो चुका है नव उदारवादी विचारों ने उदारवाद के स्वरूप और उसकी उपलब्धियों को महत्त्वहीन बना दिया है। उदारवाद की जिन उपलब्धियों पर उदारवादी विचारको को नाज था वह अब धूमिल होती जा रही है। लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा अब नियामक राज्य में बदल गयी है। मिश्रित अर्थव्यवस्था को निजी उद्यमों के विस्तार ने समाप्त कर दिया है। सरकारी और निजी उद्यमों में आटोमेशन और कम्प्यूटरीकरण ने सफेदपोश कर्मचारियों की संख्या में उल्लेखनीय गिरावट की है। अब ज्यादा से ज्यादा उद्यम इस दिशा में प्रयासरत है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता की तकनीक से मानवीय बौद्धिक श्रम को भी विस्थापित किया जाए। यह कह सकते हैं कि विचारधारा का अंत अभी नहीं हुआ है। हालांकि इसकी संभावना काफी समय से व्यक्त की जा रही थी।

दूसरी बात यह है कि मार्क्स और डेनियल बेल विचारधारा के अंत की संकल्पना पर एकमत है। मार्क्स मानते हैं कि विचारधारा मिथ्या चेतना और झूठे विचारों के साथ ही विशिष्ट हितों का प्रतिनिधित्व करती है और साम्यवादी समाज जो वर्ग विहीन होगा उसमें विचारधारा की कोई आवश्यकता नहीं होगी सभी विचारधारा का अंत हो जाएगा। जबकि डेनियल बेल मानते हैं तकनीक और सैद्धान्तिक ज्ञान पर आधारित उत्तर औद्योगिक समाज, जिसमें तकनीकी और विशिष्ट ज्ञान पर आधारित वर्गों का वर्चस्व होगा, विचारधारा

निरपेक्ष होगा। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या विचारधारा का महत्व मनुष्य की वास्तविक जीवन में समाप्त होता जा रहा है? इसका उत्तर व्यक्ति और समष्टि दोनों स्तरों पर दिया जाना आवश्यक है। पहला तथ्य यह है कि चिंतन मनुष्यता का प्रमाण है और एक आदर्श व्यवस्था की कल्पना पर विचार विमर्श कभी पूर्णतया समाप्त नहीं हो दूसरा राजनीतिक स्तर पर विचारधारा के साथ सबसे बड़ी समस्या इसका वास्तविक जीवन में रूपांतरण है और हम आज की परिस्थितियों में यह नहीं कह सकते हैं कि जितनी भी विचारधारा और इनकी सैद्धांतिकी उपलब्ध है इसको पूर्णतया वास्तविक स्तर पर लागू कर पाना सम्भव होता जा रहा है। आदर्श लोक के स्तर पर विचारधाराएं कभी नहीं मर सकती लेकिन धरातल पर वास्तविक क्रियान्वित पर ही उनका वास्तविक मूल्यांकन सम्भव है। विचारधारा के संदर्भ में एक दुखद पहलू यह है कि विचारधारा, जो विचार के विश्लेषण का माध्यम बनना था मगर यह एक राजनीतिक पूर्वाग्रह में बदल कर रह गयी! आवश्यकता यह है इसे पुनः विचारों के विश्लेषण के विज्ञान के रूप में पुनर्स्थापित किया जाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. इग्लटन, टेरी, 'आइडियोलोजी' (संपादित), लांगमैन, ग्रुप यूके लिमिटेड, लंदन और न्यूयार्क, 1994 पृष्ठ 1
2. जेफरसन, थामस, 'ए ट्रीटीज ऑन पालिटिकल इकोनामी बाय द काउंट देस्ट्रू द ट्रेसी' (संपादित), लुडविग वान मिसेस इंस्टीट्यूट अलबामा, 1970 पृष्ठ 1
3. बेल, डेनियल, 'द एण्ड ऑफ आइडियोलोजी: आन द एक्जहाशन ऑफ पालिटिकल आइडियाज इन फिफटीज', हार्वर्ड यूनिवर्सिटी, प्रेस कैम्ब्रिज, 1988 पृष्ठ 395
4. बेल, डेनियल, 'द एण्ड ऑफ आइडियोलोजी: आन द एक्जहाशन ऑफ पालिटिकल आइडियाज इन फिफटीज', वही पृष्ठ 395
5. फ्रीडन माइकल, सार्जेंट टॉवर लैमन, स्टीयर्स मार्क्स 'आक्सफोर्ड-हैडबुक ऑफ पालिटिकल आइडियोलोजी', आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, प्रेस यूनाइटेड किंगडम, 2013 (किंडल प्रकाशन) पृष्ठ अध्याय-2
6. बेल, डेनियल वही पृष्ठ 397

7. फ्रीडन माइकल, सार्जेंट टावर लैमन, स्टीयर्स मार्क वही पृष्ठ अध्याय-2
8. हेवुड, पालिटिकल आइडियोलोजी एन इण्ट्रोडक्शन, ब्लुमबेरी एकेडमिक लंदन (सातवा किंडल संस्करण) अध्याय-1
9. फुकुयामा, फ्रांसिस, अमेरिका एट द क्रासरोड: डेमोक्रेसी पावर एण्ड द नियों न्यू हेवन कंजरवेटिव लेगेसी, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन 2006 पृष्ठ 15
10. बेल, डेनियल, 'द एण्ड ऑफ आइडियोलोजी वही पृष्ठ 411
11. फ्रीडन माइकल, सार्जेंट टावर लैमन, स्टीयर्स मार्क वही पृष्ठ अध्याय-6
12. ऐराँ, रेमण्ड, 'द ओपियम ऑफ द इटेलेक्चुअल', नार्तन लाइब्रेरी, न्यूयार्क, 1962 पृष्ठ 319
13. बेल, डेनियल वही पृष्ठ 393
14. बेल, डेनियल वही पृष्ठ 405
15. बेल, डेनियल, 'द कमिंग ऑफ पोस्ट इंडस्ट्रियल सोसायटी वेंचर इन सोशल फॉरकास्टिंग, बेसिक बुक्स, न्यूयार्क, 1998 पृष्ठ (iii)
16. बेल, डेनियल वही पृष्ठ 74
17. बेल, डेनियल वही पृष्ठ 74
18. फुकुयामा, फ्रांसिस, 'द एण्ड ऑफ हिस्ट्री एण्ड द लास्ट मैन', द फ्री प्रेस, न्यूयार्क 1992 पृष्ठ xi
19. हटिंगटन पी सैम्युअल, 'द क्लैश ऑफ सिविलाइजेशन एण्ड द रिमेकिंग ऑफ वर्ल्ड आर्डर, सीमन एण्ड सुसर, न्यूयार्क, 1996 पृष्ठ 40

मंडी और चंबा जिले की गुर्जर समुदाय की भाषा गुज्जरी की वर्तमान स्थिति – एक संक्षिप्त अध्ययन

परस राम

शोधार्थी, केंद्रीय विश्वविद्यालय हिमाचल प्रदेश, धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश)

प्रो. नारायण सिंह राव

प्रोफेसर, केंद्रीय विश्वविद्यालय हिमाचल प्रदेश, धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश)



shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

किसी भी देश, प्रदेश, क्षेत्र और समुदाय विशेष की अपने विचारों और भावों को प्रकट करने की कोई न कोई अपनी भाषा और बोली होती है। इसी प्रकार से गुर्जर समुदाय की अपनी भाषा गुज्जरी, गुजरी या गोजरी है, जो प्राचीन समय के राजाओं के शासनकाल में जानने, समझने और बोलने वाली मुख्य भाषा रही है। मध्यकाल और ब्रिटिश काल में विदेशी आक्रांताओं के कारण गोजरी भाषा को दरकिनार करने के कारण जिसका निरंतर क्षरण हुआ है। अपनी लिपि न होने से इसे प्रारंभ में देवनागरी लिपि, मध्यकाल और उत्तर काल में उर्दू तथा अनेक स्थानीय भाषाओं में लिखा गया है। वर्तमान समय में भी विदेशों सहित भारत के अनेकों प्रदेशों में गुर्जर समुदाय के द्वारा बोली जाने वाली यह भाषा हिमाचल प्रदेश के मंडी और चंबा सहित सभी जिलों में भी बोली जाती है। कहीं कहीं पर यह भाषा गीतों, पहेलियों और मौखिक रूप से प्रयोग में लाई जाने वाली बोलचाल की भाषा रह गई है। इस अध्ययन में शोध का उद्देश्य जिला मंडी और चंबा के गुर्जर समुदाय की गुजरी भाषा की स्थिति का अध्ययन करने का प्रयास है, जिसके लिए प्राथमिक और द्वितीय स्रोतों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाएगा।

संकेताक्षर : गुज्जरी, गुजरी, गुर्जरी, गुर्जुरी, गोजरी, गोजुरी, गोजिरी भाषा।

गुज्जरी भाषा का अस्तित्व गुर्जर समुदाय के अस्तित्व के साथ जुड़ा हुआ है। गुर्जर समुदाय का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है और इस समुदाय का प्रभाव मध्यकाल और ब्रिटिश काल तक था। गुज्जरी भाषा प्राचीन समय से आज तक गुर्जर समुदाय के द्वारा बोली जाती रही है, हालांकि विदेशी आक्रांताओं के प्रभाव और उनके द्वारा लाए गए बदलाव के कारण यह भाषा कमजोर पड़ी है। गुज्जरी भाषा की अपनी लिपि न होने के कारण इसे पहले देवनागरी लिपि में लिखा जाता था और बाद में उर्दू आदि अनेक भाषाओं में भी लिखा जाने लगा। आज भी भारत के कई राज्यों जैसे हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और दुसरे देशों पाकिस्तान, अफगानिस्तान आदि में गुज्जर समुदाय द्वारा यह भाषा बोली जाती है। वर्तमान में हिमाचल प्रदेश के चंबा जिले और मंडी जिले में अधिक और सघन आबादी वाले गुज्जर समुदाय के लोगों के द्वारा यह भाषा बोली जाती है। लेकिन समय के साथ पश्चिमीकरण और आधुनिकता के प्रभाव ने इस भाषा को खतरे में डाल दिया है। अंग्रेजी, उर्दू, हिंदी और स्थानीय भाषाओं का प्रभाव बढ़ने से गुज्जरी भाषा का प्रयोग घट रहा है। गुजरी भाषा बोलने वाले गुज्जर समुदाय के कम जनसंख्या वाले क्षेत्र में यह भाषा लगभग लुप्त हो चुकी है और कहीं-कहीं यह सिर्फ गीतों, कहावतों और पहेलियों तक सीमित रह गई है। गुज्जरी भाषा का अस्तित्व संकट में है, और इसे बचाने के लिए गंभीर प्रयासों की आवश्यकता है।

साहित्य समीक्षा

गुज्जर समुदाय द्वारा बोली जाने वाली भाषा गुज्जरी है, जिसका नाम संभवतः इसी जनजाति के नाम पर पड़ा है। ग्रियर्सन ने अपनी 'भारतीय भाषाओं का भाषावैज्ञानिक सर्वेक्षण' (Linguistic Survey of India) में गुज्जरी भाषा को विशेष महत्व दिया है और यह उल्लेख किया है कि यह भाषा पहाड़ी से काफी मिलती-जुलती है।

ग्रियर्सन लिखते हैं:

“जब हम पहाड़ी भाषा की चर्चा करते हैं, तो यह देखेंगे कि प्राचीन समय में वर्तमान कुमाऊँ और गढ़वाल जिलों के साथ-साथ इनके पश्चिम में स्थित क्षेत्रकृजिसमें शिमला की पहाड़ियाँ भी शामिल हैं—को ‘सपादक्ष’ कहा जाता था। इस क्षेत्र में गुर्जर जाति के लोग अपनी प्रवास यात्रा के दौरान आकर बस गए थे। वहां से कुछ गुर्जर मैदानों की ओर उतर आए... जहां भी वे मैदानों में बसे, उन्होंने अपनी मूल भाषा को त्याग दिया। लेकिन जैसे ही हम निचली पहाड़ियों की ओर बढ़ते हैं, हमें एक ऐसी बोली मिलती है जिसे स्थानीय लोग ‘गुज्जरी’ के नाम से जानते हैं। प्रत्येक स्थान पर यह बोली वहां के गुज्जरों के पास रहने वाले लोगों की भाषा के रूप में मिलती है।’ गुज्जरी एक प्राचीन बोली है, जो गुर्जर समुदाय द्वारा बोली जाती है। यह बोली मूलतः उनकी प्रवासी पहचान की परिचायक है, जो आज भी निचली पहाड़ियों में संरक्षित रूप में पाई जाती है।

कांगड़ा गजेटियर में कांगड़ा क्षेत्र की गुज्जरी भाषा के बारे में कहा गया है:

“गुज्जरी और स्थानीय पंजाबी का एक व्याकरणहीन मिश्रण।’ कुल मिलाकर इस बोली में गुज्जरी तत्व प्रधान हैं और पंजाबी प्रभाव बाद में सामने आता है।²

गुर्जर समुदाय ने अतीत में मालवा, राजस्थान, गुजरात में स्थानांतरण कर दीर्घ काल तक गुजरात में निवास किया था और जो हिमाचल, पंजाब, हरियाणा, उत्तराखंड और जम्मू कश्मीर के हिमालय क्षेत्र में भी फैला हुआ था। खानदेश में आने पर उनकी बोली पर मराठी, अहिराणी, भीली पावरी का अनंतरूप प्रभाव पड़ा है। इसमें ब्रज, अवधि वर्तमान पंजाबी के शब्द भी मिल जाते हैं ताजा खोज के अनुसार पंजाबी गुर्जरी से निकली भाषा है।³

उपरोक्त साहित्य समीक्षा के आधार पर देखा जाए तो गुज्जरी एक प्राचीन प्रवासी बोली है, जो गुर्जर समुदाय की पहचान स्वरूप आज भी निचली पहाड़ियों में बोली जाती है। गुज्जर समुदाय ने भारत के अनेकों प्रदेशों में निवास किया तथा वहां की स्थानीय भाषा मराठी, हरियाणी, भीली, पावरी पर प्रभाव, ब्रज, अवधि से मेल जोल और पंजाबी का गुज्जरी भाषा से उत्थान हुआ है। गुज्जर समुदाय आज के समय में भी इसी गुज्जरी भाषा का प्रयोग करते हैं, लेकिन अब यह बोली क्षेत्रीय

स्थानीय बोलियों से काफी प्रभावित हो चुकी है। इसी तरह मंडी और चंबा जिले की गुर्जर समुदाय की गुज्जरी भाषा भी प्रभावित हुई है फिर भी, जब वे अन्य समुदायों से संवाद करते हैं, तो सामान्यतरु स्थानीय भाषा का ही प्रयोग करते हैं। फिर भी यह बोली आज भी अपनी पहचान बनाए हुए है, हालांकि समय और संपर्क के प्रभाव और बदलाव आने से मंडी और चंबा जिले की गुर्जर समुदाय की गुज्जरी भाषा की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करना एक रोचक विषय है।

शोध प्रविधि और उद्देश्य

शोध प्रविधि में प्राथमिक स्रोतों में व्यक्तिगत साक्षात्कार, प्रश्नावली और द्वितीयक स्रोतों के आधार पर विषय का अध्ययन किया जायेगा। मेरे अध्ययन का उद्देश्य जिला मंडी और चंबा में गुज्जरी भाषा की वर्तमान स्थिति के बारे में एक संक्षिप्त अध्ययन करना। गुज्जरी भाषा की वर्तमान स्थिति के बारे में जानना और समाज को उससे अवगत करवाना। गोजरी भाषा के लुप्त होने के कारण को जानना और गुज्जर समुदाय सहित संपूर्ण समाज को अवगत करवाना। गुज्जरी भाषा के संरक्षण के लिए उपाय को समझना और सुझाव देना।

जिला मंडी और चंबा में गुजरी भाषा की स्थिति

गुर्जरी बोली का नामकरण उसके प्रयोग करने वाले गुर्जरों के आधार पर हुआ है। गुर्जर जाति गुजरात से आकर महाराष्ट्र उत्तर पश्चिम राजस्थान पर बस गया। इस क्षेत्र को गुजरात कहा जाता है इसका नाम गुर्जरों की अत्यधिक आबादी और उनके विशेष रहन-सहन संस्कृति के आधार पर गुजरी बोलने वालों के नाम से भी जाना जाता है। गुजरी भाषा को बोलने वाले सभी शब्दों को एक ही प्रकार से बोला जाता है भले ही इस भाषा के लहजे पर किसी स्थानीय क्षेत्र का प्रभाव होता है परंतु भारत के किसी भी कोने के साथ-साथ विदेश में भी एक समान रूप से यह भाषा बोली जाती है। गुजरी भाषा के उच्चारण में ऋ को रु के रूप में उच्चारित किया जाता है। जैसे ऋषि को रुषि, हूं तू तमे, हमें, अपुन, तेन येन तीन में गुजरी के सर्वनाम है।⁴ उपरोक्त कथन से गुज्जर समुदाय की गुज्जरी भाषा और निवास का भूगोलिक आधार स्पष्ट होता है कि गुज्जर क्षेत्र का नाम गुजरात और गुर्जरी बोली का नामकरण गुर्जर समुदाय के नाम से ही प्रकट हुआ है। गुज्जरी भाषा के सर्वनाम सहित गुज्जरी भाषा के उच्चारण और लहजे पर स्थानीय क्षेत्र का प्रभाव रहता

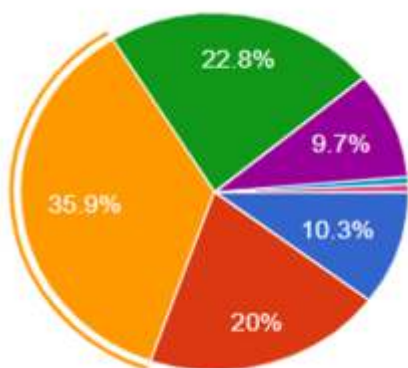
हैं। जिला मंडी और चंबा के गुर्जर समुदाय द्वारा गुजरी बोली के उच्चारण में निश्चित रूप से स्थानीय प्रभाव है।¹ डॉक्टर दिलीप पटेल के उपरोक्त कथन के समान जिला मंडी और चंबा के इन सभी क्षेत्र के किसी भी कोने में जब गुजरी बोली जाती है तो उसमें भी क्षेत्रीय प्रभाव का भाषा के स्वर और लहजे में थोड़ा बहुत अंतर देखा गया है।

वे अपने धर्म और क्षेत्र की परवाह किए बिना अपनी मातृभाषा गूजरी (जिसे 'गुर्जुरी', 'गोजुरी' और 'गोजिरी' भी लिखा जाता है) बोलते हैं। कश्मीर, राजस्थान, हरियाणा, यूपी. और यहाँ तक कि पाकिस्तान के गूजर भी वही भाषा 'गूजरी' बोलते हैं जो मारवाड़ी या राजस्थानी से बहुत मिलती-जुलती है। यह उनके साम्राज्य के दौरान शाही भाषा थी, इसलिए वे इसे बहुत पसंद करते हैं।¹ उपरोक्त से स्पष्ट होता है कि धर्म और क्षेत्र की परवाह किए बिना गुज्जर समुदाय के द्वारा गुज्जरी भाषा बोली जाती है। जो कभी शाही भाषा हुआ करती थी। जिसे गुज्जरी, गुजरी, गुर्जरी गुर्जुरी, गोजरी, गोजुरी और गोजिरी आदि अनेक नामों जाना जाता है। भारत के अनेक प्रदेशों

सहित समूचे गुज्जर समुदाय के द्वारा यह भाषा प्रयोग में लायी जाती है। यह भाषा सभी स्थानों में एक जैसी बोली जाती है।

पारंपरिक गुजरी भाषा का इतिहास बहुत पुराना है। "गुर्जर समुदाय जिला मंडी के पधर, जोगिंदर नगर, कटौणा में गुज्जरी भाषा पूरी तरह से बोलता, जानता और समझता है।"⁷ "वर्तमान समय में भी चंबा के गुर्जर समुदाय के सभी लोग आपस में गुजरी भाषा बोलते हैं।"⁸ बहुत ही "प्रमुख पहचान गुर्जरों के पास उसकी बोली जाने वाली भाषा गुजरी है। जिसे हिंदू और मुस्लिम दोनों गुज्जर समुदाय अपनी पारंपरिक भाषा का प्रयोग करते हैं। जो दुनिया के किसी दूसरे समुदाय के पास आज भी नहीं है।"⁹ जिला मंडी के पधर, जोगिंदर नगर, कटौणा और चंबा में गुज्जरी भाषा पूरी तरह से हिंदू और मुस्लिम गुज्जर समुदाय द्वारा बोली और समझी जाती है। गुज्जर समुदाय के लोग जब आपस में बात करते हैं तो अपनी बिरादरी के साथ हमेशा गुजरी भाषा में ही बात करता है। गुज्जरी भाषा उनकी प्रमुख पहचान है।

हिमाचल प्रदेश के मंडी और चंबा जिले में गुज्जर समुदाय द्वारा बोली जाने वाली गोजरी या गुजरी भाषा की स्थिति



- गोजरी, (मंडियाली और चम्बियाली)
- हिंदी, (मंडियाली और चम्बियाली)
- गोजरी, हिंदी, (मंडियाली और चम्बियाली)
- अंग्रेजी, गोजरी, हिंदी, (मंडियाली और चम्बियाली)
- अंग्रेजी, हिंदी, (मंडियाली और चम्बियाली)
- अंग्रेजी, हिंदी, (पंजाबी)
- उपरोक्त सारी

ऊपर दा गइ आकृत म हिमाचल प्रदेश क मंडा आर चंबा जिले के गुर्जर समुदाय के 145 लोगों के गुजरी भाषा बोलने वालों का प्रतिशत दिखाया गया है। इसमें सबसे अधिक 35% लोग गुजरी के साथ हिंदी और स्थानीय भाषाएँ जैसे मंडियाली और चम्बियाली बोलते हैं। इसके बाद 22% लोग गुजरी के साथ अंग्रेजी और हिंदी तथा स्थानीय भाषाओं को भी जानते हैं। 10% लोग केवल अपनी प्राचीन गुजरी भाषा को जानते हैं,

जबकि 20% लोग गुजरा नहा बालत, लाकन हदा और अपनी स्थानीय भाषा बोलते हैं। 10% लोग ऐसे हैं जो गुजरी नहीं जानते, परंतु अंग्रेजी, हिंदी और स्थानीय भाषा बोलते हैं। इस प्रकार, 30% लोग जो गुजरी भाषा बिल्कुल नहीं जानते, और 70% लोग जो गुजरी के साथ अन्य भाषाएँ भी बोलते हैं। साक्षात्कार से यह पता चला कि मंडी जिले के तहसील पधर और जोगिंदर नगर में हिंदू गुर्जर समुदाय के लोग गुजरी

भाषा बोलते हैं, जबकि मुस्लिम गुर्जर समुदाय के लोग इन दोनों तहसीलों में गुजरी भाषा जानते हैं। चंबा जिले के सभी तहसीलों में मुस्लिम गुर्जर समुदाय के लोग गुजरी भाषा बोलते हैं, जबकि कुछ स्थानों पर हिंदू गुर्जर समुदाय के लोग नहीं बोल पाते हैं। उपरोक्त आंकड़ों के आधार पर स्पष्ट होता है कि 30% से अधिक गुर्जर समुदाय के लोग गुजरी भाषा नहीं जानते हैं और आने वाले समय में इस भाषा की लुप्त होने की संभावना है।

जम्मू कश्मीर में “गोजरी के कुछ लोकगीत जिन्हें ‘लोक बार’ कहा जाता है, विशेष रूप से नूरा, तजा, बरसिया आदि 18वीं और 19वीं शताब्दी के दौरान सामाजिक और राजनीतिक उत्पीड़न के खिलाफ कुछ गुज्जर युवाओं के वीरतापूर्ण प्रदर्शनों की कहानियां हैं।¹⁰ ठीक इसी प्रकार से हिमाचल प्रदेश में गुज्जरों द्वारा अलग अलग प्रकार से बोलचाल भाषा के साथ गोजरी गीतों में सैनिक का “वीर सोढा”¹¹, पशु पालक “रँझा”¹² गीत, गंगा यात्रा का “गंगड़ी गीत”¹³, और “जप ले हरी को नाम ओ बन्देया”¹⁴ आदि गुज्जरी गीत आज 21वीं सदी में भी गाये जाते हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि संरक्षण से वंचित होने के बाद भी गोजरी साहित्य लोकगीतों के रूप में है। जिसे सुदूर पहाड़ों और जंगलों में गुज्जर किसी न किसी तरह से गोजरी भाषा बोलते हैं। वे अपनी संस्कृति और भाषा को मूल रूप में सुरक्षित रखने में सफल रहे, परन्तु वर्तमान समय में जिसका अस्तित्व भी लुप्त की कगार पर है।

गुज्जरी भाषा का क्षरण

गुर्जर समुदाय की बहुत तादाद में गुजरी भाषा को जानने वाले, समझने वाले और बोलने वाले लोग हैं परंतु जब उनके बच्चे स्कूलों में जाते हैं तो उन्हें “दूसरी भाषाओं में शिक्षा ग्रहण करने के लिए मजबूर होना पड़ता है जबकि वे बच्चे अच्छी तरह से गुजरी भाषा का उपयोग करते हैं और उन्हें स्कूलों में अंग्रेजी और हिंदी भाषा में शिक्षा दी जाती है। जिससे इस समुदाय के बच्चों के साथ, समुदाय के साथ और पारम्परिक गुज्जरी भाषा के साथ अन्याय हो रहा है। जो अपनी लुप्त की संकटकालीन स्थिति पर है।”¹⁵ इस से स्पष्ट होता है कि गुर्जर समुदाय के बच्चे अपनी पारंपरिक गुजरी भाषा में दक्ष होते हुए भी स्कूलों में उन्हें अंग्रेजी और हिंदी जैसी अन्य भाषाओं में शिक्षा दी जाती है, जिससे उनकी अपनी भाषा की महत्वता और पहचान

कम होती जा रही है। इस परंपरा का प्रभाव गुज्जरी भाषा की लुप्ति की ओर इशारा करता है, जो अब संकट के दौर से गुजर रही है।

गुजरी भाषा का इतिहास तो बहुत पुराना है। वर्तमान समय में भी चंबा के गुर्जर समुदाय के सभी लोग आपस में गुजरी भाषा बोलते हैं। यदि इसकी पतन की बात करें तो “जो लोग पढ़ लिखकर दूसरे स्थान में जाते हैं वह दूसरी भाषाओं का प्रयोग करते हैं। व्यक्ति दूसरे स्थान पर नौकरी करता है तो उस स्थान और समाज के अनुसार ही भाषा बोली जाती है।”¹⁶ इस से स्पष्ट होता है कि गुजरी भाषा का प्रयोग कम होने का मुख्य कारण है कि लोग दूसरे स्थानों पर काम करने या शिक्षा प्राप्त करने जाते हैं, जहां वे स्थानीय भाषाओं का उपयोग करते हैं, जिससे अपनी मातृभाषा का प्रयोग धीरे-धीरे कम होता जा रहा है।

“कुछ गुर्जर समुदाय के लोग अनपढ़ होते हुए भी अपनी भाषा गुजरी के साथ अन्य राज्यों की भाषाएं भी बोलता है। जिसमें पंजाबी, हिंदी, कश्मीरी, पठानी इत्यादि। गुर्जर समुदाय अपनी भाषा गुजरी को आज भी अच्छी तरह से बोलता और समझता है। इसकी अपनी लिपि न होने के कारण और न ही किसी व्यवसायिक, शैक्षणिक पाठ्यक्रम में, सामाजिक आचार व्यवहार में सभी सामाजिक समुदायों में प्रयोग नहीं की जाती है जिस कारण से यह भाषा अपनी लुप्ति की ओर अग्रसर है।”¹⁷ इस से स्पष्ट होता है कि गुर्जर समुदाय के लोग अपनी पारंपरिक गुजरी भाषा के साथ अन्य भाषाएं भी बोलते हैं, लेकिन गुजरी भाषा की कोई लिपि न होने और उसे शैक्षिक, व्यवसायिक या सामाजिक संदर्भों में इस्तेमाल न किए जाने के कारण यह भाषा लुप्त होने की कगार पर है। इसके प्रयोग की कमी और विकसित न होने के कारण, यह भाषा समय के साथ समाप्त हो सकती है।

बहुत सारे गुर्जर समुदाय के बच्चों की शादियां दूसरे स्थानों पर होती हैं। “चंबा के गुर्जर की समुदाय के बच्चों की शादी जम्मू कश्मीर के लोगों के साथ पठान और कश्मीरी के साथ होती है तो इस कारण से भी वह वहां के कश्मीरी और पठानों की भाषा का प्रयोग करते हैं।”¹⁸ इस से यह भी पता चलता है कि गुर्जर समुदाय के बच्चों की शादी दूसरे स्थानों पर होने के कारण, वे कश्मीरी और पठान या अन्य भाषाओं का प्रयोग करने लगते हैं, जिससे गुजरी भाषा का प्रयोग और भी कम हो जाता है।

गुजरी भाषा को दूसरे समाज के व्यक्ति ना तो बोल ही पाते हैं ना ही समझ पाएंगे। जिस कारण से एकमात्र इसी समाज के द्वारा प्रयोग की जाने वाली ”भाषा केवल बड़े बूढ़े बुजुर्ग या पुरानी पीढ़ी तक ही प्रयोग की जा रही है। जैसे-जैसे बड़े बुजुर्ग खत्म हो रहे हैं। इस भाषा का पतन हो रहा है। गुर्जर समुदाय के बच्चे दूसरी भाषाओं का प्रयोग कर रहे हैं। जब वह दूसरे समाज में जाता है। अपनी भाषा को बोलने में शर्म महसूस करता है।¹⁹ यह भी पता चलता है कि गुजरी भाषा केवल बुजुर्गों द्वारा ही बोली जा रही है, जबकि युवा दूसरी भाषाओं का प्रयोग करने लगे हैं, जिससे समाज में गुजरी भाषा का प्रयोग कम होता जा रहा है और यह धीरे-धीरे लुप्त हो रही है।

गुर्जर समुदाय धारों में रहता था वह शिक्षा ग्रहण नहीं करता था तब गोजरी भाषा बोलता था, परंतु अब के समय में गुर्जर समुदाय के बच्चे शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं उनके व्यवहार में, उनकी शिक्षा में बदलाव आ रहा है। वह दूसरी समुदायों की भाषा संस्कृति को अपना रहे हैं और दूसरे समाज के साथ भी मिल जूल रहा है।²⁰ पता चलता है कि गुर्जर समुदाय के बच्चे अब शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं और अन्य समाज की भाषा तथा संस्कृति को अपनाने लगे हैं, जिससे गोजरी भाषा का प्रयोग कम होता जा रहा है।

“चंबा जिले में सरकार के माध्यम से मोबाइल स्कूलों में गुर्जर समुदाय के लोगों से ही अध्यापकों को लगाया हुआ था जो गुजरी भाषा को अच्छी तरह से बोलते समझने और सीखते सिखाते हैं परंतु सरकार की ठीक शिक्षा नीति न होने के कारण गुजरी भाषा जानने वाले अध्यापकों को मोबाइल स्कूलों से हटा दिया गया था।”²¹ यह पता चलता है कि सरकार की शिक्षा नीति में सुधार की कमी के कारण, गुजरी भाषा को जानने वाले अध्यापकों को चंबा जिले के मोबाइल स्कूलों से हटा दिया गया, जिससे इस समुदाय की भाषा और संस्कृति को नुकसान हुआ।

“आजकल के समय में सभी लोग अपने बच्चों को प्राइवेट स्कूलों में पढ़ने के लिए भेजते हैं। जहां पर उन्हें नर्सरी कक्षाओं से ही अंग्रेजी में शिक्षा दी जाती है और उसी तरह का व्यवहार उन बच्चों के साथ घर में उनके माता-पिता भी अंग्रेजी में ही बात करने में सहयोग करते हैं और उन्हें अंग्रेजी बोलने में प्रेरित करते हैं और उसे अपनी शान समझते हैं।”²² जिससे वे अपनी गुजरी भाषा को नजर अंदाज करते हैं। अंग्रेजी भाषा

को अच्छा समझते हुए अपने बच्चों को अंग्रेजी बोलने में प्रेरित करते हैं। अपनी सामुदायिक गुजरी भाषा को बोलने में शर्म महसूस करते हैं।

“गुजरी भाषा का क्षरण पश्चिमी सभ्यता के साथ लगाव के कारण हो रहा है। विदेशी ट्रेंड, विदेशी फैशन और सोशल मीडिया के माध्यम से विदेशी भाषाओं और संस्कृतियों के कारण आज का युवा अत्यधिक प्रेरित हो रहा है और अपने संस्कृति और भाषा को दरकिनार करता हुआ पश्चिमी संस्कृति, पहनावा, भाषा का उपयोग करना अपने शान समझ रहा है।”²³ यह स्पष्ट होता है कि विदेशी ट्रेंड, फैशन, सोशल मीडिया और पश्चिमी सभ्यता से प्रेरित नई पीढ़ी अपनी पारंपरिक गुजरी भाषा को असभ्यता के प्रतीक के रूप में देखने लगी है, जिसके कारण गुजरी भाषा अपेक्षा दूसरी संस्कृति और भाषाओं की ओर रुझान बढ़ रहा है।

दूसरी तरफ शिक्षा की लिपि और माध्यम ना होने से गुज्जर समुदाय की अपनी गुज्जरी भाषा होने के वावजूद दूसरी भाषाओं की ओर रुख किया जाता है। “कुरान को पढ़ने के लिए अरबी भाषा की जरूरत होती है परंतु अरबी को समझने के लिए उर्दू भाषा का सहयोग लिया जाता है। जिस प्रकार से संस्कृत भाषा को समझने के लिए हिंदी का सहारा लिया जाता है।”²⁴ जन्म, विवाह, पूजा पद्धति, आराधना और जाप करने के मंत्र संस्कृत में दिए गए हैं। जिन्हें समझने के लिए हम हिंदी का सहारा लेते हैं। उसी प्रकार से अरबी को समझने के लिए उर्दू का सहारा लिया जाता है और कुरान में सभी मंत्र या लेख अरबी भाषा में ही है। जो मस्जिद, मक़बरा और मदरसों में सिखाई जाती है। धर्म के प्रति झुकाव होने के कारण से अपनी भाषा को छोड़कर मुस्लिम गुज्जर समुदाय के लोग अरबी, उर्दू भाषा की ओर जल्दी आकर्षित हो जाते हैं।

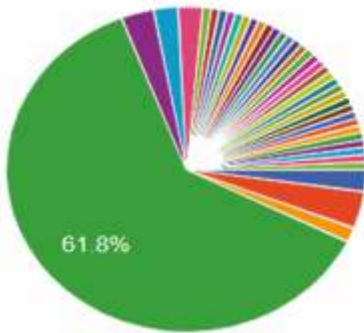
परिणाम स्वरूप हिमाचल प्रदेश में आने वाले बीस वर्षों में गुज्जरी भाषा को बोलने वाले गुज्जर समुदाय के लोग गिने चुने होंगे। इसी तरह से गुज्जरी भाषा को समझने वाले गुज्जर समुदाय के लोग वालीस वर्षों तक नहीं होंगे। आधुनिकता और पश्चिमी के प्रभाव के इस दौर में गुज्जरी भाषा के संरक्षण न होने से और स्कूलों में दूसरी भाषा की प्राथमिकता के कारण यह अपनी अंतिम सांस ले रही है।

संरक्षण के उपाय और सुझाव

अभी तक संरक्षण का जो काम हुआ है वह न के बराबर है। हालाँकि, यह उत्साहजनक है कि "एक अंग्रेजी विद्वान रेव ग्राहम बेली ने 1908 ई. में गोजरी के संदर्भ में हिमालयन लैंग्वेज का व्याकरण प्रकाशित किया है। जॉर्ज ग्रियर्सन ने अपने "लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया" में 20वीं सदी की शुरुआत में गोजरी भाषा का विशेष उल्लेख किया है। गोजरी भाषा में योगदान देने वाले प्रमुख लोगों में जे.सी. शर्मा (गोजरी व्याकरण, गोजरी ध्वन्यात्मक वाचक), राम प्रसाद खटाना (गोजरी जबा-ओ-अदब), प्रो. पी.एन. पुष्प और डॉ. मिल्की राम कुषाण शामिल हैं।²⁵ गोजरी भाषा के संरक्षण में अब तक बहुत कम प्रयास किए गए हैं, हालाँकि कुछ महत्वपूर्ण योगदानों के रूप में रेव ग्राहम बेली, जॉर्ज ग्रियर्सन और अन्य विद्वानों ने इस भाषा पर काम किया है, जिससे गोजरी भाषा का अध्ययन और लेखन संभव हो सका है। जो कि बहुत कम है।

इस "गुजरी भाषा के बचाव में सरकार के द्वारा उचित कदम उठाया जाए इसे पाठ्यक्रम में उचित स्थान दिया जाए। संविधान की अनुसूची में एक अलग भाषा के रूप में रखा जाए।"²⁶ गुजरी भाषा के संरक्षण और विकास के लिए सरकार को इसे शिक्षा प्रणाली और पाठ्यक्रम में शामिल करना चाहिए और संविधान की अनुसूची में एक अलग भाषा के रूप में मान्यता प्रदान करनी चाहिए। "गुजरी भाषा और इसके साहित्य को एक विषय के रूप में पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाना चाहिए। गुजरी भाषा की बहुत सारी पुस्तकें लिखी गई हैं। जिन्हें सरकारी लाइब्रेरी में रखा जाना चाहिए और सरकार की तरफ से भी इसके प्रोत्साहन के लिए प्रयत्न किए जाने चाहिए।"²⁷ गुजरी भाषा और इसके साहित्य को पाठ्यक्रम में शामिल होने के साथ साथ ही इसकी लिखी गई पुस्तकों को सरकारी लाइब्रेरी में संग्रहित किया जाए।

लुप्त होती जा रही गुजरी भाषा के संरक्षण के लिए 127 लोगों के द्वारा दिये गए सुझाव के आधार पर उपाय और सुझाव :-



- संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं...
- सकूली पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए
- दूसरी भाषा अंग्रेजी उर्दू अरबी के आकर्षण...
- उपरोक्त सभी
- दूसरी भाषा अंग्रेजी उर्दू अरबी के आकर्षण...
- संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं...
- No
- नहीं

सबसे अधिक 61.8% लोगों ने अन्य सुझावों सहित गुजरी भाषा पाठ्यक्रम में शामिल, संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं के साथ 23वीं भाषा जोड़ने का प्रावधान करने के लिए अपने सुझाव दिए। गुज्जर समुदाय के 3.7% लोगों ने गुजरी भाषा के संरक्षण के लिए गुजरी को स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए। 38.2% अनेको सुझाव के साथ 61.8% लोगों को मिलकर 100% लोगों का मानना है कि गुजरी को स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल और संविधान की आठवीं अनुसूची कानूनी रूप से सुरक्षित होना आवश्यक है। गुजरी भाषा के संरक्षण के लिए गुज्जर समुदाय के लोगों को स्कूली पाठ्यक्रम में

भी गुजरी साहित्य, शिक्षा, सभ्यता, इतिहास को पढ़ने और पढ़ाने का प्रावधान हो। स्कूल के पाठ्यक्रम में गुजरी भाषा के विषय को पढ़ने पढ़ाने के लिए गुजरी भाषा को जानने वाले अध्यापकों को पढ़ाने के लिए और समझाने के लिए लगाया जाए तो गुजरी भाषा का संरक्षण किया जा सकता है। देवनागरी इत्यादि दूसरी लिपियों में ही मातृभाषा गोजरी में ही शिक्षा देने का प्रावधान हो। युवा लेखकों और शोध संस्थानों को इस पहलू पर उचित ध्यान देना चाहिए। इस भाषा की रचनात्मकता, साहित्य और शोध कार्य की दिशा में बहुत काम किया जाना बाकी है। सरकार, समुदाय, शोधकर्ता और समाज को मिलकर प्रयास करना होगा।

इसका साहित्य संग्रहित कर शोध कार्य किया जाना चाहिए, ताकि इस प्राचीन और महत्वपूर्ण भाषा को आने वाली पीढ़ियों तक पहुंचाया जा सके।

निष्कर्ष

निष्कर्ष में यह कह सकते हैं कि गुज्जरी भाषा, जो कभी शाही भाषा के रूप में जानी जाती थी, लेकिन जो हिमाचल प्रदेश के मंडी और चंबा जिलों में वर्तमान में अपनी अस्तित्व की संकटपूर्ण स्थिति से गुजर रही है। शोध के आंकड़ों के आधार पर यह पाया गया कि गुर्जर समुदाय के लगभग 70% लोग गुजरी भाषा को जानते, समझते और बोलते हैं, जबकि 30% लोग इसे भूल चुके हैं। मंडी और चंबा जिलों में हिंदू और मुस्लिम गुर्जर समुदाय गुजरी का उपयोग करते हैं, लेकिन आधुनिकता और अन्य भाषाओं के प्रभाव के कारण यह भाषा धीरे-धीरे लुप्त हो रही है। इसकी मुख्य वजह समाज में अन्य भाषाओं, जैसे हिंदी, अंग्रेजी, और उर्दू का प्रभाव और शिक्षा प्रणाली में गुजरी भाषा का न होना है। इसके अलावा, पश्चिमी सभ्यता, विदेशी ट्रेड व फैशन और सोशल मीडिया ने नई पीढ़ी को अपनी पारंपरिक भाषा से विमुख कर दिया है, जिससे गुजरी भाषा का प्रयोग कम हो रहा है। गुजरी भाषा के संरक्षण के लिए सबसे महत्वपूर्ण कदम इसे पाठ्यक्रम में शामिल करना, संविधान की आठवीं अनुसूची में इसे मान्यता देना, और समाज में इसके प्रति जागरूकता बढ़ाना है। गुज्जर समुदाय के लोग अपनी मातृभाषा को महत्व देने के बजाय अंग्रेजी और अन्य भाषाओं को शान समझने लगे हैं, जिसके कारण गुजरी भाषा का प्रयोग हिचकिचाहट के साथ किया जा रहा है। इस स्थिति से बचने के लिए आवश्यक है कि गुजरी भाषा को स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए और इसका प्रचार-प्रसार सरकारी और गैर-सरकारी स्तर पर किया जाए। इसके अलावा, गुजरी साहित्य का संग्रहण और इसके लिए शोध कार्य की दिशा में गंभीर प्रयास किए जाने चाहिए। गुज्जरी भाषा का संरक्षण केवल समुदाय के प्रयासों से नहीं, बल्कि सरकार और अन्य संगठनों के सहयोग से संभव है। अगर इसके संरक्षण के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाए गए, तो आने वाले समय में यह भाषा पूरी तरह लुप्त हो सकती है। इसलिए, यह अत्यंत आवश्यक है कि गुजरी भाषा को संरक्षित किया जाए और इसके अस्तित्व को आने वाली पीढ़ियों तक पहुंचाया जाए। इसके लिए सरकारी पहल, समाज की जागरूकता, और शिक्षा नीति में सुधार बेहद जरूरी हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Grierson, G-A-, *Linguistic Survey of India, Vol- I, Part I, Delhi: Low Price Publications, 1990 [1927], p- 173-*
2. Kangra District Gazetteer, 1926, p- 149
3. पटेल, डॉक्टर दिलीप, गुर्जर साम्राज्य, भारतीय गुर्जर परिषद, 2003, पृष्ठ संख्या 170, लंबौरा हरिद्वार उत्तरांचल
4. पटेल, डॉक्टर दिलीप, गुर्जर साम्राज्य, भारतीय गुर्जर परिषद, 2003, पृष्ठ संख्या 170, लंबौरा हरिद्वार उत्तरांचल
5. परम देव वात्सल्य, गांव नारला, डा. कुन्नु, त. पधर, जिला मंडी, हि. प्र., 23-07-23
6. Atif Ali, *Gurjar History A Viewpoint, The Gujars Vol-1, A Book On History And Culture of Gujjar Tribe, P 224, Compiled by Dr- Javaid Rahi, J&K Academy of Art, Culture and Languages Srinagar/Jammu*
7. परम देव वात्सल्य, गांव नारला, डॉ. कुन्नु, त. पधर, जिला मंडी, हि. प्र., 23-07-23
8. मोहम्मद रफी डेण्डा, गाँव भूल्लू, डॉ. शिलाघराट, चंबा हि. प्र., 11-02-24
9. जाकिर हुसैन खटाणा, गांव व डॉ. हण्डूर, त. सलूणी, चंबा, हि. प्र., 16-03-2024
10. Anjum, Dr- Rafique, *Gojari& Through Ages, The Gujars Vol-1] A Book On History And Culture of Gujjar Tribe, P120-29, Compiled by Dr. Javaid Rahi, J&K Academy of Art, Culture and Languages Srinagar/Jammu.*
11. कमला, कौशल्या, रुमालू और वीणा देवी भूमला, पत्नी श्री इंदर सिंह, रोपी, त. पधर, जिला मंडी, हि. प्र., 17-07-2024
12. कमला, कौशल्या, रुमालू और वीणा देवी भूमला, पत्नी श्री इंदर सिंह, रोपी, त. पधर, जिला मंडी, हि. प्र., 17-07-2024
13. परम देव वात्सल्य, गांव नारला, डॉ. कुन्नु, त. पधर, मंडी, हि. प्र., 23-07-23
14. दुनी चंद यादव, गांव साहल, डॉ. कुन्नु, त. पधर, जि. मंडी, हि. प्र., 23-7-23
15. मस्किन लली कोली, गांव जूरी, डॉ. चरड़ा, त. चुराह, चंबा, हि. प्र., 18-03-23
16. मोहम्मद रफी डेण्डा, गाँव भूल्लू, डॉ. शिलाघराट, चंबा हि. प्र., 11-02-24

17. गुलाम रसूल भाटीया, गांव व डॉ. पल्यूर, जिला चंबा, हि. प्र., 12-02-2024
18. मोहम्मद रफी डेण्डा, गाँव भूल्लू, डॉ. शिलाघराट, चंबा हि. प्र., 11-02-24
19. हनीफ खटाना, गांव झंडूर, डॉ. संघणी, त. सलूणी, चंबा, हि. प्र., 05-03-2024
20. बशीर गोरसी, गांव करबाड़ सठी, डॉ. संघणी, त. सलूणी, चंबा, हि. प्र., 08-03-24
21. मस्किन लली कोली, गांव जूरी, डॉ. चरड़ा, त. चुराह, चंबा, हि. प्र., 18-03-23
22. नूरअली लोद्दा, गांव ग्वाणी, डॉ. कोट रोपी, त. पधर, मंडी हि. प्र., 25-07-23
23. बशीर अहमद भट्टी, गांव व डॉ. चमिणु, चंबा, हि. प्र., 14-02-2024
24. नूरअली लोद्दा, गांव ग्वाणी, डॉ. कोट रोपी, त. पधर, मंडी हि. प्र., 25-07-23
28. Anjum, Dr- Rafique, Gojari & Through Ages, The Gujars Vol-1, A Book On History and Culture of Gujjar Tribe, P 121, 126, Compiled by Dr- Javaid Rahi, J&K Academy of Art, Culture and Languages Srinagar/Jammu.
29. नूरअली लोद्दा, गांव ग्वाणी, डॉ. कोट रोपी, त. पधर, मंडी हि. प्र., 25-07-23
30. हनीफ खटाना, गांव झंडूर, डॉ. संघणी, त.सलूणी, चंबा, हि. प्र., 05-03-2024

Weather Prediction through NWP Models

Dr. Laxman Ram Bala

Professor and Head, Maulana Azad University, Jodhpur

Ram Prasad

Research Scholar, Maulana Azad University, Jodhpur



shodhshree@gmail.com

Abstract

The study aims to investigate the prediction of weather events using Numerical Weather Prediction (NWP) models. Weather events, such as heavy rainfall, severe thunderstorm, dust storms, gusty winds and heat waves, have significant impacts on society, infrastructure, and the economy. Accurate and timely prediction of these events is crucial for effective disaster management, risk mitigation, and resource allocation. This research will focus on examining the capabilities and limitations of NWP models in forecasting extreme weather events, exploring the underlying physics, data assimilation techniques, model evaluation methods, and potential improvements in prediction accuracy.

Keywords: NWP (Numerical Weather Prediction), WRF (Weather Research & Forecast), ARW (Advance Research WRF).

We live in a developing age where the swift increase in population and the resulting migration are causing society to become more urbanized. We take serious steps to alleviate the many environmental hazards that we are aware of. When considering

temperature fluctuations, climate change is considered the biggest problem facing humanity in the twenty-first century.

Climate change can lead to more severe and frequent draughts, heat waves, dust storms etc. which can have significant impacts on ecosystems, agriculture, and human health. Greenhouse gases, solar radiation, land use changes plays a crucial role in climate change. It is important to continue monitoring and studying weather patterns in arid regions to better understand the impacts of climate change and develop effective strategies for adaptation and mitigation. Prediction weather events in arid region is always a challenging task due to lack of moisture and high variability of weather pattern. The lack of moisture in the atmosphere makes it difficult to detect and predict weather events. Additionally the high variability of weather patterns in arid region makes it challenging to accurately predict weather events. However, by using of this advance technology Numerical Weather Prediction weather events can be predictable more emphasize and accurate. Severe weather events have major consequences on every field of human life such as loss of life and property, displacement of populations, economic impacts, environmental impacts, health impacts and social impacts.

Weather Research and Forecasting (WRF) Model: Working Principles This Weather Research Forecast model comprises a combination of mathematical equations and physical parameterizations to simulate the behavior of the atmosphere. The model is based on the Navier-Stokes equations, which describe the motion of fluids, and the thermodynamic laws that govern the exchange of heat and moisture between the atmosphere and the Earth's surface. To simulate the complex relations between the atmosphere and the Earth's surface, the WRF model uses a technique called nesting. This involves

dividing the atmosphere into a series of nested grids, each with a different resolution. The highest-resolution grid covers a small area, such as a city or mountain range, while lower-resolution grids cover larger regions.

The WRF model also incorporates data from a variety of sources, including observations from weather stations, satellites, and radar. This data is assimilated into the model using advanced data assimilation techniques, which help to get better the correctness of the prediction. Once the model has been initialized with the present condition of the atmosphere, it is run forward in time using numerical integration techniques. The model produces forecasts of temperature, wind speed and direction, precipitation, thunderstorm and other meteorological variables at regular intervals. To ensure that the forecasts are accurate, the WRF model undergoes continuous evaluation and improvement. Researchers compare the model's forecasts to actual observations to identify areas where the model can be improved. This feedback is used to refine the model's algorithms and parameterizations, ensuring that it remains a up to date tool for weather prediction and research.

Principles and functioning of NWP models: NWP (Numerical Weather Prediction) models are based on the fundamental principles of fluid dynamics, thermodynamics, and the conservation laws of mass, momentum, and energy. NWP models use these equations to represent the atmospheric processes and simulate the evolution of weather conditions over time. Here are the basic principles and functioning of NWP models:

➤ **Governing Equations:** NWP models utilize a set of fractional differential equations known as the primitive equations, which describe the physical processes governing the atmosphere. These equations include the equations of motion (Navier-Stokes equations), the thermodynamic equation, and the

continuity equation. They represent the conservation of momentum, energy, and mass in the atmosphere.

➤ **Discretization:** To solve the governing equations numerically, the continuous equations are discretized, converting them into a grid-based representation. This involves dividing the atmosphere into a three-dimensional grid of points, with each point representing a small volume or cell. The equations are then approximated and applied to these discrete grid points.

➤ **Initialization:** Before running the model, it needs to be initialized with the current state of the atmosphere. This involves gathering mean time weather observations, such as weather satellites, radar, and weather stations. The observations are assimilated into the model to determine the initial conditions, including variables like temperature, pressure, humidity, and wind.

➤ **Time Integration:** Once the model is initialized, it predicts the future state of the atmosphere by advancing in time using numerical integration methods. The model calculates the evolution of atmospheric variables at each grid point over a series of time steps. This involves solving the discretized equations for each variable, taking into account the interactions between neighboring grid points.

➤ **Parameterization:** NWP models operate on grids with a finite resolution, which limits their ability to capture small-scale atmospheric processes. To account for processes that occur on scales smaller than the grid resolution, parameterization schemes are employed. These schemes represent subgrid-scale processes such as cloud formation, turbulence, convection, and radiation. Parameterizations use simplified mathematical representations to approximate the effects of these processes on the larger-scale grid points.

- **Output and Visualization:** After the model completes the integration for a given time period, it generates output data representing the predicted atmospheric conditions. This data includes weather variables like wind speed, clouds data, temperature, humidity and precipitation. The output can be further processed and visualized to create weather forecasts, charts, maps, and other meteorological products.
- **Iteration and Model Improvement:** NWP models are continually refined and improved through a process of iteration and validation. Model outputs are compared with observed weather conditions to evaluate the accuracy and identify areas of improvement. Adjustments are made to the model physics, parameterizations, and assimilation techniques to enhance the model's performance and produce more accurate forecasts.

Explore Advancements in model resolution, forecasting techniques: Advancements in model resolution, ensemble forecasting, and post-processing techniques have significantly improved the accuracy and reliability of weather predictions. Let's explore these areas:

- **Model Resolution:**
 - a. **Increase in Grid Resolution:** A notable advancement is the increase in grid resolution of NWP models. Higher-resolution models allow for better representation of small-scale features, such as convective storms, local topography, and atmospheric processes. Convection-permitting models with grid spacing of a few kilometers or less have become increasingly common, leads to accurate prediction.
 - b. **Nesting and Regional Models:** Nesting techniques involve embedding higher-resolution grids within coarser global or regional models. This allows for a

smoother transition between large-scale and small-scale features, enhancing the representation of extreme events. Regional models with higher resolution over specific areas of interest further improve the prediction of localized weather phenomena.

- **Ensemble Forecasting:**
 - a. **Ensemble Systems:** Ensemble forecasting involves running multiple simulations with perturbed initial conditions, model physics, or boundary conditions to capture the uncertainty in weather predictions. Advances in computational power have made it feasible to generate ensembles with increasing member counts. Larger ensembles provide a better estimation of the range of possible weather outcomes, enabling probabilistic forecasts of extreme events.
 - b. **Ensemble Data Assimilation:** forecasting methods, i.e. the Ensemble Kalman Filter (EnKF), have been developed to effectively incorporate observations into ensemble forecasts. These techniques account for the uncertainty in both the initial conditions and model parameters, resulting in more accurate and reliable ensemble predictions.
- **Post-processing Techniques:** Statistical methods, (bias correction, calibration, and model output statistics (MOS), are employed to refine raw model output and improve the accuracy of forecasts. These techniques analyze historical model performance and observed data to correct systematic biases and adjust model output to better match observations. These methods use historical forecast data, observations, and atmospheric predictors to develop statistical models that improve the accuracy and reliability of predictions. Machine learning techniques can capture complex nonlinear relationships and provide tailored post-processing for

specific weather variables and regions.

- c. **High-Resolution Ensemble Post-processing:** Post-processing techniques specifically designed for ensemble forecasts have been developed. These methods statistically calibrate and combine ensemble members to generate calibrated probabilistic forecasts. They aim to reduce ensemble spread, correct biases, and provide more skillful and reliable predictions of extreme events.

Challenges in Predicting Extreme Weather Events: While NWP (Numerical Weather Prediction) models have greatly improved the accuracy of weather prediction, predicting extreme weather events still poses significant challenges. Here are some of the key challenges in predicting extreme weather events through NWP:

- **Model Limitation:** NWP models are based on mathematical equations that represent the behavior of the atmosphere. However, these equations have inherent simplifications and assumptions that may not fully capture the complex processes associated with extreme weather events. For example, convective storms and localized heavy rainfall can be challenging to simulate accurately due to their small-scale nature.
- **Initialization and Data Assimilation:** The accuracy of prediction of NWP deeply relies on the quality and quantity of observational data used to initialize the model. However, obtaining comprehensive and timely observations, especially in remote or data-sparse regions, can be a challenge. Inaccuracies in the initial conditions due to observational errors or incomplete data can propagate and affect the accuracy of predictions, particularly for rapidly developing or localized extreme weather events.
- **Spatial and Temporal Resolution:** The resolution of NWP models plays a crucial

role in accurately representing atmospheric processes. Extreme weather events often occur at smaller spatial scales and shorter timeframes, which may not be adequately resolved by coarse-resolution models. Improving the resolution requires substantial computational resources and poses practical limitations in terms of model complexity and data assimilation.

- **Physical condition of weather:** NWP models use present weather conditions, such as clouds, precipitation, and turbulence to predict the forecast. However, parameterizations introduce uncertainties, as they are based on simplifications and empirical relationships. Accurately representing the physics of extreme events, such as intense convective storms or rapid atmospheric destabilization, remains a challenge.
- **Predictability and Chaos:** Weather is a chaotic system, meaning that small errors in the initial conditions can amplify over time and lead to significant forecast deviations. Extreme weather events often arise from complex interactions of multiple atmospheric phenomena, making them particularly sensitive to initial conditions. This inherent chaotic nature limits the predictability of extreme events beyond a certain lead time.
- **Climate Change and Non-Stationarity:** Climate change introduces additional complexities in predicting extreme weather events. The changing climate can alter the frequency, intensity, and spatial patterns of extreme events, making it challenging to rely solely on historical data for predictions. Incorporating climate change projections into NWP models requires robust methods to account for non-stationary and future climate scenarios.
- **Computational Resources:**
- a. **Model Resolution:** Increasing the spatial

and temporal resolution of NWP models improves their ability to capture small-scale processes and extreme events. However, higher resolution requires more computational resources, including increased processing power, storage capacity, and efficient algorithms.

- b. **Computational Time:** Running NWP models at higher resolutions and with more advanced physics can increase the computational time. Timely forecasts and rapid model updates may be challenging due to limited computational resources and the need to balance accuracy and speed.

References

1. G Venkata Rao et. al. (2022) study over real-time flood forecasting using rainfall forecasts from numerical weather prediction models.
2. Ashok Kumar et. al. (2009) investigation over a mathematical and statistical tool for location-specific weather forecasting in the medium range (up to five days) using the results of a numerical weather prediction model.
3. J Sanjay (2007) on academic research on topic "Atmospheric Boundary Layer Interaction: Over Tropics in Numerical Weather Prediction Models".
4. T S V Vijaya Kumar (2000) in his study "High resolution short range numerical weather prediction over the Indian Subcontinent"
5. Shaik Abdul Hakeem (1983) in his study "Some numerical Weather Prediction Experiments over Indian Region with Barotropic Models"
6. Masoom et al. (2021) in research on "Solar resource assessment and forecasting using satellite data and numerical weather prediction"
7. Satyaban Bishoyi Ratna (2008) in his study "Prediction of onset phase heavy rainfall events and regional characteristics of the Indian Southwest Monsoon using numerical models"
8. Claude Fischer, Thibaut Montmerle, Loik Berre et. al. (2005) in their article on an overview of the variational assimilation in the ALADIN/France numerical weather-prediction system publishes in Quarterly journal of the Royal Meteorological Society
9. Kaifeng Bi, Lingxi Xie, Hengheng Zhang et. al. (2023) in their study "Accurate medium range global weather forecasting with 3D neural netral networks"
10. Dmitrii Kochkov, Janni Yuval, Ian Langmore et. al. (2024) in their article "Neural general circulation models for weather and climate"

Role of MGNREGA During Corona Crisis: A Study of Pratapgarh District in Rajasthan

Gajendra Singh Meena

Assistant Professor, Government Girls College, Dooni (Tonk)



shodhshree@gmail.com

Abstract

MGNREGA is the scheme that provides 100 days of employment to an adult in every household per year. This scheme was launched in February 2006 by UPA government in 200 most backward districts of country. The pandemic COVID-19 happened worldwide in 2020 and it has created a drastic situation for migrant workers. Government of India (GOI) tried to provide livelihood source for them through MGNREGA implementation at grass root level but those all people had suffered by the COVID-19 during lockdown. The study has been carried out in Pratapgarh district of Rajasthan to know the implementation and effectiveness of MGNREGA scheme during the CORONA pandemic. This analysis clearly revealed that MGNREGA played a crucial role for the livelihood of families of villages in district during CORONA crisis. The study reflects the negative perception of respondents about operation of MGNREGA activity during pandemic. Respondents are satisfied with MGNREGA activity, work done in MGNREGA and livelihood security while they are dissatisfied with employment generation, process of wage payment and wage sufficiency for livelihood. Study concludes that there is a need for a lot of improvement required in areas of implementation under MGNREGA scheme.

Keywords: MGNREGA, Pratapgarh, COVID-19, Pandemic, Lockdown.

Migration is one of the most important factors after fertility and mortality that affect the demographic changes in a country. Generally, people are migrating to access the employment opportunity is the destination place. India is a country of villages. About 70 per cent of country's total populations are living in rural areas. The villagers generally belong to marginal, small and landless poor and agriculture is a primary source of their income and livelihood which is not sufficient for their survival. They are not able to get the minimum facilities or basic needs. Non-availability of work in villages forced people to move towards city and towns.

The pandemic COVID-19 happened worldwide during the study period and it has created a drastic situation for migrant workers. All the economic activities had completely shut down and every sector of the economy was affected by nationwide lockdown announced by GOI on 24th March/2020 due to COVID-19. Migrant workers are the most important part of our economy hence lockdown had affects them badly. All the migrant workers had returned back to their native place.

MGNREGA is the scheme that provides 100 days of employment to an adult in every household per year. People those registered and working under the scheme for 100 days, bound to migrate to other places and nearby cities during lean and non-agricultural period for their livelihood because their needs not fulfill by the MGNREGA activity. Government of India (GOI) tried to provide livelihood source for them through MGNREGA implementation at grass root level but those all people had suffered by the COVID-19 during lockdown. The Rajasthan government has initiated steps to generate labour-intensive

opportunities in order to give regular wages to the poor villagers. The flagship schemes wages have been revised from ₹199 a day to ₹220 a day. **Ashok Gehlot (Former Chief Minister of Rajasthan)** said that it would issue job-cards to all migrant labors and engage them under the MGNREGA.

According to **Sachin Pilot**, “MGNREGA is the lifeline of rural laborers and daily-wage workers, small, marginal farmers, agricultural labors and construction workers who have been the worst affected due to Covid-19 lockdown. Therefore, in order to provide financial support to the affected people in the year 2020-2021, hundred days of employment fixed under MGNREGA should be increased to 200 days per family.” Recently, he wrote a letter to **Union Rural Development Minister Narendra Singh Tomar** for demanding the number of days of work under scheme *MGNREGA* to be doubled to 200 for the 1.13 Crore workers employed under the scheme in Rajasthan state. In such crisis, MGNREGA scheme is the best way to provide financial support to the affected people. The scheme is playing a crucial role in India for the workers who were migrating back to their native place. Rajasthan state ranked 1st in country by providing work under MGNREGA during this lockdown. Therefore, our objective is to study the implementation and effectiveness of the MGNREGA scheme for the livelihood of return migrant workers and their families of Pratapgarh district in Rajasthan as a part of this present study. The present study has considered only the MGNREGA registered families.

MGNREGA: An alternative to migration

“NREGA should help in reducing the number of migrant laborers in the country as employment is being provided to them in their own villages.”-Mallikarjun Kharge

The MGNREGA provides a guarantee while also ensuring hundred employment days at a minimum wage rate. One of its primary goals is to significantly reduce migration of labor by giving rural regions access to locally accessible

employment. The MGNREGA program was originally introduced in February 2006 throughout 200 of the most underdeveloped areas after being enacted in August 2005. Later, it was expanded to an additional number of 330 districts across nation in April 2007 and then more 295 districts were added into this in April 2008. This brings up the total number of 625 districts out of the overall 640 districts across the country, according to the Census 2011. According to data that was available on July 28, 2022, the scheme covered 731 districts in India.

Objectives of the Study

The present study is undertaken with the following objectives:

- To study the primary sources of income for respondents households in Pratapgarh district.
- To examine the implementation of MGNREGA in district during CORONA crisis.
- To analyse the association between working status of families under MGNREGA and effectiveness of scheme during CORONA crisis.
- To make appropriate suggestions for strengthening of the scheme on the basis of findings of the study.

Hypotheses

- H₁0: MGNREGA is not implemented properly in Pratapgarh district during CORONA crisis.
- H₂0: There is no association between working status of families under MGNREGA and effectiveness of scheme during CORONA crisis.
- H₃0: There is no improvements required in implementation of MGNREGA scheme.

Study Area

This study selected Pratapgarh district of Rajasthan state for intensive study purposively because Pratapgarh district required the implementation of MGNREGA extensively and intensively for the development of the social

economic conditions of districts. Tribal communities predominantly live in the area. Numerous tribal individuals frequently migrate to surrounding towns within Rajasthan as well as to adjoining states like Madhya Pradesh, Gujarat and Maharashtra in search of employment as construction workers and agricultural laborers. They all migrating families had suffered by CORONA crisis due to national wide lockdown and they had bound to return their hometown and villages.

The study has been carried out in Pratapgarh district Rajasthan to know the implementation and the effectiveness of the MGNREGA scheme during the CORONA pandemic. Therefore, the present study covers the all 8 blocks of the district namely Arnod, Chhoti Sadri, Dalot, Dhamotar, Dhariawad, Peepalkhoont, Pratapgarh and Suhagpura had covered.

Methodology and Data Base

Study is completely based on the primary data which has been collected through a pre-tested schedule with Multi-stage random sampling technique. The initial schedule has prepared in Hindi language so that respondent will easily understand the questions and later on it is prepared in English. The total number of households from each block of district is 50 for the study. Hence, the total number of sampled households is 400 for present study.

Tools and Techniques

Statistical methods such as average, standard deviation etc. have been used and the data are presented by diagram. To know the satisfaction level of sample respondents about effectiveness of MGNREGA during crisis the perceptions of respondents has collected on a scale of 1 to 5 and the average of each variable has determined. One sample 'T' test has used to study analyse the effectiveness of the scheme on various aspects of the families of migrant workers. MS Excel has been used for data analysis and calculation. Chi square test of association also used to study the association between the working status of households and effectiveness of the scheme during CORONA crisis.

Results and analysis

The present study is focused mainly on the implementation and effectiveness of the scheme during CORONA crisis in Pratapgarh district. The results and analysis of the study is divided into the following parts:

MGNREGA Implementation in Pratapgarh District

The MGNREGA scheme was started in the third phase of its implementation in Pratapgarh district. Following table present the brief overview and detail of implementation of the scheme in Pratapgarh district:

Table 1 Brief Overview of MGNREGA Implementation in Pratapgarh

Total Number of Blocks	8
Total Number of GPs	235
Total Number of Job Cards issued (In Lakhs)	2.42
Total Number of Workers (In Lakhs)	4.18
Total Number of Active Job Cards (In Lakhs)	2.11
Total Number of Active Workers (In Lakhs)	3.33
SC worker against active workers (%)	5.65
ST worker against active workers (%)	71.44

Source: www.mgnrega.ac.in (Data retrieved on 23.03.2025)

Primary source of income during CORONA crisis

Table below indicates the primary source of sampled households during CORONA crisis. It is noticed that the source of the livelihood for the most of the families is MGNREGA wages (54.75

per cent) followed by daily labor wages (27.25 per cent), non-agricultural activities (9 per cent), business (2.25 per cent), agricultural activities (1.25 per cent) and 5.50 per cent families are belongs to other activities.

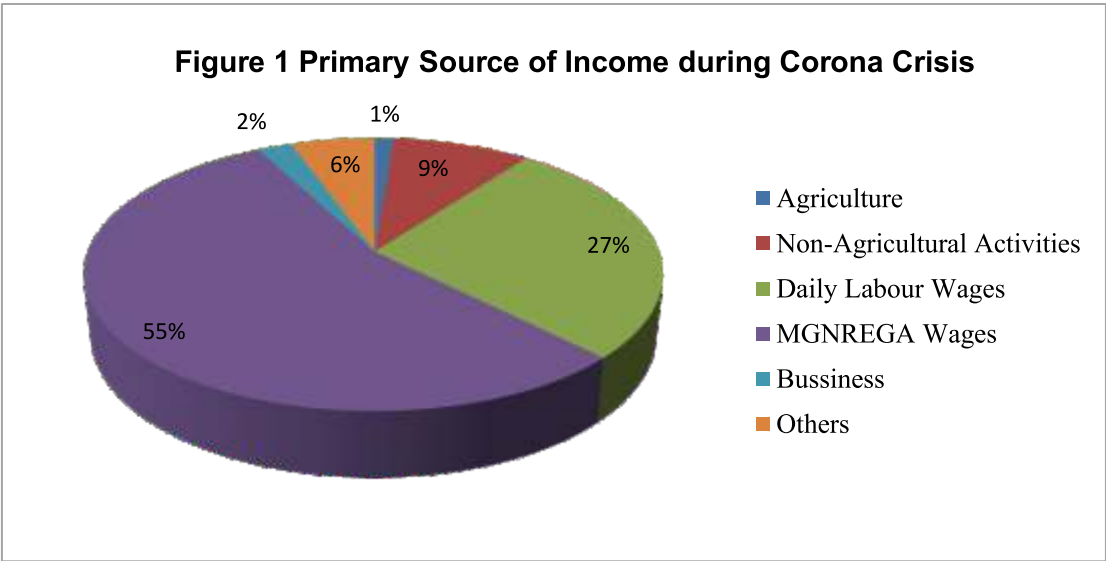
Table 2 Primary Source of Income during Corona Crisis

Source	Number of Households	Per cent of the total Households
Agriculture	5	1.25
Non-Agricultural Activities	36	9.00
Daily Labor Wages	109	27.25
MGNREGA Wages	219	54.75
Business	9	2.25
Others	22	5.50
Total	N = 400	

Source: Data Compiled from Field Survey

This analysis clearly revealed that MGNREGA played a crucial role for the livelihood of families of villages in Pratapgarh district during Corona crisis. Most of the sampled families were completely depends on the wage received under

MGNREGA. The details of the primary source of income of the sampled families in Pratapgarh district during CORONA crisis is demonstrate in the following figure.



Implementation of scheme during CORONA crisis

In 2020, the whole world was suffering from Corona disease. The Government of India

ordered the nationwide lockdown on 24th March, 2020 for 21 days to overcome the crisis situation in country. The MGNREGA scheme is only single option of livelihood for the rural households

during the crisis. The present study includes the role of MGNREGA program during this pandemic to better understanding about the importance of the scheme.

Satisfaction level about MGNREGA implementation during Corona crisis is presented in the table number 3. The perceptions are reported in a five point scale ranging from 1 to 5. Table revealed that the

average score obtained from the respondents for satisfaction on various components related to MGNREGA during Corona crisis such as MGNREGA activity (3.06), work done in MGNREGA (3.54), the level of progress of MGNREGA (3.90) and livelihood security (4.07) etc. are more than 3. This reflects the positive perception of respondents about operation of MGNREGA activity during Corona crisis.

Table 3 Perception about implementation of MGNREGA during CORONA Crisis

Particulars	Perceptions about the implementation Mean Scores	SD	SE	T-Value
Employment generation during the Corona crisis	2.63	0.883	0.416	8.889***
Daily wage payments during the Corona crisis	1.37	0.518	0.024	66.752 (NS)
MGNREGA activity during Corona crisis	3.06	0.78	0.037	1.632***
Was MGNREGA wages sufficient for livelihood?	2.29	0.946	0.044	15.921***
Satisfaction about work done in MGNREGA during Corona crisis	3.54	0.835	0.039	13.719***
The level of progress of MGNREGA during the Corona crisis	3.90	0.862	0.041	22.148***
Livelihood security during the Corona crisis	4.07	0.867	0.041	26.1801***
Overall	2.98	0.813	0.038	0.5219 (NS)

Source: Compiled from primary data

*** Significant at 0.01 level

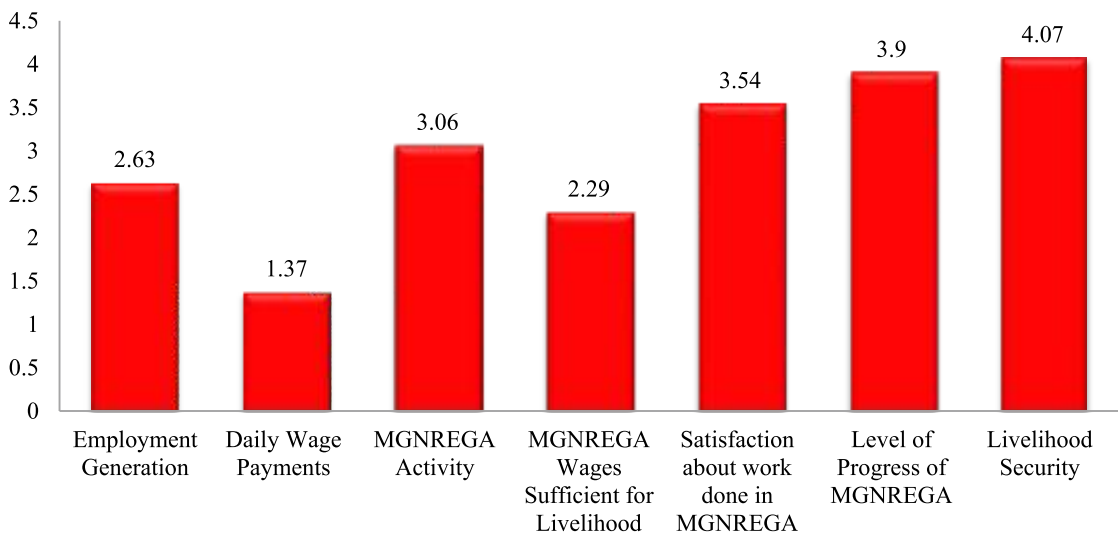
NS- Not Significant

The table depicted that the average score obtained from the respondents for satisfaction on components of employment generation (2.63), daily wage payments (1.37) and wage sufficiency for livelihood (2.29) are less than 3. This reflects the negative perception of respondents about operation of MGNREGA activity during Corona crisis.

Table revealed that the overall mean score of 2.98 indicates a negative perception of the respondents about the implementation of

MGNREGA scheme during Corona crisis. The overall mean score of 2.98 indicates a negative perception of the respondents about the various aspects related to implementation of MGNREGA during CORONA crisis. Thus the null hypothesis of the research was that **“MGNREGA is not implemented properly in Pratpgarh district during CORONA crisis” has been proved correct and it has accepted.**

Figure 2 Mean Score of Satisfaction about MGNREGA Implementation during Corona Crisis



Effectiveness of the scheme during the CORONA crisis

To analyse the effectiveness of the scheme during the CORONA crisis, a Chi-square analysis of cross-tabulation has been conducted between

the variable of the working status of households and the effectiveness of the scheme during CORONA crisis. The findings of the analysis as following:

Table 4 Chi-Square analysis of the association between the working status of households and effectiveness of the scheme during CORONA crisis

			Effectiveness of MGNREGA during CORONA crisis			Total
			Yes	No	Partially	
Working status of households	No	Count	26 (30.95)	41 (48.81)	17 (20.24)	84 (100)
		Expected Count	15.06	49.60	28.34	93
	Yes	Count	36 (11.39)	178 (56.33)	102 (32.28)	316 (100)
		Expected Count	52.94	174.40	96.66	324
	Total	Count	62 (16.19)	219 (53.33)	119 (30.48)	N = 400 (100)
		Expected Count				

Source: Compiled from primary data

The chi-square statistic is 20.1543. The p-value is 0.000042. The result is significant at $p < 0.05$. **Therefore, the null hypothesis that there is no association between working status of return migrant families under MGNREGA and effectiveness of scheme during CORONA crisis has been rejected.**

Required improvements under MGNREGA

Perceptions about the required improvements under MGNREGA are presented in table number

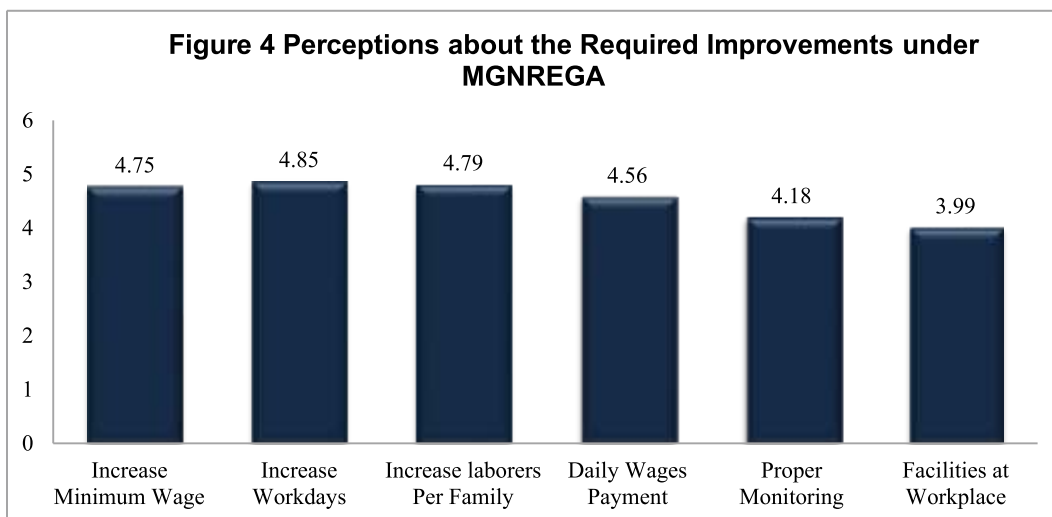
Table 5 Perceptions about the required Improvements under MGNREGA

Particulars	Perceptions about the required improvements (Mean score)	SD	SE	T-Value
Increase minimum wage rates	4.75	0.5906	0.0278	62.8566**
Increase number of workdays	4.85	0.4928	0.0232	79.6356**
Increase in number of laborers per HH	4.79	0.5732	0.027	66.245**
Payment of wages on daily basis	4.56	0.6918	0.0326	47.8355**
Proper monitoring by social audit	4.18	0.9389	0.0442	26.6605**
Improvement in facilities available at the workplace	3.99	0.9694	0.0456	21.6640**
Overall	4.52	0.7094	0.0334	45.4526**

This reflects the negative perception of respondents about implementation of MGNREGA. Therefore, there is a need for a lot of improvement required in implementation of scheme. Table revealed that the overall mean score of 4.52 indicates a positive perception of

5. Table indicates that the average score obtained from the perception of respondents about various components of improvements required in implementation of MGNREGA scheme such as increase minimum wage rates (4.75), increase number of workdays (4.85), increase in number of laborers per family (4.79), payment of wages on daily basis (4.56), proper monitoring by social audit (4.18) and improvement in facilities at the workplace (3.99) etc. are more than 3.

the respondents about the improvements required in implementation of MGNREGA scheme. **Therefore, the null hypothesis that there are no improvements required in implementation of MGNREGA scheme has been rejected.**



Findings of the study

- This analysis clearly revealed that MGNREGA played a crucial role for the livelihood of families of villages in Pratapgarh district during Corona crisis. Most of the sampled families were completely depends on the wage received under MGNREGA.
- The study reflects the negative perception of respondents about operation of MGNREGA activity during Corona crisis. The overall mean score of 2.98 indicates a negative perception of the respondents about the various aspects related to implementation of MGNREGA during CORONA crisis.
- MGNREGA scheme played a crucial role for livelihood security for the people during Corona crisis. Respondents are satisfied with MGNREGA activity, work done in MGNREGA and livelihood security while they are dissatisfied with employment generation, process of wage payment and wage sufficiency for livelihood.
- There is a need for a lot of improvement required in areas of implementation under MGNREGA scheme such as increase minimum wage rates, increase number of workdays, increase in number of laborers per family, payment of wages on daily basis, proper monitoring by social audit and improvement in facilities available at the workplace etc.

Conclusion

All the economic activities had completely shut down and every sector of the economy was affected by nationwide lockdown due to COVID-19. Migrant workers are the most important part of our economy hence lockdown had affects them badly. All the migrant workers had returned back to their native place. MGNREGA is the scheme that provides employment to the families and people those had suffered by the lockdown. This analysis clearly revealed that

MGNREGA played a crucial role for the livelihood of families of villages in Pratapgarh district of Rajasthan during CORONA crisis.

The study reflects that the families are satisfied with MGNREGA activity, work done in MGNREGA and livelihood security while they are dissatisfied with employment generation, process of wage payment and wage sufficiency for livelihood. Study concludes that there is a need for a lot of improvement required in areas of implementation under MGNREGA scheme such as increase minimum wage rates, increase number of workdays, increase in number of laborers per family, payment of wages on daily basis, proper monitoring by social audit and improvement in facilities available at the workplace etc.

Limitations of the study

The study has conducted in Pratapgarh district in Rajasthan by covering all 8 blocks of district to analyse the implementation and effectiveness of MGNREGA scheme in Pratapgarh district during CORONA crisis. The findings of the study may not be transferable to other situations and entire state because the sample was restricted to specific area.

References

1. *The Gazette of India, part-II, Section-1, Registered No DL-(N)/ 0007/2003-05, New Delhi. 7 September 2005.*
2. Sangita Kumari (2014). "Rural-Urban Migration in India: Determinants and Factors." Vol. 3. Issue 2. Mar 2014. 161-180.
3. Mohammed Iqbal (2020). "Coronavirus lockdown: Rajasthan government steps in to give wages to poor villagers." *The Hindu*. 24 April 2020.
4. Sandeep Phukan (2020). "Battle against COVID-19 should be at a human level, says Sachin Pilot." *The Hindu*. 08 April 2020.
5. Aajjeeviika Bureau (2010). "Har Haath ko Kaam: Impact of NREGS on Migrant Households." pp. 3-4.
6. Aajjeeviika Bureau (2007). "Kam ki Zimmedari Meri: A Study of Contractors of Kelwara." pp.1-2.

7. *Amrita Sharma and Rajiv Khandelwal. "Finding voice, visibility and dignity for seasonal migrant workers in tribal regions of western Rajasthan." pp. 14-18.*
8. *Aajjeeviika Bureau (2007). "Impact of National Rural Employment Guarantee Scheme on families of Migrant Workers: A Study." pp. 5.*
9. *Information from official website of Mahatama Gandhi National Rural Employment Guarantee Act website (MGNREGA) www.nrega.nic.in.*
10. *Phase wise implementation list of districts: http://nrega.nic.in/MGNREGA_Dist.pdf.*
11. *MGNREGA At a glance (Pratapgarh district)- http://MGNREGAweb4.nic.in/netnrega/all_lvl_details_dashboard_new.aspx.*

Woven in the Colors of Religion and Caste: Marwar's Social Fabric Through the Lens of the 1931 Census (A Historical Analysis of Society's Structure from a Statistical Perspective)

Dr. Moola Ram

Research Scholar, Sardar Patel University of Police, Security and Criminal Justice, Jodhpur

Dr. Sadhana Meghwal

Assistant Professor, Sardar Patel University of Police, Security and Criminal Justice, Jodhpur



shodhshree@gmail.com

Abstract

This study examines the religious and caste-based social structure of Marwar as recorded in the 1931 Census, providing a historical analysis of its societal framework. Marwar, an integral part of the princely state of Jodhpur, had a deeply entrenched caste hierarchy that shaped occupational roles and economic opportunities. Rajputs held administrative and military power, Brahmins dominated religious and scholarly pursuits, and Vaishya and Jain communities controlled trade and commerce. Agrarian communities such as Jats, Gurjars, and Bhils sustained the rural economy through farming and animal husbandry, while Dalit communities were engaged in labor-intensive and traditional service roles. The study also explores the influence of British colonial policies, particularly census classifications, which reinforced caste and religious divisions, affecting governance and resource distribution. Cultural traditions remained vital, with temples, mosques, Jain derasars, and Sikh gurdwaras shaping religious identities. Festivals such as Diwali, Eid, and Mahavir Jayanti fostered inter-community interactions, despite economic disparities. By analyzing the 1931 Census, this research highlights how colonial administration institutionalized social hierarchies, leaving a permanent impact on Marwar's structure. The findings offer insights into the historical roots of caste and religious classifications, underscoring their influence on contemporary social and economic policies in the region.

Keywords: Marwar, 1931 Census, caste system, religious diversity, social hierarchy, British colonial policies, economic mobility, trade and commerce, social stratification, cultural heritage.

India's historical and cultural landscape has always been incredibly diverse, and the Marwar region of Rajasthan serves as a prime example of this diversity. Marwar, an integral part of the princely state of Jodhpur, was known for its unique social structure, caste divisions, and religious coexistence. From the medieval period to the colonial era, this region remained a center of interaction, conflict, and coordination among various ethnic and religious communities.

The census surveys conducted during British rule provided an essential tool for categorizing Indian society and implementing administrative policies effectively. The 1931 Census¹, carried out by the British colonial administration, offers a detailed statistical representation of the social and religious composition of Marwar. The data from this census reveal that while Hinduism was predominant in the region, significant populations of Muslims, Jains, Sikhs, and Christians were also present. Additionally, the census highlights the caste-based divisions and social hierarchy, providing valuable insights into the contemporary social structure.

The objective of this research paper is to analyze the religious and caste landscape of Marwar through a statistical examination of the 1931 Census. It will explore how religious identities and caste structures influenced social and economic mobility. Furthermore, it will assess how the colonial administration

utilized this data for its governance strategies and the subsequent impact on society.

This study is not only significant from a historical perspective but also contributes to understanding the current social structure. Analyzing the caste system, religious diversity, and the effects of colonial census processes will help us comprehend how social identities have historically evolved and how they continue to shape our society today.

The Historical Context of the 1931 Census

The 1931 Census was the last extensive census conducted by the British administration, providing crucial data for understanding India's social, economic, and religious structure. During British colonial rule, this census aimed not only to ensure administrative control but also to understand India's caste-based and religious framework and shape it to align with colonial policies.²

Marwar, a significant part of the Jodhpur princely state, saw a detailed analysis of its Hindu, Muslim, Jain, Sikh, Christian, and other minority religious communities under this census. It became an essential tool for defining caste-based divisions and religious identities in India. The British government used this data for various administrative and political purposes, including reservation policies, electoral representation, and decisions related to social reform.³

For the first time, the 1931 Census collected more in-depth information regarding economically disadvantaged and marginalized communities. It analyzed the socio-economic status of different caste and religious groups. The British administration utilized this data under its "Divide and Rule" strategy, ensuring the maintenance of religious and caste-based divisions within Indian society.⁴

Another significant aspect of this census was its revelation of the distribution of rural and urban populations. In regions like Marwar, the agrarian economy and caste-based labor structure became evident through the census. The data

also exposed the unequal distribution of resources and opportunities based on religious and caste identities, highlighting the state of social disparities.⁵

Through this study, we aim to understand the social structure of Marwar as reflected in the 1931 Census and examine its lasting impact on modern society.

Religious Structure of Marwar (According to the 1931 Census)

According to the 1931 Census, the total population of Marwar was 2,125,982, with the religious distribution as follows:⁶

- Hindus: 1,829,298 (approximately 86% of the total population)
- Muslims: 176,863 (approximately 8.3%)
- Jains: 113,669 (approximately 5.3%)
- Sikhs: 34
- Christians: 686
- Parsis: 48
- Animists (Nature Worshipers): 3,241

These figures indicate that Hinduism was the dominant religion in Marwar, while the Jain and Muslim communities also had a significant presence.⁷

Key Factors Influencing the Religious Structure:

- Historical Influences: The religious diversity of Marwar was shaped by various rulers, trade routes, and cultural interactions.
- Social Structure: Due to the caste-based hierarchy, many communities' religious identities were closely linked to their traditional occupations.
- Economic Factors: The merchant class (primarily Jains and Hindu Vaishyas) had a significant influence on society.
- Population Migration: Trade and warfare led to the arrival of different religious communities in Marwar.
- Impact of British Administration: British

policies played a crucial role in categorizing religious demographics, facilitating governance and policy implementation.

Caste Structure and Social Hierarchy

The caste structure of Marwar was based on social hierarchy and occupational divisions. Society was divided into various castes, each assigned a specific social and economic role. The major castes included Rajputs, Brahmins, Vaishyas, Jats, Gurjars, Bhils, Meenas, and Dalit communities.⁸

- **Rajputs:** The ruling class, holding political power in most princely states. Their status was based on military prowess and administrative skills.
- **Brahmins:** Engaged in religious and intellectual roles, serving as priests, royal advisors, and educators.
- **Vaishyas:** Involved in trade and economic activities, particularly the Marwari Bania community, which had a strong presence in both local and international trade.
- **Agricultural Communities:**
- **Jats:** Primarily engaged in farming, with many emerging as wealthy landowners.
- **Gurjars:** Associated with animal husbandry and dairy production.
- **Bhils and Meenas:** Traditionally tribal communities engaged in hunting, agriculture, and craftsmanship.

Dalit Communities

The Chamar, Meghwal, Balai, and other Dalit groups occupied the lowest positions in the social hierarchy. They were traditionally confined to leather work, sanitation, and labor-intensive jobs.

During British rule, social reform movements began addressing caste discrimination and untouchability. However, caste-based inequalities persisted, influencing economic mobility, occupational restrictions, and social opportunities. The colonial policies often

reinforced these hierarchies, making them more rigid in many cases.⁹

Population Density and Geographic Distribution of Religious and Caste Groups

The distribution of religious and caste groups in Marwar was influenced by regional, social, and historical factors. According to the 1931 Census, districts like Jodhpur, Pali, Nagaur, Jaisalmer, and Barmer exhibited significant religious and caste diversity.¹⁰ The Hindu community was the largest religious group in Marwar and was spread throughout the region, with a particularly high concentration in Jodhpur, Pali, and Nagaur. The Muslim community was primarily concentrated in Phalodi, Barmer, Jaisalmer, and the inner areas of Jodhpur city. The Jain community, due to its involvement in trade, had a strong presence in Pali, Jalore, and Sirohi.¹¹

The Rajput caste was dominant in Jodhpur, Nagaur, and Pali, where they held influential positions as rulers and warriors. The Brahmin caste was spread across Marwar, but their concentration was particularly high near religious sites and educational centers. The Vaishya community was actively engaged in trade and economic activities, with significant numbers in commercial hubs like Pali, Nagaur, and Jodhpur.¹²

Agriculture-based communities such as Jats¹³, Gurjars, and Meenas were primarily concentrated in the rural areas of Nagaur, Pali, and Jodhpur. These communities were traditionally engaged in farming and animal husbandry, maintaining stability in their occupational roles. The Bhil and other tribal communities were largely found in the forested and hilly regions of Barmer, Sirohi, and Jalore, where they were traditionally involved in hunting, collection of forest produce, and agricultural labor.

Dalit communities, including Meghwals¹⁴, Chamars, and Balais, were spread across Marwar but were more prominently found in rural areas, where they were traditionally engaged in sanitation, the leather industry, and other

service-based occupations.

Several factors influenced the religious and caste density in Marwar, including geographical features, historical migrations, the presence of trade routes, and colonial administrative policies. The 1931 Census provides a clear depiction of this distribution and helps in understanding how geographical and social conditions shaped the spread of religious and caste groups in the region.

British Administration and Classification of Religious-Caste Data

The British administration followed a systematic process for classifying religious and caste data in the 1931 Census. The primary objective of this classification was to comprehend the complex structure of Indian society and facilitate administrative control. This classification was made based on various social, economic, and political considerations.¹⁵

During the census, British officials categorized different religious communities separately, including Hindus, Muslims, Jains, Sikhs, Christians, Parsis, and others. Additionally, the caste hierarchy within Hindu society was meticulously recorded. This classification distinctly categorized upper castes (Brahmins, Rajputs, Vaishyas), intermediate castes (Jats, Gurjars, Meenas), and lower castes (Meghwals, Chamars, Balais).

The British government used this classification as an administrative strategy to maintain divisions between different religious and caste groups. The collected data was not only utilized to implement social policies but also played a role in determining electoral representation, taxation, land ownership, and education policies.¹⁶

Another significant aspect of the census was to track the trends in religious conversion. Special attention was given to conversions facilitated by Christian missionaries, and their effects were thoroughly analyzed.

Under the British policy of "Divide and Rule,"

census data was deliberately used to reinforce divisions between social groups. This classification deepened religious and caste-based differences within Indian society, which later fueled various social and political movements during the independence struggle.

In conclusion, the classification of religion and caste data in the 1931 Census by the British administration was not merely a demographic exercise but a well-planned administrative strategy. This classification influenced contemporary society and had long-lasting effects on India's social structure even after independence.

Religion, Caste, and Social Mobility

In Marwar's social structure, the role of religion and caste was not confined to cultural and traditional factors alone; rather, it had a far-reaching impact on social mobility and economic opportunities. The 1931 census illustrates how religious identity and caste divisions influenced social advancement and class-based opportunities.

Brahmins, Rajputs, and Vaishyas primarily belonged to the upper caste groups and enjoyed privileged status in society. These communities held significant influence in education, administration, and trade. On the other hand, agrarian and labor-associated communities such as Jats, Gurjar, Bhils, and Meenas were largely confined to their traditional occupations. However, certain agrarian castes, particularly the Jats, made economic strides during British rule and achieved social empowerment.¹⁷

The Dalit communities, including Meghwals, Chamars, Balais, and others, occupied the lowest strata of the social hierarchy. They were traditionally restricted to professions such as sanitation, leatherwork, and labor-intensive occupations. During British rule, spread of education and social reform programs fostered some social awareness among these communities, yet caste-based discrimination remained deeply permeated.

Religiously, caste-based mobility within Hindu society was relatively limited, whereas greater social mobility was observed among Muslim and Jain communities. Within the Muslim community, the merchant class and artisans held a better social standing and were primarily concentrated in urban areas. The Jain community was predominantly engaged in trade and financial activities, which contributed to their economic prosperity.

During British rule, access to education and modern employment provided certain castes with opportunities for economic advancement, but caste-based barriers persisted. High-caste dominance in administrative positions, government jobs, and higher education institutions continued to make social mobility challenging for lower castes.

Ultimately, the 1931 census indicates that religion and caste not only reinforced social hierarchies but also played a significant role in determining economic opportunities and resource distribution. Although modern education and industrialization during the colonial period facilitated some degree of social mobility, deep-seated caste prejudices slowed this transformation.

Cultural and Economic Impact of Religious and Caste Diversity

The religion and caste diversity of Marwar deeply influenced the region's cultural and economic landscape. The coexistence of various religious and caste communities not only encouraged cultural exchange but also significantly contributed to the region's economy.

Culturally, Hindu, Muslim, Jain, and Sikh communities preserved their distinct traditions. The architectural heritage of temples, mosques, Jain temples, and gurdwaras, along with religious festivals, enriched the region's cultural legacy. Festivals such as Dussehra, Diwali, Eid, Mahavir Jayanti, and Guru Parv fostered inter-community relationships and promoted social harmony.

Economically, Marwar's caste structure dictated various professions and trade activities. The Vaishya and Marwari communities dominated trade and financial sectors, with their influence extending across India. The Jain community held a significant monopoly in commerce and established major business hubs in cities such as Jodhpur, Pali, and Nagaur. The Muslim community contributed primarily to craftsmanship, the textile industry, and the leather trade. The Rajput caste played a key role in administration and military service, managing local governance and land systems.¹⁸

In rural areas, agriculture and animal husbandry were the primary economic activities. Jats, Gurjar, Bhils, and other agrarian castes were engaged in farming and livestock rearing. Dalit communities were mostly employed in labor-intensive work and traditional service industries. Under British rule, the expansion of modern education and administrative services provided economic advancement opportunities to some castes, though caste-based barriers remained.¹⁹

Thus, religious and caste diversity shaped Marwar's cultural and economic structure. While cultural festivities and traditional occupations fostered social cohesion, economic resource distribution was largely caste-based, benefiting some communities while leaving others disadvantaged.

Conclusion

The 1931 census provides a clear depiction of Marwar's religious and caste landscape. This study highlights how religion and caste not only shaped social structures but also profoundly influenced economic resources and administrative policies. Although the region had a Hindu majority, Jain, Muslim, Sikh, and Christian communities also played significant roles, contributing culturally and commercially.²⁰

Caste-based stratification defined opportunities and restrictions for various social groups. Rajputs, Brahmins, and Vaishyas occupied high social and administrative positions, whereas

Jats, Gurjar, Bhils, and Dalit communities remained confined to agriculture, labor, and other traditional occupations. Although British rule introduced social reforms and education that allowed certain castes to progress economically, caste barriers persisted.

Religious diversity enriched the region's cultural heritage through architecture, festivals, folk traditions, and linguistic variations. However, religious and caste-based classifications also created divisions, which colonial administration often exploited for its own benefit.

The economic impact of religion and caste was evident as well. Merchant communities controlled trade activities, while the laboring classes remained engaged in traditional crafts and agriculture. The spread of modern education and administrative services provided new opportunities for some castes, but overall social and economic mobility remained limited.

In conclusion, an analysis of the 1931 census reveals that Marwar's religious and caste structure played a decisive role in shaping the region's social and economic development. This study not only aids in understanding historical perspectives but also provides a valuable reference for contemporary social policies and economic reforms. Further research on this subject will offer deeper insights into social structures and their long-term implications.²¹

References

1. *The 1931 Census of Marwar State provides detailed demographic data, including village-level statistics for various parganas (administrative divisions). The census was published by the Marwar State Press in Jodhpur in 1931. A digitized version of this census is available on the Internet Archive. For a comprehensive understanding of the 1931 Marwar Census, you may also refer to the "Report on the Administration of the Marwar State (1931)," which offers additional context and analysis. This report is accessible through the Digital Library of India. These resources provide valuable insights into the demographic and administrative aspects of Marwar during that*
2. *period., Government of Marwar. Census of Marwar State, 1931. Marwar State Press, 1931. Internet Archive, https://archive.org/stream/in.ernet.dli.2015.48687/2015.48687.Census-Marwar-State_djvu.txt.*
3. *Hutton, J. H. Census of India, 1931. Vol. I-India. Part I—Report. With an actuarial report by L. S. Vaidyanathan, Government of India, Manager of Publications, 1933.*
4. *Census, Marwar State, 1931. Village Table. Marwar State Press, 1932.*
5. *Ibid.*
6. *Ibid.*
7. *Hutton, J. H. Census of India, 1931. Vol. I-India. Part I—Report. With an actuarial report by L. S. Vaidyanathan, Table on Religious Distribution, Government of India, Manager of Publications, 1933.*
8. *Ibid.*
9. *1931 Census of India, Caste and Social Stratification Section. Hutton, J. H. Census of India, 1931. Vol. I-India. Part I—Report. With an actuarial report by L. S. Vaidyanathan, Table on Religious Distribution Government of India, Manager of Publications, 1933.*
10. *Ibid.*
11. *Census, Marwar State, 1931." Village Table, Jodhpur State Demographic Report, Marwar State Press, 1932.*
12. *For a comprehensive understanding of the religious demographics in Marwar during this period, you may refer to the "Census of India 1931 — Rajputana Agency: Report and Tables," which includes detailed statistics and analyses. <https://southasiacommons.net/artifacts/2336425/census-of-india-1931-rajputana-agency/3111374/>*
13. *Ibid.*
14. *Economically, the Jats were primarily tenant farmers, cultivating lands owned by the Rajput aristocracy prior to India's independence. This agrarian role positioned them as a pivotal community within Marwar's rural economy. hindustantimes.com*
15. *The Meghwal community, traditionally associated with weaving and agriculture, has a significant presence in the Marwar region of Rajasthan. They are known for their vibrant*

cultural practices and contributions to textile crafts. Historically, the Meghwals have been integral to the social and economic fabric of Marwar. The Meghwals claim descent from Rishi Megh, a saint believed to have the power to bring rain through prayer. The name "Meghwal" is derived from the Sanskrit word "Megh," meaning clouds or rain. In the 15th century, during the construction of Mehrangarh Fort in Jodhpur, a man from the Meghwal community named "Raja Ram Meghwal" voluntarily offered himself to be buried alive in the fort's foundations, a practice considered auspicious at the time. In return, his family was granted land and continues to reside near Soor Sagar in Jodhpur. Over time, the Meghwals have diversified their occupations and have become an integral part of the region's cultural and economic landscape. Their contributions to crafts, especially in textiles and embroidery, are particularly noteworthy.

15. Hutton, J. H. *Census of India, 1931. Vol. I-India. Part I—Report. With an actuarial report by L. S. Vaidyanathan, British Administrative Classification, Government of India, Manager of Publications, 1933.*
16. *Ibid.*
17. Jaffrelot, Christophe, and Kalaiyaran A. "The Political Economy of the Jat Agitation for Other Backward Class Status." *Economic and Political Weekly*, vol. 51, no. 10, 2016, pp. 10-12.
18. Sumie Nakatani, *Hometowns of the Marwaris, Diasporic Traders in India*, https://srch.slav.hokudai.ac.jp/rp/publications/no14/14-06_Nakatani.pdf?utm_source=chatgpt.com
19. *Systems of work: the caste system and organized labor* by The MAP Academy, https://smarthistory.org/systems-of-work-the-caste-system-and-organized-labor/?utm_source=chatgpt.com
20. *Census, Marwar State, 1931." Village Table. Marwar State Press, 1932.*
21. *Ibid.*

Films as tool to Teach English in Indian ESL Classrooms

Dr. Priti Bala Sharma

Assistant Professor, Govt. Girls college, Rampur (Uttar Pradesh)

Ms. Lalita Sharma

Associate Professor, Government College, Jaipur



shodhshree@gmail.com

Abstract

In the world with countless learning resources, it is difficult to choose effective and engaging tools for education. Among various forms of art, literature and films stand out as powerful mediums that provide insights into human conditions offering both emotional resonance and intellectual stimulation. This paper attempts to understand the significance of these art forms in educational contexts especially in teaching English as a second language in India. This study explores how films enhance language acquisition by combining classroom observations and student survey demonstrating the idea that film-based activities increase motivation, improve comprehension, and promote critical thinking. Furthermore, the paper also outlines practical strategies for integrating films into English classrooms and discusses the challenges faced by teachers in selecting appropriate material. The findings suggest that integrating films into ESL classrooms not only promote language development but also enhance students' enthusiasm and willingness to participate actively in learning.

Keywords: Film in Education, ESL Teaching, English Language Learning, Indian Classrooms, Multimodal Learning, Cultural Context in Language Acquisition, Student Motivation.

In the world full of choices, it is hard for us to choose. With the advent of technology, there are endless number of options for learning, and it can be hard to decipher which one is worth our time. However, when narrowing down the options, two forms of art stand out as superior: film and literature. Both film and literature offer insights into the human condition that other forms of entertainment cannot match. They motivate us to confront the darker aspects of ourselves, as well as the beauty. In addition, both film and literature are timeless; they can be enjoyed again and again without ever losing their effect. So why not take the time to appreciate these two art forms? This paper attempts to reason why film and literature are so important in academia. This paper also discusses how they can be exploited to their fullest extent in teaching learning set ups.

It is no secret that films entertain, engage and inspire people of all ages. When used in the classrooms, films can be an effective tool to help students learn and retain information. Films can provide a different perspective on a topic. Often, films can offer a unique and thought-provoking perspective on a topic that might be difficult to grasp from reading a textbook. Films can make complex topics more understandable: By nature, films are visual media. This means that they can often do a better job than written text of explaining complex concepts or processes. Films can motivate students to learn more. Kusumarasdyati and Luo opines that films catch the learners' interest and it can positively affect their motivation to learn (Kusumarasdyati; Luo)

A well-made film on a fascinating topic can inspire students to want to learn more about it. This is especially true if the film includes interviews with experts or real-life footage. Films can spark

discussions and debate: Watching a film in class provides an opportunity for students to share their thoughts and opinions on the subject matter with their peers. This can lead to some lively and productive discussions! Kuhns says,

The experience of the film belongs to the viewer, and to no one else. A film which does not become for its viewer a moving, deeply felt experience, has no chance of challenging the -imagination, drawing vital discussion, or stimulating sharp subjective meanings. is worth exploring. Films are needed then to create the experience which is worth exploring. (Kuhn 08)

Role of Films in Teaching English in Indian Classrooms

The film and television industry is a multi-billion-dollar business and has been growing rapidly in recent years. With the globalization of the economy, demand for English language skills has increased dramatically in India. This has led to a growing interest in using films and television programs to teach English to non-native speakers.

There are many advantages of using films and television programs to teach English. First, they provide a rich source of authentic material that can be used to expose learners to different aspects of the language. Second, they can be used to model correct pronunciation and grammar. Herron, et al. (1995) writes about the advantages of videos in educational setups that:

“Video is lauded for contextualizing language (i.e., linking language form to meaning) and depicting the foreign culture more effectively than other instructional materials. Videotapes permit students to hear native speakers interacting in everyday conversational situations and to practice important linguistic structures. Unlike audiocassettes, video's visual dimension is thought to reduce ambiguities present in native speaker voices and to motivate students to want to learn the foreign language (Herron 775).”

The role of films in teaching English in

classrooms is evident from the fact that many teachers use films as a resource to engage students in learning. Films provide students with an authentic experience of the language, which can be beneficial for their overall language development. In addition, films can also be used to teach specific grammar concepts or vocabulary words.

For example, a teacher might show a scene from a film where two people are talking on the phone. The teacher can pause the film and ask the students to identify the different verb tenses being used in the conversation. This would be an excellent way to introduce or review verb tenses with students. Another possibility would be to show a scene where someone is ordering food in a restaurant. The teacher could then have the students practice ordering food in English using the same vocabulary Words and phrases they just heard in the film.

In addition to being used as a teaching tool, films can also be used as a motivator for students to learn English. Many students are interested in watching films, but may not be as interested in reading books or other traditional materials used for learning English. By using films in the classrooms, teachers can tap into this interest and help motivate students to learn English. In addition, films can provide students with cultural context that can help them better understand and appreciate the English language.

Films can also be a great way to engage students in the classroom. They offer a unique perspective on culture and can help teach about important topics such as history, religion, and social issues. In India, English is often thought of as a foreign language. This can make teaching English to Indian students seem daunting. However, there are a number of ways to make the learning process more engaging and fun, one of which is by using films.

There are a number of reasons why films can be an effective tool for teaching English in India. Films provide contextual clues that can help students understand the language. They also

offer an entertaining and engaging way to learn. Additionally, films can help familiarize students with Western culture, something that can be useful in a globalized world. Of course, not just any film will do. When choosing films for an ESL class especially in the context of India, it is important to select ones that are appropriate for students' level and interests. When used effectively, films can be a powerful tool for teaching English in India. They offer students a contextual way to learn the language while also providing an enjoyable and engaging experience. Overall, using films and television programs to teach English in India can be a very effective way to engage learners and help them improve their language skills. However, it is important to consider both the advantages and disadvantages before deciding if this is the right approach for your students.

Review of Literature

The foundation for using films in language instruction is grounded in the theory of input and interaction, where exposure to comprehensible and contextualized input is essential for language learning (Krashen, 1985). Films offer multimodal input—visual, auditory, and contextual—enhancing both comprehension and retention (Swaffar & Vlatlen, 1997). Sherman (2003) supports this by arguing that films present authentic language usage, including informal speech, idioms, intonation, and cultural references, which are often absent in traditional classroom materials. Indian films, especially those from Bollywood and regional industries, frequently use code-switching between English and native languages. This linguistic phenomenon, as described by Kachru (1983), reflects the sociolinguistic reality of urban and semi-urban India, making films a relatable and effective medium for students. Agnihotri (2007) adds that the bilingual and multilingual nature of Indian society necessitates the acceptance of such hybrid forms in educational contexts. Indian films thus serve a dual purpose: they expose

learners to English while grounding the content in a familiar cultural setting. Several empirical studies have demonstrated the positive impact of films on ESL learners. Kaur and Singh (2020), for instance, report increased motivation and engagement when Indian films were used to teach listening and speaking skills.

Methodology

The research employs a qualitative-quantitative mixed approach. Data was collected through classroom observations and a Google Form survey based on a 5-point Likert scale. The survey included eighteen items targeting students' experiences and attitudes toward learning English through English films. Participants included students of undergraduate and postgraduate programs from economically challenged and linguistic diverse backgrounds. This study explores the potential use of films in teaching English to students who consider English as foreign language. These are the following research questions that guide the study:

1. How can films be effectively integrated into ESL classrooms to enhance English language and literature learning?
2. What is the impact of films on students' engagement, motivation, and language skill development in ESL classrooms?
3. In what ways does the cultural context of films support or hinder English language acquisition among ESL learners?
4. How do learners perceive the use of Indian films in developing their English language proficiency?

Participants

The participants in this study were government college undergraduate and postgraduate students, between the ages of 18-25. The total sample of participants consisted of 49 female students. Their level of proficiency is intermediate.

Anatomy of My Classroom:

Teacher selected short films, animated stories, dubbed scenes from Indian movies, or culturally relevant film excerpts to engage learners. This approach was particularly beneficial for students from economically disadvantaged backgrounds who had limited exposure to English.

Pre-viewing activities included introducing key vocabulary and contextual themes. Students were asked to conduct brief research in pairs or small groups, share findings, and submit short reports or presentations. In preparation, they also wrote short stories inspired by the movie plot or characters.

During viewing, students were engaged in interactive tasks such as identifying new words (verbs, adjectives, adverbs) used in the film, listing three key words that capture the essence of the clip, avoiding specific names or locations and pausing the film at strategic points to highlight vocabulary, themes, characters etc.

Post-viewing tasks involved fill-in-the-blank vocabulary exercises based on the film's storyline, Group discussions on films based on their prescribed literary texts, and peer reading

and storytelling exercises based on characters and scenes.

These structured tasks cater to different learning styles and promote collaboration, critical thinking, and language acquisition. While selecting appropriate films remains a challenge for Indian ESL practitioners, a well-matched film can significantly motivate learners and improve their language skills.

This is one of the ways films are used in English Classrooms to help the learners motivate in learning English language. Although, it is a challenge for Indian ESL practitioners to select films according to their learners' needs and demands but if it is matched, students are benefitted to a great extent.

Survey Design and Analysis

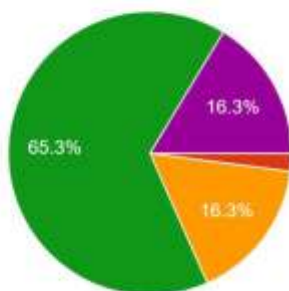
To assess the impact of using films in teaching English, a survey was created and shared with participating students. The Google Form survey included 18 questions based on a 5-point Likert scale, evaluating areas such as engagement, language improvement, cultural understanding, and overall satisfaction.

Survey Focus Areas:

- Engagement with film-based activities

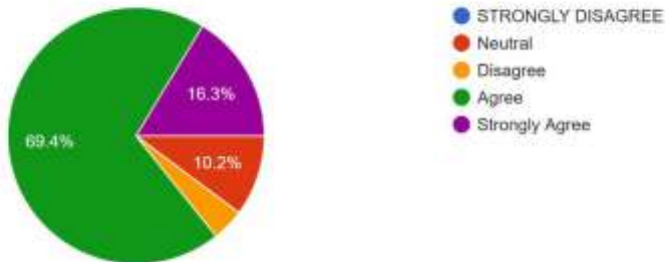
Movies make English class more interesting.

49 responses



I enjoy writing small stories or role plays based on the movies.

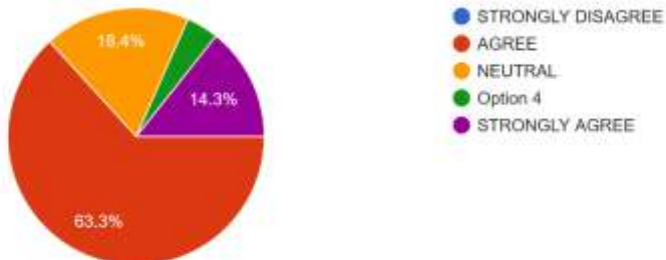
49 responses



- Perceived improvement in English language skills

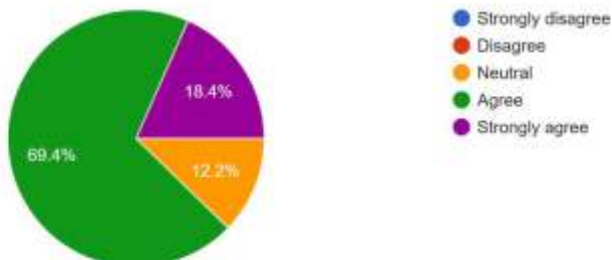
Watching movies helps me understand English better. Please choose how much you agree with each sentence

49 responses



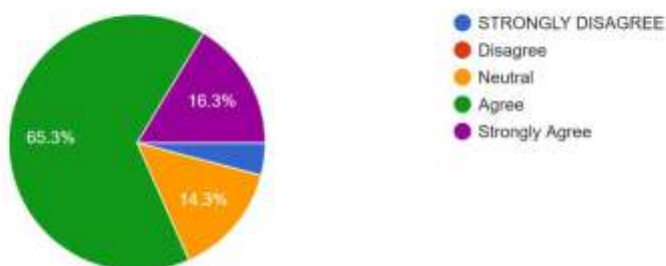
I learn new English words when I watch movies.

49 responses



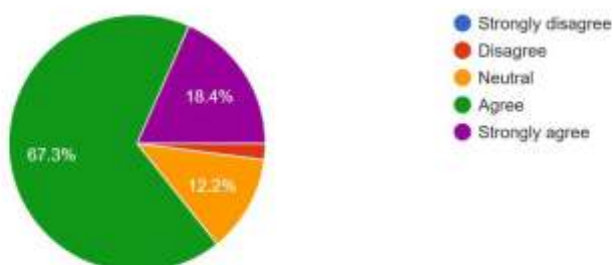
I remember English words better after seeing them in a movie.

49 responses



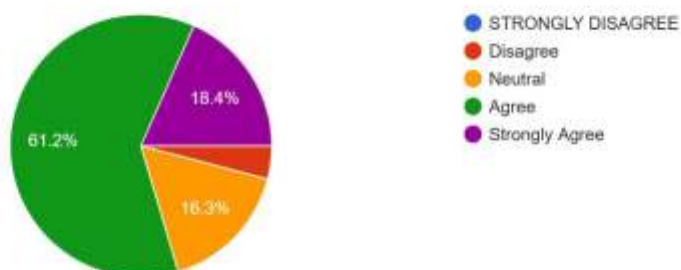
Movies help me understand how English is spoken in real life.

49 responses



After watching a movie, I feel more confident using English in class.

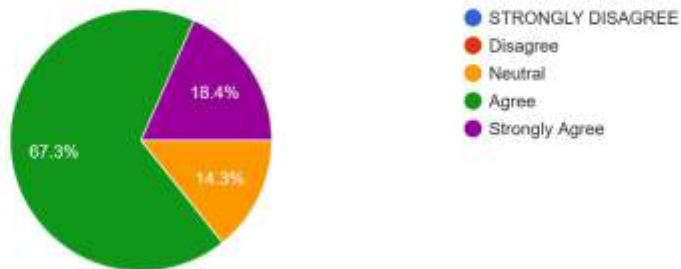
49 responses



- Cultural relevance of film content

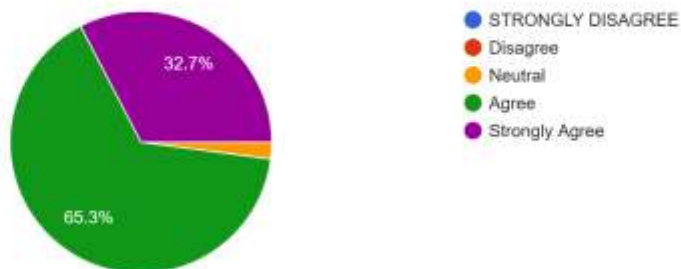
I get connected and understand the culture and traditions of different countries through movies.

49 responses



Movies help me understand how people live and talk in English-speaking countries.

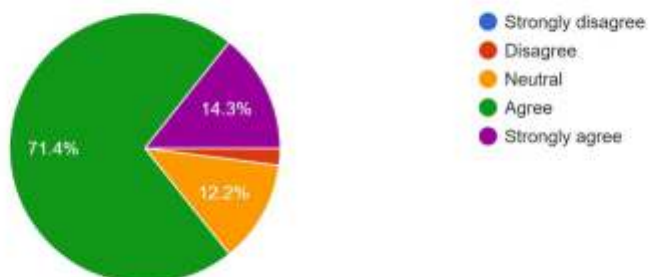
49 responses



- Motivation to learn English

I feel more excited to learn English when we use movies.

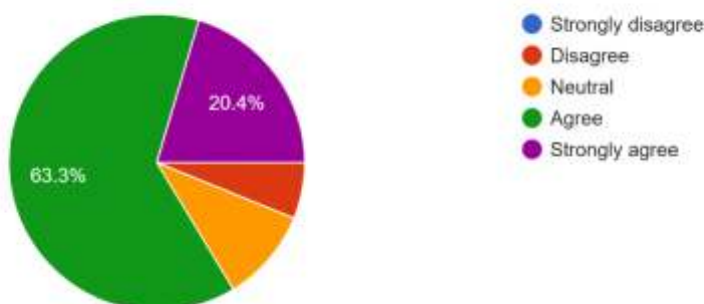
49 responses



- Overall satisfaction with learning through films

I understand movies better when they have both English and my native language subtitles.

49 responses



Findings

Based on the survey and classroom observations, the findings reviewed in this study shows the significance of using films into English classrooms as majority of students reported high levels of interest and engagement during film-based activities, they indicated noticeable improvements in listening comprehension, vocabulary, and conversational fluency, films with Indian cultural contexts helped them relate better to content, increasing retention and participation, and collaborative exercises following the film viewings were rated as enjoyable and helpful by most participants.

We might conclude that the survey results affirm that integrating films into ESL classrooms not only promotes language development but also enhances students' enthusiasm and willingness to participate actively in learning. Therefore, it can be said that Films can be a great source and tool to teach English language to the Indian Learners.

References

1. Agnihotri, R. K. (2007). *Towards a pedagogy of multilinguality*. Indian Institute of Advanced Study.
2. Ali, N. (2023, December 13). *How to teach ESL lessons with movies?* Henry Harvin Blog. [https://www.henryharvin.com/blog/how-to-](https://www.henryharvin.com/blog/how-to-teach-esl-lessons-with-movies/)
3. British Council. (n.d.). *How can film help you teach or learn English?* British Council. <https://www.britishcouncil.org/voices-magazine/how-can-film-help-you-teach-or-learn-english>
4. Deep Blue Documents. (n.d.). Home. <https://deepblue.lib.umich.edu/documents>
5. Herron, C., Hanley, J. E. B., & Cole, S. P. (1995). A comparison study of two advance organizers for introducing beginning foreign language students to video. *The Modern Language Journal*, 79(3), 387–395. <https://doi.org/10.2307/329395>
6. Kachru, B. B. (1983). *The Indianization of English: The English language in India*. Oxford University Press.
7. Kaur, J., & Singh, R. (2020). The role of Indian cinema in enhancing ESL skills: A classroom perspective. *International Journal of English Language Teaching*, 8(2), 45–59.
8. King, J. (2002). Using DVD feature films in the EFL classroom. *Computer Assisted Language Learning*, 15 (5) , 509 – 523 . <https://doi.org/10.1076/call.15.5.509.13468>
9. Krashen, S. D. (1985). *The input hypothesis: Issues and implications*. Longman.
10. Kuhns, W. (1968). *Themes: Short films for discussion*. Ceo. H. Pflaum, Inc.
11. Kusumarasdyati. (2004, July 14–17). Listening, viewing and imagination: Movies in EFL classes. In 2nd International Conference on Imagination

and Education. Vancouver, Canada.

12. Kusumaningrum, M. A. D. (n.d.). Using English movie as an attractive strategy to teach senior high school students English as a foreign language. *LLT Journal: A Journal on Language and Language Teaching*. <https://ejournal.usd.ac.id/index.php/LLT/article/view/247>
13. Loneragan, J. (1984). *Video in language teaching*. Cambridge University Press.
14. Luo, J. J. (2004). Using DVD films to enhance college freshmen's English listening comprehension and motivation [Master's thesis, Taiwan National Tsing Hua University].
15. Lynch, L. M. (2006, August 31). 5 reasons to use popular movies for English language teaching. *Ezine Articles*. <http://ezinearticles.com/?5-Reasons-to-Use-Popular-Movies-for-English-Language-Teaching&id=287405>
16. Noor Hanim Rahmat, A. P. (2018, August 9). Language learning through movies (LLM). In *Proceedings for 4th International Conference on Issues in Language Teaching and Learning amongst Non-Native Speakers (ILANNS 2018), Concorde Hotel, Shah Alam*. <https://www.academia.edu/37212342>
17. Sharma, N., & Vyas, M. (2016). Teaching ESL through Bollywood films: Opportunities and limitations. *ELT Voice*, 6(1), 10–16.
18. Sherman, J. (2003). *Using authentic video in the language classroom*. Cambridge University Press.
19. Swaffar, J., & Vlaten, A. (1997). A sequential model for video viewing in the foreign language curriculum. *The Modern Language Journal*, 81 (2) , 175 – 188 . <https://doi.org/10.1111/j.1540-4781.1997.tb01174.x>
20. The Guardian. (2013, September 26). Languages, camera, action: Using film to inspire your students. *The Guardian*. <https://www.theguardian.com/teacher-network/teacher-blog/2013/sep/26/teaching-languages-foreign-film-students>
21. Vanderplank, R. (2016). *Captioned media in foreign language learning and teaching: Subtitles for the deaf and hard-of-hearing as tools for language learning*. Palgrave Macmillan.
22. Whole-movie ESL/EFL lessons. (n.d.). Using movies in the ESL/EFL classroom | Teacher guide. *Movies Grow English*. <http://www.moviesgrowenglish.com/Teacher.html>

The need for change in the Ideology of Marriage with Changing Society

Kalpana Saini

Research Scholar, Apex University, Jaipur

Dr. Poonam Joshi

Assistant Professor, Apex University, Jaipur



shodhshree@gmail.com

Abstract

The concept of marriage dates back at least 4,300 years to ancient Mesopotamia, where the oldest known marriage record was found. Evidence suggests that the institution of marriage possibly predates recorded history and may have originated during the transition from nomadic hunter-gatherer societies to agricultural civilizations. There has been a 'disconnection' between marriage and parenthood. importance of marriage to young people, it is important to highlight its lasting value and personal significance.

Key words: *Msrrriage, Hindu marriage, Marriage in Islam, Divorce.*

The concept of marriage dates back at least 4,300 years to ancient Mesopotamia, where the oldest known marriage record was found. Evidence suggests that the institution of marriage possibly predates recorded history and may have originated during the transition from nomadic hunter-gatherer societies to agricultural civilizations. Marriage has taken various forms throughout history, often serving as a strategic alliance between families rather than a union based on love. There are eight types of marriages according to Hinduism

Brahma marriage (Brahma Vivaah): This is considered the highest form of marriage. In this, the father of the bride searches for a suitable groom who is educated in the Vedas and has a good moral character. The ceremony is conducted with Vedic rites and rituals.

Deva marriage (Deva Vivaah): In this type of marriage, the father of the bride gives her away to a priest as a sacrificial fee. It was performed when the parents could not afford the cost of their daughter's wedding.

Arsha Vivaah (Arsha Vivaah): In this form of marriage a daughter was married to a sage. The groom's father gives two cows or bulls to the bride's father.

Prajapati Vivaah (Prajapatya Vivaah): Similar to Brahma Vivaah, in this type the bride's father offers her to the groom while reciting a sacred mantra which wishes well for the couple.

It represents a voluntary union between a man and a woman based on mutual love and consent without any religious or formal rites.

Asura Vivaah: (Asur Vivaah) In this form of marriage, the bride's father receives a large sum of money or gifts from the groom's family.

Rakshasa Vivaah (Rakshasa Vivaah): In this type of marriage the groom forcibly takes the bride against her will and the consent of her family.

Paishach Vivaah (Paishach Vivaah): This is considered to be the lowest form of marriage. In this, the groom deceives and seduces the bride when she is not in a conscious state of mind or when she is unable

to give her consent, such as during sleep or during extreme intoxication.

In Islam, there are four main types of marriages recognized under Muslim law: sahih, batil, fasid, and muta.⁴⁵⁶

Sahih marriage: This is the most common and valid form of marriage in Islam, where both the bride and groom consent to the marriage and it meets all the legal requirements.⁵⁶

Batil marriage: This type of marriage is considered invalid because it does not meet the conditions necessary for a valid marriage. Examples of batil marriages include those between forbidden relatives or when a woman is married while she is in iddat (the waiting period following the death of the husband or divorce).

Fasid marriage: These marriages are technically valid but have irregularities or defects that make them objectionable or legally questionable. Corrective action may be needed to address these issues.

Mut'a marriage: This is a temporary marriage, only recognised by the Twelver branch of Shia Islam, where the marriage is for a pre-determined period of time.

Christian views on marriage have varied over time and across different denominations. According to the Bible, several types of marriages are mentioned or implied, including:

Levirate marriage: This involved a widow marrying her dead husband's brother to provide for him and produce an heir

Polygamous marriage: A man may marry multiple women, sometimes including concubines, as practiced by figures such as Abraham, Gideon and David.

Marriage of a male soldier and a female prisoner of war: After a battle, soldiers could take female prisoners of war as wives,

Marriage of a male rapist and his victim: If a virgin was raped and not engaged, she was required to marry her attacker,

Marriage of a male and female slave: A slave owner could assign a female slave to a male slave as a wife,

Interfaith marriage: This is a marriage between two baptized Christians of different denominations.

Traditional marriage concept and present society:

From the above-mentioned marriages of different religions, we can find out that these are different ideologies created by the male-dominated society, but if we see with the changing times, now the possibility of change in this ideology has increased because the concept of women empowerment is rapidly developing in the world. Along with this, the matter of gender equality is also rapidly developing in the world. In such a situation, due to this type of marriage, the cases of divorce and separation are increasing, which are pushing down the main concept of marriage, familism, and this is a big threat to the society. In recent years, the following changes have been seen in the concept of marriage:

Marriage rate is declining in many countries

Marriages have declined in different groups

People are getting married late

In many countries, along with the decline in marriage rate, the age of marriage of people has also increased. There has been a 'disconnection' between marriage and parenthood. The proportion of children born outside marriage is high in most rich countries.

Single parenthood is common and has increased in many countries. The above changes are making the coming generation emotionally and socially weak, which will also be seen as physical weakness in the future. To make young people understand the importance of marriage, its stability, Single parenthood is common and has increased in many countries.

The above changes are making the coming generation emotionally and socially vulnerable,

which will also be seen as physically vulnerable in the future.

Suggestions for betterment in the concept:

To explain the importance of marriage to young people, it is important to highlight its lasting value and personal significance.

To explain the importance of marriage to young people, it is important to highlight its lasting value and personal significance.

In addition, discussing the long-term benefits of marriage, such as financial security and emotional support, can help young people understand the importance of marriage.

Premarital counseling can help young people understand the practical benefits of marriage.

Most importantly, parents today can explain the importance of marriage to their children by explaining the importance of their spouse.

Conclusion: Marriage has taken various forms throughout history, often serving as a strategic alliance between families rather than a union based on love. There are various ideologies created by the male-dominated society but if we look at the changing times, now there is a possibility of change in this ideology. To tell the importance of marriage to young people, it is important to highlight its lasting value and personal significance.

References

1. Agarwala, S. N. 1962. "Age at Marriage in India". Allahabad: Kitab Mahal.
2. Agarwala, S. N. 1972. *India's Population Problems*. Bombay: Tata McGraw-Hill.
3. Ahlawat, N. 2009. "Missing brides in rural Haryana: A study of adverse sex ratio, poverty and addiction," *Social Change* 39 (1): 46-63.
4. Akers, D. S. 1967. "On measuring marriage squeeze," *Demography* 4:907-24.
5. Avakame, E. F. 1999. "Sex ratios, female labour force participation and lethal violence against women: Extending Guttentag and Secord's thesis," *Violence against Women* 5:132-141.
6. Basavarajappa, K. G., and M. I. Belvalgidad. 1967. "Changes in age at marriage of females and their effect on the Birth rate in India," *Eugenics Quarterly* 14(1):14-26.
7. Basu, A.M. 1993. "Cultural influences on the timing of first births in India: large differences that add up to little difference," *Population Studies* 47:85-95.
8. Becker, G. S. 1973. "A theory of marriage: Part I," *Journal of Political Economy* 81(4):813-846.
9. Bettio, F. and P. Villa. 1998. "A mediterranean perspective on the breakdown of the relationship between participation and fertility," *Cambridge Journal of Economics*, 22:137-171.
10. Bhat P.N. M. and A. J. F. Xavier. 2007. "Factors influencing the use of prenatal diagnostic techniques and sex ratio at birth in India" in I. Attané and C. Z. Guilmoto (eds.), *Watering the neighbour's garden: the growing demographic female deficit in Asia*. CICRED, Paris.

Challenges Faced By Startup In India: A Legal Analysis

Himanshi Srivastava

Research Scholar, Apex University, Jaipur



shodhshree@gmail.com

Abstract

Indian startups encounter several legal obstacles that might hinder their development and success. These problems encompass adherence to various rules and regulations pertaining to taxation, corporate registration, employment, and data protection. Safeguarding intellectual property is arduous owing to the intricacies of IP legislation in India. Startups must also address contractual matters and employment legislation, and may face challenges in fundraising and investing. Dispute resolution may also provide difficulties. To address these problems, entrepreneurs must possess a comprehensive awareness of the legal framework and collaborate closely with legal experts to assure compliance and safeguard their interests. They must also proactively identify legal risks and formulate methods to reduce them. Startups in India have many legal obstacles that might affect their growth and success. This article outlines the principal legal obstacles encountered by startups in India, encompassing compliance with laws and regulations, intellectual property protection, contractual matters, employment legislation, financing and investments, and dispute resolution. The paper emphasises the significance of legal acumen and proactive risk management measures to alleviate these issues and safeguard the interests of startups.

Key words: Startup, Legal aspects, Challenges.

India, characterised by its swiftly expanding economy and flourishing entrepreneurial culture, has become a prominent centre for start-ups. The nation has experienced a significant increase in entrepreneurial initiatives, propelled by innovation, technical progress, and favourable governmental regulations. India is ranked among the leading countries worldwide for the number of start-ups, showcasing a vast array of firms across numerous industries. This changing setting, however, presents some obstacles. Legal and regulatory challenges emerge as substantial impediments that might affect the growth and sustainability of start-ups.

Start-ups in India encounter a multifaceted legal environment that presents several hurdles. These issues arise from the complex character of Indian law, which includes a diverse range of rules, legislation, and compliance obligations. The legal structure in India, although intended to safeguard economic interests and promote equitable practices, can be especially intimidating for emerging firms. The intricacy of legal compliance, along with the swift evolution of regulatory frameworks, is a significant obstacle for start-ups attempting to manoeuvre through the legal landscape. A principal legal obstacle encountered by start-ups is the complex procedure of business registration and regulatory compliance.

The process of establishing a business in India entails several phases, including acquiring several licenses and permissions, registering with multiple agencies, and complying with rigorous paperwork standards. This procedure can be laborious and expensive, especially for start-ups with constrained

resources. The have to adhere to both central and state rules introduces an additional degree of complexity, complicating compliance for start-ups.

Protection of intellectual property (IP) is a significant domain in which start-ups face legal obstacles. Considering that several start-ups are propelled by creative concepts and technical progress, obtaining intellectual property rights is essential for safeguarding their distinctive items and services. The procedure of registering patents, trademarks, and copyrights can be onerous and costly. The insufficient understanding among start-up founders about intellectual property rights and the complexities of enforcement might intensify these issues, rendering start-ups susceptible to intellectual property theft and infringement.

Furthermore, start-ups frequently contend with regulatory compliance including taxation and financial reporting. The implementation of the Goods and Services Tax (GST) and other tax laws necessitates that start-ups manoeuvre through a complicated tax landscape. Adhering to tax regulations, such as submitting forms, preserving accurate records, and overseeing deductions and credits, can be especially difficult for start-ups that lack comprehensive accounting systems and financial acumen.

Employment legislation poses considerable obstacles for start-ups. Compliance with labour rules, encompassing employee contracts, salaries, and working conditions, may be daunting. Start-ups must manoeuvre through several restrictions pertaining to employee rights and benefits, which may be especially difficult without specialised human resources teams.

Aside from these particular legal hurdles, start-ups in India encounter overarching concerns pertaining to regulatory ambiguity and enforcement. The swift transformation of the legal and regulatory framework, together with disparities in enforcement tactics, can engender an unstable atmosphere for start-ups. This

ambiguity can impede investment and growth, since start-ups may be discouraged by the possible dangers linked to legal compliance.

In summary, although India provides a dynamic environment for start-ups, the legal obstacles encountered by these businesses are considerable and complex. Confronting these difficulties necessitates a sophisticated comprehension of the legal framework, together with focused assistance from policymakers and legal practitioners. This study paper seeks to investigate the many legal obstacles faced by start-ups in India, analysing their effects on business operations and expansion. The article aims to enhance the climate for start-ups in India by identifying issues and suggesting viable solutions, hence promoting innovation and entrepreneurial success.

Startups – Meaning

In the legal field, a startup is usually a young company that has just opened for business and is still in its early phases of development; its primary goals are to expand and innovate. Innovative goods and services, scalable business methods, and promising future development are the hallmarks of a startup. It is common for startups to operate in sectors that are just starting to gain traction, including technology, biotech, or finance, with the goal of shaking up established markets or perhaps creating whole new ones. From a legal standpoint, startups are governed by several statutes and rules, such as those pertaining to intellectual property, employment, taxes, partnerships, and company law, among many others. All of these areas are potential sources of legal trouble for startups, thus it's important for them to collaborate with attorneys that specialise in these areas. The inventive and disruptive character, rapid expansion, and ever-changing business models of startups make them subject to distinct legal issues. Regulatory compliance, IP protection, contracts, employment legislation, financing and fundraising, and dispute resolution are among the most prevalent legal obstacles encountered by startups. In order to achieve long-term

development and success, startups must successfully tackle these issues. Founders of startups typically have one of three goals: to fill a need in the market, shake up an established sector, or provide a new product or service to consumers. The capacity to innovate and adapt is crucial to their success in these kinds of dynamic and fast-paced workplaces. Startups can be legally structured as sole proprietorships, partnerships, corporations, or limited liability companies (LLCs), all of which rely on the intentions and preferences of the founders. To further complicate matters legally, startups may also look for angel or venture capital investment to fuel their expansion. Due of their inventive and game-changing nature, startups encounter several legal obstacles. These include safeguarding intellectual property, ensuring compliance with regulations, resolving disputes, funding, employment law, and contractual matters. In order to successfully traverse these legal hurdles and safeguard their interests, entrepreneurs frequently collaborate with legal experts.

Startup Advantages

There are many advantages to India's economy that have contributed to the rise of startups in recent years. When it comes to creating jobs in India, startups rank high. Many individuals, particularly young ones, find work possibilities with them. Over 250,000 new employment would be created in India by startups by 2020, according to a research by NASSCOM. The country's economic growth is greatly enhanced by startups. New goods, services, and markets are born from their creativity, which in turn spurs innovation, heightens competition, and boosts economic growth. In India, startups foster an entrepreneurial spirit and encourage people to take risks and think creatively. They inspire others to follow their dreams and make a living from their ideas.

Startups play a crucial role in luring foreign investment, which in turn stimulates the economy.

Startups in India are attracting the attention of foreign investors, which bodes well for the country's economic future. In India, new IT companies are leading the way. New technologies like the Internet of Things (IoT), Blockchain, and Artificial Intelligence (AI) are being developed by them, and they might revolutionise many parts of the economy. Startups in India are also having a major effect on society. They are working on new solutions to enhance people's lives in areas including healthcare, education, and agriculture, among others. In general, startups contribute significantly to India's economic growth and development and have many positive effects on the nation.

Startup policies and initiatives in India: a comprehensive review

A startup's chances of success and growth are greatly affected by laws, regulations, frameworks, initiatives, and programs put in place by the government. According to Joshi and Satyanarayana (2014), the government has taken several steps to assist entrepreneurs, including financial and infrastructural initiatives. A few of the most important programs and regulations are as follows: The government of India has launched a number of programs to encourage and facilitate entrepreneurship, especially among new businesses. The 'Make in India' initiative, which aims to promote local manufacturing enterprises and entice international investors, is one such notable endeavour. It was launched in September 2014. To reassure new businesses, the government has tightened protections for intellectual property and increased the cap on foreign direct investment. To encourage investment in the manufacturing sector for its growth, Prime Minister Narendra Modi established the "Make in India" campaign in 2014. Attracting FDI and ensuring that local businesses were part of the industry's expansion were the primary goals of this initiative. In an effort to make things easier for businesses, the government extended the life of industrial licenses and created an online

platform for reporting income taxes and clearances. In addition to safeguarding intellectual property rights and upgrading infrastructure and cutting-edge technologies, the government increased the FDI limit in most industries. In 2015, the government launched the 'Stand-up India' initiative, which encourages women to become entrepreneurs and leverages bank funds to support new businesses. With the goal of fostering a minimum of two green field initiatives per bank branch, this program is defined by its support for non-agricultural enterprises. With an eye towards improving the regulatory climate and taking corporate tax advantages into account, it seeks to aid at least 250,000 borrowers within the first three years of implementation. A comprehensive definition of a startup is currently being worked on by the Department of Industrial Policy and Promotion (DIPP) to guarantee inclusion. Launched in 2015, the 'Digital India' program seeks to link rural regions through improved digital infrastructure and make online government services available to all citizens. This presents a significant potential for start-ups.

Legal structure of startup

Various regulatory laws must be followed for a firm to be conducted in an ethical and successful manner. It is critical for businesses to follow these regulations since breaking them can lead to serious legal ramifications.

- **The Companies Act:** In order to make sure that businesses run smoothly and successfully, they are required to adhere to the regulations and provisions laid down in the corporations Act 2013, which governs both the creation and operations of corporations. Two or more people can form a corporation if they agree to work together towards a similar goal. It has its own identity, can possess property, may participate in legal disputes, and enjoys everlasting succession since it is regarded a separate legal entity from its members. If you want to create a business, you

need to register under the Company Act of 2013. If you want to open a store, restaurant, or other type of retail outlet, you need to get a license, such the Shop and Establishment Act License or the FSSAI License. If you want to build up a successful company, you must understand these provisions.

Section 2(68): This section explains that a "Private Company" is a good choice for new businesses as it is subject to fewer regulations.

Section 3 discusses the process of forming a corporation and how it is categorised. Within thirty days of becoming aware of any charges on their physical or intangible assets, whether located inside or outside of India, any firm, regardless of its location, is required under *Section 77* to notify the Registrar. All pertinent details on the charge and its creation tools must be included in this registration. The registration must be signed by both the firm and the chargeholder, and any payments related to it must be paid to the Registrar's authorised location.

The appointment of auditors is required under *Section 139*, which also lays down the auditing criteria that corporations must follow. This section stresses the need of following rules and being transparent and clear.

The requirements for selecting directors and the composition of the board of directors are discussed in *Section 149*. The restrictions pertaining to directors' ineligibility to serve as company directors are addressed in *Section 164*.

- **The Environment (Protection) Act of 1986:** Companies should carefully examine the Environmental (Protection) Act of 1986, which is a vital piece of law pertaining to pollution control and the environment. An statute passed by the government in 1981 called the Air (Preventions and control of Pollution) statute aimed at regulating pollution and cleaning up the air. To stop industrial, agricultural, and residential

waste from polluting water sources, the Water (Prevention and Control of Pollution) Act of 1974 was passed.

- **Labour Laws:** A firm's workers are the people who really do the work that the company needs done. The appointment of an employee is subject to the requirements imposed by applicable labour legislation. You must follow the employment regulations regardless of the establishment's size. Some examples of such laws are those pertaining to maternity benefits, minimum salary, gratuity, PF payment, weekly holidays, sexual harassment, bonus payment, and so on.

Some certain statutory laws are: A vital statutory law, the Factories Act, 1948 seeks to safeguard workers' interests by guaranteeing their cleanliness, health, and general welfare on the job. To ensure that workers are not exploited and that they are well-cared for, this law imposes a number of duties on factory owners and managers. Occupier has also been defined more broadly as a result of statutory changes and judicial decisions, especially with regard to potentially dangerous industrial activities. Workers' rights, including those of children, women, and minors, as well as health and safety standards, yearly leave, and welfare benefits, are all outlined in the act. 2(l) of the Act An individual is considered a "worker" if they are engaged, either directly or via an intermediary (like a contractor), to carry out any task relating to manufacturing or other connected activity, including cleaning machinery or facilities utilised for manufacturing, for compensation and with or without the knowledge of the major employer. Members of the United States military services are not included, though. Sections 11-20 Maintaining personal cleanliness, properly disposing of bodily fluids and waste, having enough air circulation, and controlling environmental factors like temperature and humidity are all part of a healthy environment. The safety measures in factories are addressed in

Sections 21-41 of the Act, which deal with issues such as fencing machinery, creating procedures for operating moving machinery, managing dangerous substances, and other similar topics. In order to ensure the safety of workers, the Act states that all machinery must be enclosed behind a secure fence, that minors must not operate any machinery that might cause harm, and that areas with limited space must have sufficient manholes for emergency exits. Section 42-50 outlines the welfare provisions, which include providing workers with amenities such as washing facilities, first aid kits, canteens, shelters, and bathrooms. The provisions pertaining to annual leave and salaries are addressed in Section 78, which deals with the payment and right to annual leave. The law has particular measures in sections 34, 35, 36, and 48 that address the safety and working hours of children, women, and young people. Section 51-59 states that adult factory workers are required to get a day off per week and that their working hours cannot exceed 48 hours.

Legal challenges faced by startups

- **Licensing and permit issue-** Startups may need to acquire several types of licenses, rights, or formats in order to put their ideas into action. The startup might face fines or perhaps ethical or legal issues as a result of their lack of legal understanding. Before beginning a business, one should familiarise themselves with the local laws, rules, and regulations, as the requirements for licenses, permits, and other authorisations might differ from one enterprise to another. Another problem with licensing is that getting a permission from the proper government agencies may be a lengthy and difficult process, costing a lot of time and money. Certificates of registration for Goods and Services Tax (GST), Sai import/export license, Udyog Aadhaar registration exemption, and other licenses are required by the

businesses.

- **GST registration-** At this point in time, the majority of entrepreneurs see themselves primarily as online retailers. Companies with a turnover of 40 lacs or more are required to register for GST if they engage in such online commerce. There were three times as many businesses that needed to seek GST registration as there were that actually did. Companies just starting up are required by law to register for GST; failing to do so is a crime.

1. Casual Taxable person,
2. Nonresident taxable person.
3. E-commerce aggregators,
4. Those who are paying through reverse charge mechanisms.

- **Advertisement and marketing:** Regardless of the type of business you're starting, promotion and marketing are crucial. However, there are serious criminal consequences for delivering or distributing steam commerce CDs that make fraudulent promises. Such blunders may be like trampling on young seedlings if they destroy the goodwill and reputation of a company and startups. — method1994, etc.

- **Infrastructure-related zonal laws:** municipal regulations pertaining to the privatisation of Agricultural and Commerce campuses, healthcare facilities, and the like. In India, each state has its own set of laws pertaining to land, which is the purview of the respective state government. If a startup is located in a residential neighbourhood, for instance, the local municipality authority may enact a regulation prohibiting the construction or use of any property or land for commercial or industrial purposes. This is in addition to any general laws that

may pertain to the use of land in that region. Residential, commercial, industrial, public and semi-public utilities, open areas, playgrounds, transportation, and communication for agricultural use are the eight components that a locality is divided into according to the journal authorities. Generally speaking, the law is in place to demarcate residential neighbourhoods from business districts.

- **Data protection and privacy issues-** The beta smartphone for APC during the COVID-19 pandemic was the cherry on top of a very successful year for digitalisation overall, and the fact that many companies and government agencies have moved their operations online has opened up new doors for entrepreneurs. Data secrecy is an illusion in today's interconnected world. Take this hypothetical situation: you log into your health card online to look at supplements, but before you read the terms and conditions, you accidentally enter your name, address, phone number, and email address. Where do things like your address and phone number go from here? And now, whenever you launch YouTube in Google Chrome, you will see adverts tailored to your health card searches. As an example, consider how startups and other e-commerce businesses collect and use users' personal information, such as search history. It's clear that these companies shouldn't access users' private data without their consent or request licenses that aren't necessary for their websites or applications. The process would involve creating a concise, easily-understood privacy policy in the regional language. This way, users would be able to read and comprehend

it before using any of the applications.

- **Protection of intellectual property rights-** It is important for entrepreneurs to ensure that their planned activities or products are already protected before investing heavily in the firm. This will help them avoid issues such as trademark infringement or other intellectual property infractions. Various states have different needs when it comes to protecting intellectual property. Factors to consider while attempting to safeguard the following forms of intellectual property: copyrights, patents, trade secrets, trademarks, and service marks.
- **Contract management-** A contract is an agreement that may be enforced through the legal system. It is crucial for a startup to exercise caution while drafting contracts and signing MIT. A startup enters into several contracts with vendors, workers, and others. If a startup wants to have a solid contract, it could be helpful to look at example contracts that other firms have written in the past. Startups could avoid future disputes by properly negotiating and documenting agreements with their cofounders or partners. For example, how will the business's assets be divided up, who will make what decisions, what percentage of ownership will each founder have, how much money will be invested, and so on.
- **Tortious liabilities-** A person may be held tortiously liable if they break the law or fail to accomplish anything that is required by law. If the startup isn't cautious, it might be held liable for torts. Strict liability is an important potential liability that was developed from the well-known Rylands vs. Fletcher case. In that case, landowner Ryland had hired

labourers to create a reserve on his property. The workers accidentally discovered an unused mine shaft and failed to seal it, leading to flooding in nearby mines and significant financial losses. Ryland was found guilty of strict responsibility by the court. Raw materials should not be handled or managed carelessly by the startup; this includes things like fire, vibrations, smells, and so forth.

- **Ethical issues-** While making a profit is obviously important for a startup, it is crucial that they adhere to all applicable rules and regulations, prioritise their customers and the community, and never lose sight of their responsibility to the firm itself.
- **Dealing with counterfeit goods-** The firm ought to stay away from selling food, drinks, health supplements, and medications. Items such as auto parts, clothing, cosmetics, and illegal software. Both Snapdeal and Amazon were singled out in a report about the selling of counterfeit items by the US trade representative offices. All parties involved—the startup, the manufacturer, and the consumers—stand to lose out from the marketing and sale of these products.

Conclusion

India is a popular tourist destination due to its many attractive attractions. On the other hand, the Indian market has a large labour and skill pool, which makes it a great place to establish a firm at a low cost. Startups that have been successful, such as Swiggy, Zomato, and Blinkit, have grown rapidly, made a lot of money, and created a lot of jobs. An investigation into the workings of Indian restaurant aggregator companies, the applicable laws regulating them, the effects of these laws, and the licenses needed for growth was documented in an effort to better comprehend this sector of the economy. A global

startup in this field, for instance, specialises in meal delivery and restaurant aggregation. A plethora of opportunities to expand one's professional network and see the sights await. You should never use the fact that you missed out on a chance as an excuse. Countless money opportunities exist at the moment. Startups in India are very likely to be successful due to the high level of business acumen among the population.

As a result of the patchwork nature of Indian law, many statutes and regulatory frameworks control various parts of doing business in the country. Due to a lack of familiarity with all the relevant regulations, this can lead to uncertainty and confusion for new businesses. The government may do something about this by streamlining and consolidating the regulatory and legal frameworks so that entrepreneurs can use them more easily. This may necessitate consolidating many statutes into one, doing away with superfluous legislation, or simplifying processes.

Finally, there are a number of legal hurdles that Indian entrepreneurs must overcome, all of which have the potential to impact their long-term viability. Protecting intellectual property, negotiating the complicated legal environment, maintaining tax compliance, and settling disputes are some of the key issues. Foreign currency restrictions, data protection rules, and labour laws are additional considerations for companies. Nevertheless, a number of these legal hurdles are being tackled thanks to the Startup India program and other legislative reforms implemented by the Indian government to assist the startup ecosystem. To further assure compliance and reduce legal risks, startups might also consult with attorneys.

References

1. Jain, V. (2020). *Regulatory Compliance and Start-Up Success: A Comparative Study*. *Journal of Business and Regulatory Affairs*, 8(3), 89-104.
2. Kumar, R. (2018). *Legal Barriers to Start-Up Growth in India: An Empirical Analysis*. *Business Law and Policy Journal*, 10(2), 101-120.
3. D. Ghosh & D. Anshul (2016). *Start-up India is a work-in-progress*.
4. NASSCOM. (2015). *NASSCOM start-up ecosystem report 2015: India ranks third globally with more than 4,200 startups*. 9.2.
5. *Information Technology Act 2000, India*, available at: <http://startupindia.gov.in/> (last visited on November 01, 2023).
6. *International Journal of Advance and Innovative Research Volume 5, Issue 4 (XVI): October, 2018*.
7. Narayanan, K. (2019). *The Impact of Regulatory Changes on Indian Start-Ups*. *Economic and Legal Review*, 14(2), 92-106.
8. Mohan Kumar, A *Study on Startups In India Issues challenges and Opportunities by Government Policies (2022)* (Unpublished Ph.D. thesis, Jayoti Vidyapeeth womens Univeristy).
9. Patel, J. (2020). *Legal Issues in Intellectual Property Management for Start-Ups*. *Indian Law Review*, 11(4), 81-98.
10. Soni, N., & Kumar, V. (2020). *Legal Challenges in the Start-Up Ecosystem: A Review of Indian Practices*. *Business Law and Ethics Journal*, 11(2), 45-62.
11. *Legal challenges faced by Indian startups by Vaishali Singh, January 2021*.
12. *Navigating legal challenges for startups in India by Anjali Krishnan, May 2020*.
13. Raj, S. (2021). *Company Registration Challenges for Start-Ups in India: A Comprehensive Study*. *Journal of Indian Business Law*, 12(3), 34-50.
14. Verma, S. (2020). *The Evolution of Legal Frameworks for Start-Ups in India: An Analytical Review*. *Indian Journal of Entrepreneurship Law*, 14(1), 91-108.
15. Sinha, A. (2021). *Navigating Labor Laws: Start-Up Experiences and Strategies*. *Labour Market Review*, 13(3), 52-70.
16. Dr. SunitiChandiok. (2016). *India the world's fastest-growing startup ecosystem: A Study*. *Amity Research Journal of Tourism, Aviation and Hospitality Vol. 01, issue 02*.
17. Yadav, S. (2019). *Legal Compliance and Operational Challenges for Indian Start-Ups*. *Journal of Indian Business Studies*, 12(3), 67-84.

A Legal Aspect of Electoral Bond: An Analysis

Dr. Poonam

Assistant Professor, Punjabi University, Regional Centre, Bathinda (Punjab)



shodhshree@gmail.com

Abstract

India is the world's biggest and most vibrant democracy. Given the aforementioned viewpoint, it is evident that elections are essential to preserving the core principles of democracy. With the belief that it was a useful instrument for purging political money, the NDA-led government implemented electoral reforms through the Finance Bill, 2017. However, a number of circumstances, including the contributors' anonymity and the 2013 modification to section 182 of the Companies Act, hint to the murky side of Indian politics. Article will discuss the some significance and legal aspects deals with electoral scheme 2018 and analysis with review of literature.

Key words: Legal Aspect, Electoral Scheme.

In the Union Budget 2017–18, the Finance Minister initially announced the Electoral Bond as a means of contributing financially to political parties. An electoral bond is defined as a bond issued in the form of a promissory note that shall be bearer in character under the Electoral Bond Scheme, 2018. It is assumed that the holder of the instrument, such as a political party, is the owner of a bearer instrument if it does not bear the name of the buyer or payee and no ownership information is documented. Political parties can receive these bonds in denominations of 1,000, 10,000, 1 lakh, 10 lakh, and 1 crore through the Scheme, which was announced on January 2, 2018. The parties receiving the bonds have 15 days to redeem them. Any natural person can purchase bonds, either alone or in a group. An individual or entity, including a corporation, is not restricted in any way from purchasing electoral bonds. If the bond amount is not cashed within the fifteen-day validity period, the licensed bank is required to deposit it to the Prime Minister Relief Fund (PMRF). The PMRF has received 144 bonds, with a combined value of Rs 20.2833 cr (0.31%), thus far. As a result, the political parties were able to pay out 99.69% of the bonds that were acquired during the fifteen phases.

To qualify for electoral bonds, a political party must meet all of the following requirements: -

- made an application in accordance with the provisions of the Representation of the People Act, 1951 (section 29A), and
- received at least one percent of the total votes cast in the most recent general election for either the House of People or the Legislative Assembly, whichever is applicable. A requirement that political parties maintain records of the identities of contributors who make contributions of any amount through Electoral Bonds or disclose this information to the Election Commission of India (ECI) on an annual basis has been removed as a result of an amendment to section 29C of The Representation of the People Act, 1951, as per the Electoral Bond Scheme, 2018.

Significance of Electoral Bond

- The most important part of this plan is that the bond won't have the donor's name on it and will be valid for 15 days. However, the beneficiary still needs to go through the bank's Know Your Customer procedures. That the donor is protected from any political party's threats is our first priority.
- Political parties must have registered with the Election Commission and received at least 1% of the total votes cast in the most recent general election for the Lok Sabha or a state legislative assembly in order to be eligible for the electoral bonds program. A way to weed out the insincere contenders is this.
- Thirdly, an approved bank account is the sole way for a qualifying political party to pay in their bonds. Only the authorized account that each political party has submitted to the Election Commission can be used to redeem the bonds.
- The government has limited direct financial donations to Rs. 2000 in an effort to ensure the success of electoral bonds, thus donors would be obliged to give through these bonds. This would make sure that the money going to political parties is being spent openly, and the relevant state agencies, such as the Election Commission and the Reserve Bank of India, will be privy to this information.
- Electoral bonds are a positive start toward replacing questionable donations to political parties with more transparent funding. The political parties are required to file their returns through these bonds, which is designed to promote accountability, transparency, and a minor step towards election reforms.

Review of literature

Ms. Barkha Symbiosis from Symbiosis Law School on the Corruption and Electoral Bonds

The political parties have been using the money for their own benefit without disclosing the true data and reports, and this whole dispute has been sparked by the government's negligence in delivering the necessary paperwork. Corruption begins with the issuance of electoral bonds, which are used to support political campaigns. The union administration has faced criticism for its slow response in valuing these bonds.

Mr. Akshat Bhushan and Avishek Mehrotra's article in the school journal examines the current status of accountability and openness in the political finance system.

There are a lot of people and political parties that put money into elections by contributing to and investing in the politicians they like, according to studies. During election seasons, political parties exploit this to their advantage to save money. On the other hand, when electoral bonds reach their price point, investors lose faith and exit the market. Therefore, the goal of this study is to investigate ways in which political administrations might be open and responsible.

"The BJP's 2019 election campaign was successful in part due to five factors," said Mr. Christophe Jaffrelot of London King's College and Mr. Gilles Vernier of Trivedi College of Political Science, adding "it was not business as usual" throughout the campaign. First, there's the prime minister's appeal to voters' emotions, which was crucial during Narendra Modi's 2014 campaign due to his very personalised approach. Second, given the current state of affairs between Pakistan and India, this campaign's focus on security-related concerns was highly relevant. Lastly, the BJP's platform was backed by the most efficient election campaign machinery that any Indian political party has fielded given independence. Fourth, the BJP expertly bombarded the public with prime minister pictures through social media and traditional mainstream media.

Transparency in Electoral Finance: An Unavoidable Advancement - Ms. Neena Sereesh and Ms. Sitaram Kanbhar - Journal of National Development. A lot more people need to become involved with the problem of opaque money. By taking this bold step and implementing it with unwavering will, we can put an end to the emergence of dark money in the future and bring much-needed transparency and responsibility to the realm of election expenditure. The details of the existing legislation will only become clear after it has been officially recognised through the proper legislative acts and laws. The availability of black money to political parties is now beyond dispute; the rapid eradication of this practice is imperative to safeguard democracy, economic development, and India's political system. The story about how political campaigns in India misuse donations is always evolving.

Researcher Mr. Zaid Mahmood on the topic of governance and election integrity in sub-National India For the subnational elections that took place in India from 2015 to 2017, this article presents the findings of a survey that asked people about their opinions on electoral integrity. In order to provide a comprehensive, objective, and autonomous source of expert information about elections that follow generally acknowledged standards and criteria, the opinions of the electoral integrity survey endeavour to provide just that. The essay continues by looking at the factors that make Indian voters' views on election integrity different. Voting integrity is often greater in India's states with higher per capita wealth, as we show. We argue, however, that disparities in the efficacy of government are the best explanation for the fact that different subnational perspectives on election integrity in India exist.

Political ties are a cover for authoritarianism - Sri Sheela Reddy Reinforcing democracy requires mends that have come apart between political procedures and the rights of citizens. In

order to increase the functioning of democracy, political parties should restructure and improve their interactions with the people without leveraging restricting identities. Political parties in India can accept contributions in the form of Electoral Bonds, which are banknotes issued by the State Bank of India. You have fifteen days to cash the note. State Bank of India branches that have been certified The complete KYC [Know Your Customer] information of the person buying the electoral bond would be gathered by an authorised person. Unless a criminal case court order specifically requests it, SBI will not reveal the identity of the buyer.

Election finance reform should rein on corrupt spending - political science professor Sk Salgoakar "This research analysis by Ms. Salgoakar lays forth a way for an investor's capital in an electoral bond to be utilised for a worthy purpose and contribute to the development of the nation and its people, in light of the data and reports that show how much money is wasted on elections and how the average person ends up paying a hefty price for nothing in return."

Restoring Electoral Equilibrium through the Use of Electoral Bonds: A National Law School Journal Article from 2019 This publication examines the fundamental tension in India's election funding system and the issues this dispute raises for electoral politics more broadly. To avoid taking a stance on the legitimacy of the Electoral Bonds Scheme, this paper argues that it has created a dystopic contribution structure that does not lend itself to a simple remedy. There are serious questions about the Electoral Bonds Scheme that make one wonder if the Supreme Court is the only alternative or if Parliament can resolve the matter.

A Key Hold Analysis of Electoral Bonds by Reema Jain—Humanities and International Law Indian democracy is the largest and most dynamic in the world. In light of the above, it is very evident that holding regular elections is essential to protecting democracy at its very

heart. In an effort to curb the influence of money in politics, the NDA-led government passed election changes in 2017 as part of the Finance Bill. A number of factors, including the 2013 amendment to Section 182 of the Companies Act and the secrecy surrounding the contributors, demonstrate the questionable character of Indian politics. In this paper, we'll take a look at how election changes impact a healthy democracy and how their hidden agendas relate to it.

Election bonds: a blind spot in the financing of politics

Non-governmental organisation (NGO) ADR To qualify for electoral bonds, a political party must have done one of the following: (i) registered with the government as per section 29A of the Representation of the People Act, 1951; or (ii) received at least one percent of the total votes cast in the most recent general election for the House of the People or the Legislative Assembly, whichever is applicable. The 2018 Electoral Bond Scheme amended section 29C of the Representation of the People Act, 1951 so that political parties are no longer obligated to keep track of the identities of contributors who make Electoral Bond contributions or to report this information to the Election Commission of India (ECI) annually. Worth of the bonds in the market

Author and research analyst Kamal Jaswant on electoral bonds: a mirage of openness

We learn from the bloody past of the fight for transparency in processes impacting the exercise of the right to vote that the political establishment—including governments and political parties of all hues—is a despot. innately favours secrecy? You can rely on it to come up with creative plans to hide the inner workings of the political system while seeming to be more transparent. In the shadowy realm of political fundraising, the guidelines for attaining a suitable degree of exposure are already in place. In order to prevent future manipulation of the transparency framework, the political establishment will be compelled to make the

required adjustments to the relevant legislation. The costs will fall disproportionately on civic society, as they have in the past.

Mr. Alok Prasanna's case at the Supreme Court involving Rafael documents and election bonds

The importance of transparency in matters of press freedom and political party funding was highlighted by the Supreme Court's decisions in the Rafael Papers and the Panama Papers Electoral Bonds cases. In the Electoral Bonds case, the Supreme Court has somewhat hedged its bets, and this approach is inconsistent. Whether or if the Court would apply the same level of openness to its own internal processes is an open question.

The legal framework to introduce the Electoral Bond Scheme

A new law, the Finance Act of 2016, went into effect on May 14, 2016. To make it legal for foreign corporations with a majority stake in Indian firms to give to political parties, it changed the definition of "foreign source" under Section 2(1)(j)(vi) of the Foreign Contribution Regulation Act, 2010 (2FCRA). Donations to political parties by foreign firms were formerly forbidden by the Foreign Exchange Management Act, 1999 and the Foreign Contribution Regulation Act (FCRA).

Representation of the People Act, 1951 (RoPA), Reserve Bank of India Act, 1934, Income Tax Act, 1961, and Companies Act, 2013 were all revised on March 31, 2017, by the Finance Act, 2017. With the amendment to Section 13A of the Income Tax Act made by Section 11 of the Finance

Act, 2017, political parties are no longer required to maintain a thorough record of donations received through electoral bonds. In the RBI Act, Section 31 was changed with Section 135. For the Union government, this meant they could "authorise any scheduled bank to issue electoral bond[s]."

A provision was added to Section 29C of RoPA by Section 137, which exempts political parties

from releasing "Contribution Reports" that detail donations received through electoral bonds. Contributions received by parties from individuals and corporations totalling "in excess of twenty thousand rupees" are detailed in these reports.

The maximum amount that a corporation could give to a political party was eliminated when Section 154 of the Companies Act, 2013 altered Section 182. In the past, corporations could only give as much as 7.5% of their net income over three years. Objections to the Modifications, Two NGOs, Common Cause and Association for Democratic Reforms (ADR), along with the Communist Party of India (Marxist), petitioned the Supreme Court to invalidate the modifications in the months after their introduction (in September 2017 and January 2018, respectively). The petitions first contended that the Rajya Sabha should have conducted a more thorough examination of the Finance Acts and that they were improperly enacted as money bills. This objection is an attachment to the broader objection against the use of money bills as stated in Article 110. Petitioners further contended that the plan permitted "non-transparency in political funding" and endorsed "huge scale" election corruption."

No government agency or business with fewer than three years of operation may contribute financially to any political party or its members in violation of section 293A of the Companies Act of 1956. Companies were limited to donating no more than three years' worth of average revenues. Companies were required to disclose contributions in their profit and loss statements, which was the most strong requirement that is currently being repealed. Thus, the veil of anonymity was lifted, and the political donations of the corporation became known to the owners and other interested parties. Similarly, a firm must disclose the facts of the donations in its financial statement as required by section 182 of the Companies Act 2013. Without providing any

justification, the restriction was also raised from 5% to 7.5%. the third Companies were previously exempted from following the procedure in the event of a gift using electoral bonds according to the Finance Bill, 2017. Given this, it's easy to see how any corporation, including offshore ones, might provide any amount, creating a regulatory and transparency nightmare. A corporation is also considered an independent legal entity under the Companies Act of 2013 (Section 9). Hence, rather than benefiting an independent legal organisation, the interests of its agents are advanced by political donations. Political donations "throttle the democracy," the court said in the case of **Jayantilal Ranchhodas Koticha v. Tata Iron & Steel Co. Ltd.**, serving as an early warning from the judiciary.

The Finance Act's Section 137 introduced an additional irrational change to the Representation of People Act, 1951's Section 29C. Before the change, under section 139 of the Income Tax Act, 1961, the party's treasurer had to compile a list of all people or businesses that gave above 20,000 INR in a given fiscal year and submit it to the Election Commission of India. The public was able to see the patterns of connection between the rich and corporations and political parties, especially the ruling party, thanks to this rule that protected the openness of donations. The system of electoral bonds is no longer affected by this clause as a result of the modification. The ruling party is likely to be manipulated by the affluent for anonymous donations if this trend continues.

A political party's "Income from other sources" or "Income of house property" or "Voluntary contributions" received from the public are exempt from taxation under section 13A of the Income Tax Act 1961, so long as the party maintains records and the donor's identity is disclosed if the amount donated is more than 10,000 rupees. The amount acquired anonymously through electoral bonds was already ten thousand, but with the modification,

it is double that amount. The necessity of the major clause is practically eliminated by this revision.

Section 236 of the Foreign Contribution Regulation Act, 2010 inserted a proviso to Section 2 (1)(j)(vi), making it possible to monitor the foreign element of intervention in Indian elections. Companies based outside of the United States were barred from making political contributions under this clause. The amendment allowed foreign companies with majority shares in Indian companies to make donations. The Election Commissioner of India also shared this view of foreign pressure.

Association of Democratic Reforms v. Union of India was a challenge to the aforementioned changes that sought to halt the use of electoral bonds. Instead of issuing a stay order, the Supreme Court ordered the political parties to disclose their funding sources to the Election Commission.

Election bonds with a face value of 6,200 crores have been sold in thirteen stages, with a total printing value of 19,00 crores rupees (as of May 2020), according to the RTI reply. The production of these bonds' "low denominations" cost Rs. 1.43 crores. Regardless of the fact that public money are involved directly and that the anonymity of contributions has a domino effect on the public, the Information Commissioner maintains that the disclosure of donor identities does not benefit the public interest. Public authorities are not required to disclose material when they are in a "fiduciary relationship" according to section 8(1)(e)(j) of the Right to material Act 2005, unless the information commissioner determines that there is a greater public interest, which is not always the case.

Electoral bonds were deemed by the Reserve Bank of India as a "legally-sanctioned instrument that would allow corporations and other legal entities to anonymously funnel unlimited amounts of money to political parties," a statement that expressed their apprehension over the potential introduction of black money

into Indian politics. A "bad precedent" would be created and money-laundering would be encouraged, according to RBI's advice, which was asked by the Centre. The fact that these bonds were "Bearer bonds" meant that the Central Bonds couldn't use them to prove ownership. The Reserve Bank of India (RBI) went on to say that these bonds may devalue its own banknotes. The Centre still proceeded with the introduction of electoral bonds notwithstanding the RBI's stance.

The 2018 Election Bond Program

In 2018, the Ministry of Finance announced the Electoral Bond Scheme. Bonds produced in the form of promissory notes, similar to banking bearer instruments, but without the buyer's name, are known as electoral bonds. Among the most notable aspects of the plan are:

- Any individual or entity incorporated or founded in India, or who is a citizen of India, is eligible to buy this bond.
- Only political parties that won at least 1% of the votes in the most recent general election for either the House of People or the Legislative Assembly of the State and are registered under Section 29A of the Representation of the People Act, 1951 are eligible to receive the bond.
- The eligible political party is the only entity authorised to issue and redeem the electoral bond, and it must be redeemed through a bank account.
- The authorised bank will keep the buyer's information secret and will only reveal it if legally required to do so by a competent court or in response to a criminal case registered by any law enforcement agency.
- The value of the bond is deemed income under voluntary contributions and is free from income tax under Section 13A of the Income Tax Act, 1961, however the bond itself is non-refundable.

References

1. Kamal jaswant. (2020), "Electoral bonds an illusion of transparency" author and journalist
2. Mr. Alok Prasanna (2019), "supreme court on Rafael papers and electoral bonds" specialist in research analysis and author.
3. Dipanshi Singhal (2022), "Electoral bonds a legalized form of corruption" LLM university student VOL [28]
4. Sri Sheela Reddy (2018), "Electoral bonds camouflaged training tyranny" author and specialist is research writing, journalist
5. Sk Salgoakar (2019), "Cleansing electoral finances to curb unscrupulous expenditures in elections" political science professor
6. National law school journal (2019), "Electoral Bonds Scheme for Electoral Donations: Restoring Electoral Equilibrium" law journals and associations
7. Reema Jain (2020), "Electoral bonds -A Key Hold Analysis" international law and humanities
8. ADR (Association for Democratic Reforms) (2018), "Electoral bonds - An Opacity in Political Funding's" Non-Government Organizations
9. MS Barkha (2019), "Electoral bonds and Corruption Involved into it" Symbiosis law school
10. Mr. Akshat Bhushan and Avishek Mehrotra (2020), "State of transparency and accountability in the electoral funding regime" journal school-authors and research analysts
11. Mr. Neelanjan Sircar (2019), "The politics of Vishwa's: Political mobilization in the 2019 National Election" Political science, Ashoka university-Sonipat



Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

Published by Dr. S. N. Tailor Foundation

Head Office : "SATYAM" Munot Nagar, Beawar - 305901

Branch Office : 54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018

E-mail : shodhshree@gmail.com • Web : www.shodhshree.in

Individual Subscription Form

Name

Designation

Name of Organization

Address

District

State

Pin

Tel. No. (R)

Mobile

e-mail

Date

(Signature)

Frequency	: Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April, July & October.
Mode of Payment	: Subscription fee can be deposit through online Banking.
Bank Details	: DR S N TAILOR FOUNDATION (A TRIBUTE OF LATE SHRI PARAS HEMENDRA G TAILOR) HDFC BANK, MAHAVEER BAZAAR, BEAWAR A/C No. 99909910000001 IFS Code : HDFC0006610 • MICR Code : 305240037 Account Type : Current • Subscription Fees : 2200 Rs.

Membership No.

Date

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I.....
hereby declared that the paper entitled'.....
.....'is unpublished original paper which is not sent any where
for publication.

This paper is prepared by me/jointly with.....
.....which is
exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the
Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the
address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other
journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature

Name

Designation

Official Address

Residential Address

Phone No. Pin No.

e-mail Address



Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

Published by Dr. S. N. Tailor Foundation

Head Office : "SATYAM" Munot Nagar, Beawar - 305901

Branch Office : 54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018

E-mail : shodhshree@gmail.com • Web : www.shodhshree.in

Institutional Membership Form

The Editor
Shodhshree
Jaipur

Dear Sir

I want to become a member of this Journal for -

☐ 1 year

(Rs. 1200/-)

☐ 2 years

(Rs. 2200/-)

☐ 3 years

(Rs. 3000/-)

I am sending here with Rs. through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution

Address.....

..... Pin Code.....

Phone/Mobile No.

E-mail ID

Date:

Signature

For Office Use Only

Membership No.

Date

Frequency : Shodhshree is Published four time in a year (Quarterly)
i.e. January, April, July, October.

Mode of Payment : Subscription fees can be deposit through online Banking.

Bank Details : Cheque / DD must be in Favor of DR S N TAILOR FOUNDATION

(A TRIBUTE OF LATE SHRI PARAS HEMENDRA G TAILOR)

HDFC BANK, MAHAVEER BAZAAR, BEAWAR

A/C No. 99909910000001 • Account Type : Current

IFS Code : HDFC0006610 • MICR Code : 305240037

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.
2. All manuscripts must be accompanied by the brief abstract, Abstract including Keywords must not exceed more than 150 words.
3. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.
4. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.
5. Maximum word limit of research paper up to 3000 words.
6. Special care must be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper, otherwise it will not be accepted for publication.
7. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.
8. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.
9. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

**Research Paper may be sent to our e-mail: shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134**

प्रिन्टेड मैटर

If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)

54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – डॉ. वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54-ए,
जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर-302018 मो. 9460124401

